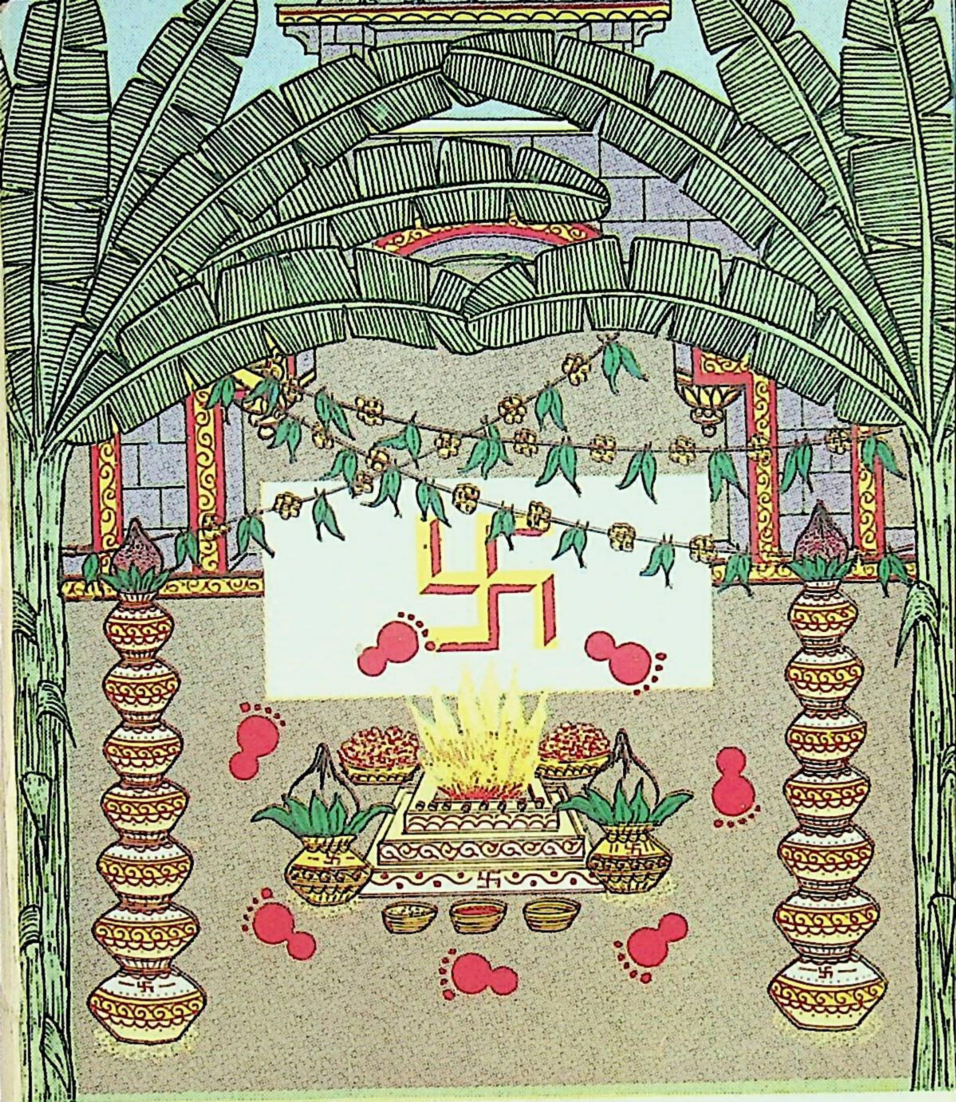


विवाहसोपांगविधि

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

॥ श्रीः ॥

विवाहसोपांगविधिः

अर्थात्

लौकिकवैदिकाचारावगुम्फितविवाहसंस्कारप्रतिपादक-
धर्मजिज्ञासूनां कृतेऽतीवोपकारकश्च ग्रन्थः

(हिन्दीटीकासहितः)

*****

प्रयागमण्डलान्तर्गतदारागंजनिवासिनिखिलभारतवर्षीय-
आयुर्वेदविद्यापीठद्वारा प्राप्तोपाधिकेन धन्वन्तरीयौषधालयाध्यक्षेण
चिकित्सकचूडामणि पं. **ठाकुरप्रसादमणि वैद्य त्रिपाठिना** विरिचतः

*****

तदात्मजेन एल्.एम.पी.ए.बी. एस्. इत्यादिराजकीयसम्मानित-
उपाधिधारिणा डाक्टर पं. **लक्ष्मीकान्तमणि वैद्येन**
कृतया बालबोधिनीटीकया समलंकृतः

*****

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

संस्करण : अक्टुबर २०१७, संवत् २०७४

मूल्य : २०० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

श्रीः ॥

विवाहसोपाङ्गविधि-विषयानुक्रमणिका ।



पूर्वार्धः ।

इति पूर्वार्द्धम्

अथोत्तरार्धः ।



इति विवाहसोपाङ्गविधिसूची समाप्ता ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

विवाहसोपांगविधिः ॥

बालबोधिनीटीकोपेतः ।

पूर्वार्द्धम् ।



मङ्गलाचरणम्

श्रीविघ्नविध्वंसकशम्भुसूनुः क्रोडे स्थितः सर्वशुभप्रदाता ।
यस्याः सतीं शङ्करवल्लभां तां प्रणम्य भक्त्या पतिपुत्रयुक्ताम् ॥१॥
शास्त्रानुकूलैरथ लौकिकैश्च संयोज्य कार्यैः सुगतिप्रयोगैः ।
निबध्यते कर्मविशुद्धयेऽयं विवाहसोपाङ्गविधिः प्रशस्तः ॥ २ ॥

बालबोधिनीटीका ।

भालेऽब्जं पितरौ नत्वा कुर्वे लौकिकभाषया ।
स्वपितृनिर्मितग्रन्थटीकां बालप्रबोधिनीम् ॥

अमृतमय चन्द्रमा विराजमान हैं मस्तकमें जिनके, ऐसे गणेश अथवा साक्षात् शङ्करजी तथा अपनी परम पूजनीया माता और पिताजीको नमस्कार कर, पूज्यपाद मेरे पितोजीके निर्मित इस ग्रन्थकी बालबोधिनीनामटीका लौकिक भाषामें करता हूं ॥

शिष्टाचारानुसार मूलग्रन्थका आदि मङ्गलाचरण यह है कि, संपूर्ण शुभ फलोंको देनेवाले और सभी विघ्नोंके नाशकर्त्ता शम्भुपुत्र गणेशजी हैं विराजमान गोदमें जिनके, ऐसी साक्षात् शङ्करकी प्राणवल्लभा सती पत्नी, जो पति पुत्र-

---

१ निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठके सभ्यवर्योंने आयुर्वेदके पठन पाठन आदि वैद्यकशास्त्रके चिकित्सा आदि सभी विषयोंकी प्रसंशनीय पूर्णयोग्यता जिनमें देखकर बडे ही आदरपूर्वक आल इन्डिया वैद्य कान्फरेन्स, अर्थात् समग्र भारतर्षीय सद्वैद्य महती सभाद्वारा समस्त वैद्यस्वीकृत और संमानित प्रमाण पत्र दे चिकित्सक चूडामणिकी पदवीसे जिनके नामको विभूषित कर प्रसिद्ध किया है, ऐसेही और भी कर्मकाण्डादि अनेक विषयोंके ज्ञाता परम माननीय "श्रीयुत चिकित्सक चूडामणि पं० ठाकुरप्रसादमणि त्रिपाठी वैद्य" पूज्यपाद मेरे पिताजीके निर्मित इस–"विवाह–

तत्रादौ स्मृत्यादिसंगृहीता सर्वकर्मोपयुक्ता-

विशिष्टपरिभाषा।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं गणेशं वरदं शुभम्।
नारायणं च संस्मृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ १ ॥

युक्ता पार्वतीजी हैं, उनको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करके विवाहसंस्कारके सभी अङ्ग और उपाङ्गकर्मोंको शास्त्रानुकूल और पूर्णरूपसे विशुद्ध होनेके लिये तथा लौकिक कर्मोंको यथासंभव एकत्रित कर, सभीको सुखपूर्वक करने करानेके योग्य प्रमाण युक्त प्रयोगोंकी उत्तम रचना कर इस विवाहसोपाङ्गविधि नामक ग्रन्थको बनाता हूं ॥१॥२॥ विवाहग्रन्थके आदिमें ग्रन्थकारका यह मङ्गलाचरण अतीव योग्य और सारगर्भित हुआ है। क्योंकि, इसका भाव, कन्या और वरको ऐसेही होनेके लिये परमोपयोगी दृष्टान्तस्वरूप हुआ है कि, जैसे-असीम सुन्दर अजर अमर साक्षात् शङ्कर ऐसे वरके सङ्ग अतीव सुन्दरी गुणवती पार्वती कन्याका संयोग, तथा गणेश जैसा पुत्रका गोदमें सर्वथा वर और कन्याके लिये सभीको वाञ्छित रहता है। इसी दूरदर्शितापूर्वक शुभसंयोग-संपन्न कुटुम्बी देवताका विवाहग्रन्थके प्रथमही मङ्गलाचरणमें सुन्दर दृश्यका प्रदर्शन अत्यन्तयोग्य, प्रशंसनीय तथा सर्वमङ्गलकारी है ॥

संस्कारकर्म लिखनेके पहिले स्मृति सङ्ग्रहादि अनेक ग्रन्थोंसे अवश्य ध्यानमें रखनेके योग्य सभी कर्म्मोंमें परमोपयोगी परिभाषा इस प्रकारहैं--सर्व

सोपाङ्गविधि" नामक ग्रन्थ-जिसमें विवाहके सभी कर्म अर्थात् वरकन्याके लक्षणोंसे आरम्भ करवधूके द्विरागमनपर्यन्त होनेवाले वैदिक तथालौकिक कर्मोंका प्रमाण सहित विधान अति सरल देववाणीमें सभोंके शुद्ध प्रयोगोंको बनाकर लिख दिया है॥ ऐसे अपूर्व ग्रन्थकी बालबोधिनी नामटीका लौकिक भाषामें इस लिये करताहूं कि, जिनको देववाणीके अर्थज्ञानका पूर्ण अभ्यास नहीं, केवल हिन्दीभाषाकाही भाव जानसकते है, उनको देववाणीमें लिखेहुये सभी कर्मकाण्डके मूलग्रन्थ गृहसूत्रादिकोंका ज्ञान नहीं हो सकता। अतः देववाणीका यथार्थ ज्ञान नहीं होनेके कारण जो बालक ही बने हैं ऐसे सत्कर्मप्रिय, सनातन धर्मावलम्बी सज्जनोंको भी इस टीकाद्वारा संस्कारादिको शुद्ध करने और करानेके प्रयोगोंका बोध हो जावेगाऔर सभीको हित होकर उत्तम फल प्राप्त होगा॥

अनुल्लङ्घ्य स्वशाखोक्तविधिं कर्म समाचरेत् ।
शिरःस्नानं प्रकुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा ॥ २ ॥
स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
पवित्राङ्गस्तथा जाप्ये दाने च विधिनोदिते ॥ ३ ॥
जनः स्वगृहमागत्य मङ्गलस्नानमाचरेत् ।
सर्वौषधीगन्धचूर्णैर्युक्तैः कृष्णतिलामलैः ॥ ४ ॥
उद्वर्त्याङ्गानि तैलेन चम्पकादिसुगन्धिना ।
तैलेन मङ्गलस्नानं कुर्वीत ब्राह्मणैः सह ॥ ५ ॥
इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ ६ ॥
अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् ।
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं दैहिकं विदुः ॥ ७ ॥

कर्मोंका प्रारम्भकरनेसे पहिले सभी मङ्गलोंके मङ्गल वर देनेवाले जो गणेश और नारायण हैं इनको स्मरण करलेना चाहिये ॥ १ ॥ अपनी शाखामें कहे विधानका उलंघन नहीं करके कर्मोंको करे और जिस कर्मके किसी अंशका विधान अपनी शाखामें नहीं हो तो उतनाही अंश अन्य शाखाओंसे भी लेकर कर्म पूरा करलेवे । देव अथवा पितृकर्म करनेके लिये शिरसहित स्नान करना चाहिये ॥ २ ॥ स्नान करके शुद्ध हुआ मनुष्य देव, पितृ तथा जप और दान आदि कर्मका अधिकारी होता है ॥ ३ ॥ सभी मङ्गल कर्मोंमें मङ्गलस्नान करनेकी विधि यह है कि यदि बाहर नदी आदिमें कहीं स्नान कर लिया हो तो भी घरमें आकर इस प्रकार मङ्गलस्नान करे कि, सर्व औषधी और सर्वगंधके चूर्णसहित काला तिल और आमलाफलोंको पीस, इससे शरीरमें उबटन कर और चमेली आदिका सुगन्धित तैल लगाय, किञ्चित् गरम जलसे सब शरीरको धोयकर पुनः तीर्थोंके पवित्र जल मिले हुए ठंढे पानीसे सुन्दर शुद्ध स्नान करना मङ्गलस्नान कहाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऊखका रस, जल, दुग्ध, मूल, ताम्बूल, फल और औषध इन वस्तुओंको खायकर भी स्नान दानादि क्रिया कर सकते हैं ॥ ६ ॥ कर्मकरनेवाला यदि रोगादि

सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकक्रियः ।
जितेन्द्रियः सत्यवादी सर्वकर्मसु शस्यते ॥ ८ ॥
ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं नान्यधारितम् ।
अहतं तद्विजानीयात् सर्वकर्मसु पावनम् ॥ ९ ॥
जपहोमोपवासेषु धौतवस्त्रधरो भवेत् ।
अलङ्कृतः शुचिर्मौनी श्रद्धावान् विजितेन्द्रियः ॥ १० ॥
कटिवेष्टचन्तु यद्वस्त्रं पुरीषं येन वा कृतम् ।
मूत्रमैथुनकृद्वस्त्रं धर्मकार्ये विवर्जयेत् ॥ ११ ॥
नीलीवस्त्रेण यत्कर्म कुरुते यो हि मानवः ।
वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवस्त्रस्य धारणात् ।
केवलं पट्टवस्त्रे च नीलीरागो न दुष्यति ॥ १२ ॥
होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके तथा ॥ १३ ॥

किसी कारणोंसे शिरपर जल नहीं छोड़सके तो और बाकी सर्वाङ्ग स्नान करे । अथवा ओदे वस्त्रद्वारा सर्वाङ्ग पोंछ लेवे तो भी सुस्नात मानाजाता है ॥ ७ ॥ सम्यक् स्नात, आचमन सन्ध्या करके, जितेन्द्रिय मनुष्य सब कामोंमें प्रशस्त मानाजाताहै ॥ ८ ॥ जलद्वारा साधारणरीतिसे धोया श्वेत- रंगका नवीन, विना कटा फटा और जो दूसरेका पहिना वस्त्र नहीं हो, वह अहत वस्त्र कहलाता है; ऐसा वस्त्र सब कामोंमें पवित्र मानागयाहै ॥ ९ ॥ जप, होम और उपवासोंके आरम्भमें स्वयं वा सजातीय शिष्यादिके धोये हुए वस्त्र धारण करे, और स्वर्णभूषणादि धारण कियेहुये शुद्ध जितेन्द्रिय, श्रद्धालु तथा मौन होकर कर्मोंको करे ॥१०॥ कमरमें लपेट लियागया हो जो वस्त्र, या जिसे पहिने हुए शौच, मूत्र या मैथुन किये हों ऐसे वस्त्रोंको धर्म कार्यमें धारण नहीं करे॥११॥ नीलसे रंगे वस्त्रको धारणकर जो कुछ पूजनादि किया जाता है वह राक्षसोंको प्राप्त होता है और कर्म निष्फल हो जाता है । यदि रेशमी धोती, उपरना नीलेरङ्गका होवे तो रेशमपर नीलारङ्ग दूषित नहीं होता ॥१२॥ होम, आचमन, संध्या, स्वस्तिवाचन और देवपूजनादि कर्मोंको

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ १४ ॥
खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत् ।
कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ॥ १५ ॥
पित्र्यमन्त्रानुद्रवाणे आत्मालम्भेऽधमेक्षणे ।
अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥ १६ ॥
मार्जारमूषिकास्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे ।
निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥ १७ ॥
समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् व्रजत्यधः ॥ १८ ॥
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चैव जायते ॥ १९ ॥
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथञ्चन ।

एक वस्त्रसे नहीं करे॥ १३ ॥ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यको हरसमय यज्ञोपवीतधारी और शिखामें गाँठ लगी रहना चाहिये । विना शिखा और यज्ञोपवीत या उप वस्त्रके जो कर्म किया जाता है वह नहीं करनेके समान व्यर्थ होजाता है॥ १४॥ जो खल्वाटत्व (गंजापन) आदि दोषसे मनुष्यके शिरपर शिखा न हो तो ब्रह्म ग्रन्थि सहित कुशकी शिखा धारण कर लेवे॥ १५॥ होम जपादि सभी दे पितृ संबंधीकर्म करते समय यदि पितरों सम्बन्धी मन्त्र बोले, देवकीनिंदा सुने, किसी नीचको देखे, अपानवायु निकलपडे, हँस देवे, मिथ्याभाषण होजाय, बिल्ली मूषकादिसे छूजाय, मुखसे गाली निकल पडे और क्रोध आजावे तो हृदय तथा जलका स्पर्श करलेना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥ समिधा पुष्प और कुश आदि ब्राह्मण स्वयं लाया करे, शूद्रसे मंगाना या मूल्यद्वारा लेना निषेध है, जिसका फल अधःपतन होता है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य अंगार रहित और विना प्रज्वलित अग्निमें होम करता है, वह मन्दाग्नि वा अन्यरोग युक्त तथा दरिद्र होजाता है, इस कारण निर्धूम और प्रज्वलित ही अग्निमें होम करे । प्रज्वलित

मुखेनैव धमेदग्निं न कुर्याद्व्यजनादिना ॥ २० ॥
सङ्कल्पेन विना कर्म यत्किञ्चित्कुरुते नरः ।
फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् ॥ २१ ॥
संकीर्त्य मासपक्षादीन्निमित्तानि तथैव च ।
इदं कर्म करिष्येऽहमिति सङ्कल्पमाचरेत् ॥ २२ ॥
आवाहनासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा ।
पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश ॥ २४ ॥
फलेन सुफलावाप्तिः साङ्गता दक्षिणार्पणात् ॥ २५ ॥
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्य इति पञ्चकम् ॥ २६ ॥

यज्ञोपवीतनिर्माणादिविषयः ।

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।

हुए विना नहीं करे । धौंकनीद्वारा मुखसे ही फूंककर अग्निको जलावे, व्यजनादिसे नहीं. क्योंकि, विराट् मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है "मुखादग्निरजायत" ॥ १९ ॥ २० ॥ संकल्प किये विना मनुष्य जो कर्म करता है उसका फल कम होता है और धर्म आधा घट जाता है ॥२१॥ इससे युग मास पक्ष आदि काल और आर्यावर्तान्तर्गत प्रदेशादिक कीर्तन कर अभीष्ट सिद्धिरूप निमित्त दिखाके मैं यह अमुक कर्म करूंगा ऐसा संकल्प अवश्य किया करे ॥२२॥ आवाहन १,आसन२,पाद्य३,अर्घ्य४, आचमनीय ५, स्नान ६, वस्त्र ७, यज्ञोपवीत ८, गन्ध ९, माल्य १०, धूप ११, दीप १२, नैवेद्य १३,ताम्बूल१४ प्रदक्षिणा १५ और पुष्पाञ्जलि १६. ये देवपूजनके षोडशोपचार कहाते हैं। इन सोलह उपचारोंके अनन्तर फल चढानेसे सुफलता और दक्षिणा अर्पण करनेसे कर्मकी सांगता पूर्ण होजाती है ॥ तथा गन्ध १, पुष्प २, धूप ३, दीप ४ और नैवेद्य ५ इन पाँचोंसे ही पूजन पंचोपचार कहाता है ॥ २३–२६ ॥

यज्ञोपवीत धारण और निर्माण विषयमें यह है कि, श्रौत स्मार्त कर्म

१ धमित्रेण धमेदग्नि इति पाठान्तरम् ।

तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥
ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा ॥ १ ॥
ब्रह्मसूत्रे तु सव्येंऽसे स्थिते यज्ञोपवीतिता ।
प्राचीनावीतिताऽसव्ये कण्ठस्थे तु निवीतिता ॥
सव्येन दैवतं सर्वमपसव्येन पैतृकम् ।
निवीतिना सदा चार्षं कर्म कुर्वीत मानवः ॥ २ ॥
स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथञ्चन ।
पृष्ठवंशे च नाभ्याञ्च धृतं यद्विन्दते कटिम् ॥
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणीकृतम् ।
रुद्रेण दत्तो ग्रन्थिर्वै सावित्र्या चाभिमन्त्रितम् ॥ ४ ॥
ओंकारः प्रथमे तन्तौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च ।
तृतीये नागदैवत्यं चतुर्थे सोमदेवता ॥

करनेमें दो यज्ञोपवीत धारण करना और अँगोछा वस्त्र न हो तो उसके अभावमें तृतीय यज्ञोपवीत पहिनना चाहिये । ब्रह्मचारी एक यज्ञोपवीत धारण करे, स्नातक (गृहस्थ) दो वा तीन चार आदि यज्ञोपवीत पहिने ॥ १ ॥ बाँयें कन्धेपरसे यज्ञोपवीत पहिनेरहे तो पुरुष उपवीती या यज्ञोपवीती अथवा सव्य कहाता है, ऐसा पहिने हुए देवकर्म करे, और दहिने कन्धेपरसे यज्ञोपवीत रहे तो प्राचीनावीती अथवा अपसव्य कहाता है, ऐसा पहिन कर पितृकर्म करे, और कंठमें माला सदृश पहिरना निवीती कहाता है, ऐसा पहिने हुए ऋषिकर्म करे ॥ २ ॥ स्तनोंसे ऊपर कंठमात्रमें वा नाभिसे नीचेभागमें यज्ञोपवीतको कदापि धारण नहीं करे । बांये कन्धेसे पीछे पीठके बीचसे होता हुआ आगेके तरफ नाभिस्थलपरसे होता हुआ कटिभागपर्यन्त जो पहुँचे इतनाही बडा यज्ञोपवीत धारण करना, इससे अधिक लम्बा या ऊँचा नहीं होना चाहिये॥३॥ ब्रह्माजीने पहिले अपने साथही यज्ञोपवीतको उत्पन्न किया और विष्णुभगवान्‌ने सत्त्वरजस्तमोरूप तीन लरोंसे युक्त किया तथा रुद्रभगवान्‌ने गाँठ देकर गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रण करदिया ॥४॥ यज्ञोपवीतके नव तन्तुओंमें क्रमसे

पञ्चमे पितृदैवत्यं षष्ठे चैव प्रजापतिः ।
सप्तमे मारुतश्चैव अष्टमे सूर्य्य एव च ॥
सर्वे देवास्तु नवमे इत्येतास्तन्तुदेवताः ॥ ५ ॥
कार्पासक्षौमगोवालशणवल्कतृणादिनाम् ।
सदा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ ६ ॥
शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके ।
आवेष्टय षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥ ७ ॥
अब्लिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं च तत् ।
अप्रदक्षिणमावृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् ॥ ८ ॥
त्रिरावेष्टय दृढं बध्वा ब्रह्मविष्णुशिवान्नमेत् ।
सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् ॥ ९ ॥
सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् ॥

ओंकार १, अग्नि २, नाग ३, सोम ४, पितृ ५, प्रजापति ६, मारुत ७, सूर्य ८ और सर्वदेवता ९ इन नव देवोंका ध्यान तथा आवाहन कर आगे कहे विधानसे धारण करना चाहिये ॥ ५ ॥ कपास, अतसी, गऊके बाल, शण, वक्कल और मुञ्जतृणादि इनमेंसे जिस देश-कालमें जिसका मिलना संभव हो, उसीका यज्ञोपवीत बनाकर ब्राह्मणादि द्विजाति पहिनें । सब मिलते हों तो कपासका ब्राह्मण, शणका क्षत्रिय और उनका वैश्य, अथवा कपासकाही सब कोई यज्ञोपवीत पहिनें ॥ ६ ॥ शुद्धस्थानमें स्वयं शुद्ध हुआ एक हाथकी चारों अँगुलियोंको मिलाकर इनके मूलस्थानपर तिगुने सूतको गिनती करके छ्यानवे (९६) वार लपेटे । इस लपेटे सूतको "आपोहिष्ठा" इत्यादि तीन मन्त्रोंको पढ़ पवित्र जलसे प्रक्षालित कर वामावर्त ऐंठे, फिर ऐंठे डोराको तिगुना अर्थात् बराबर नौ तगाकर गायत्रीमन्त्रसे दक्षिणावर्त नीचेको ऐंठे । ऐसे नौ तागेके एक लर बने हुए डोराको तीन फेरा लपेट गाँठ लगाय, उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकर्ता ब्रह्मा विष्णु-महेश्वरको प्रणाम करे । यदि यज्ञोपवीतके सूत्रमें फुचडा या बाल लिपट गये हों तो उनको निकाल देवे ! तद-

यज्ञोपवीतं परममिति मन्त्रेण धारयेत् ॥ १० ॥
"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥"
विच्छिन्नं वाप्यधो यातं त्यक्त्वा नव्यन्तु धारयेत् ॥ ११ ॥
दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ ११ ॥ (याज्ञवल्क्यः)

कर्णस्थब्रह्मसूत्र इत्यत्र दक्षिणकर्णस्थं कुर्यात्, यतो द्विजानां दक्षिणकर्णे देवादीनां निवासः । यथा याज्ञवल्क्य एवाह--

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा ।
सर्वे देवास्तु विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ १२ ॥

अत्र विप्रशब्दो द्विजातिबोधकः । शाङ्ख्यायनपराशरादयोऽप्येवमेवाहुः ॥

नन्तर प्रत्येक बार प्रणवसहित गायत्रीमन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित कर उस जलसे यज्ञोपवीत पर सेवन करना, ऐसेही दशवार सेचनद्वारा यज्ञोपवीतको पवित्र करके " यज्ञोपवीतं परमम् " इस मन्त्रसे धारण कर पीछे दो बार पवित्र जलसे आचमन करलेवे । टूट गया हो या नाभीसे नीचे भागमें आगया हो तो ऐसे यज्ञोपवीतको त्यागकर नया बनाया हुआ विधिपूर्वक पहिने ॥ ७–११ ॥ याज्ञवल्क्य स्मृतिका वाक्य है कि, दिन और दोनों सन्ध्या समयोंमें उत्तरमुख और रात्रिमें दक्षिणमुख होकर मलमूत्रका त्याग दहिने कानपर यज्ञोपवीत चढाकर ही करना चाहिये, क्योंकि " पवित्रं दक्षिणे कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत् " । ऐसाही याज्ञवल्क्यभी कहतेहैं कि, अग्नि, वरुण, चारों वेद, चन्द्रमा, सूर्य, वायु और संपूर्ण देवता, विप्रके दक्षिण कर्णपर निवास करते हैं ॥ १२ ॥ यहां विप्रशब्द द्विजातिवाची है-- अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यके बोधक है । यही मत शाङ्ख्यायन पराशरादिकाभी है इससे दहिनेही कानपर यज्ञोपवीत चढाना परमोचितहै ॥

विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिबति द्विजः ।
उपवासेन चैकेन पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥ १३ ॥
विना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि ।
उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैश्च शुद्धयति ॥ १४ ॥
उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे गते मासचतुष्टये ।
नव यज्ञोपवीतानि धृत्वा पूर्वाणि संत्यजेत् ।
पूर्वयज्ञोपवीतानि शिरोमार्गेण संत्यजेत् ॥ १५ ॥

अथ नवयज्ञोपवीतधारण प्रयोगः ।

आचम्य प्रणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मम श्रौतस्मार्त्त [एक लाख श्लोकात्मक चारों वेद मानेजाते हैं "लक्षन्तु वेदाश्चत्वार" जिसमे अस्सीहजार कर्मकाण्ड, सोलह हजार उपासना काण्ड और चार हजार ज्ञानकाण्ड वेदभाग कहताहै । वेदोक्त कर्म उपासनाके अधिकारी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके लिये कर्म उपासनासम्बन्धी छ्यानवे हजार वेदभागका चिन्ह छ्यानवे चौवा सूत लपेट कर जनेऊ बनाया जाताहै--अर्थात् इस यज्ञोपवीतके धारणसे कर्म उपासना संवद्ध छ्यानवे हजार वेदभागका अधिकारी जो है वह द्विज समझाजाताहै । पूर्वकालमें राजनियमसे शुद्ध द्विजाति ही नियमानुसार यज्ञोपवीत धारण करने पाते थे, अनधिकारी अन्यजातीय मनुष्योंको धारण करनेपर राजदंड होता था ॥] भूलसे यज्ञोपवीत उतर गया हो, ऐसी अवस्थामें जल पीलेवे तो एक दिन उपवास कर पञ्चगव्य भक्षणद्वारा शुद्ध होजाता है ॥ १३ ॥ और विना यज्ञोपवीतके यदि मल मूत्रका त्याग करे तो दो दिन उपवास करके दान होम प्रायश्चित्तोंद्वारा शुद्ध होताहै॥१४॥ उपाकर्म, उत्सर्ग, सूतक और मृतकाशौच इन चारों अवसरोंमें तथा धारण कियेहुए यज्ञोपवीतको चार महीना बीत जानेपर नवीन यज्ञोपवीत विधि पूर्वक धारण करना और पुराने यज्ञोपवीतको शिरोभागसे उतारकर किसी जलाशयमें छोड़देवे ॥ १५ ॥

नवीन यज्ञोपवीत धारणका प्रयोग--आचमन और प्राणायाम कर, हाथमें

कर्मानुष्ठानसिध्यर्थं यज्ञोपवीतधारणमहङ्करिष्ये । ततो आपोहिष्ठा० इत्यादिमन्त्रमुक्त्वा जलेन यज्ञोपवीतानां प्रक्षालनं कुर्यात् । ॐ आपोहिष्ठेत्यादि त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। यज्ञोपवीतप्रक्षालने विनियोगः ॐ आपो हिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातन। महेरणायचक्षसे ॥ यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिवमातरः तस्माऽअरङ्गमामवो यस्यक्षयायजिन्वथ। आपोजनयथाचनः॥ (य० अ० ३६, मं० १४, १५, १६) ततो यज्ञोपवीतानि दश गायत्रीमन्त्रैरभिमन्त्र्य। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ (य०अ०३६ मं० ३)

ततः यज्ञोपवीते तन्तुदेवतानामावाहनं वक्ष्यमाणमन्त्रैः-ॐ प्रणवस्य ब्रह्माऋषिः। परमात्मा देवता। गायत्री च्छन्दः। प्रथमतन्तौ ओंकारावाहने विनियोगः॥ प्रथमतन्तौ ॐकाराय नमः। ओंकारमावाहयामि ॥ १ ॥ ॐ अग्निं दूतमिति मंत्रस्य मेधातिथिर्ऋषिः[1]। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। द्वितीयतन्तौ अग्न्यावाहने विनियोगः॥ ॐ अग्निन्दूतम्पुरोदधेहव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ२ आसादयादिह॥ (य० अ० २२ मं० १७) द्वितीयतन्तौ अग्नये नमः। अग्निमावाहयामि ॥२॥

जल ले देश कालादि और 'मम' से 'करिष्ये' पर्यन्त कहकर जल छोड देवे। फिर यज्ञोपवीतोंको जलसे 'ओं आपोहिष्ठा०' इत्यादि विनियोगपूर्वक मन्त्र कह प्रक्षालन करके, बायें हांथमें धर, दाहिने हाँथसे ढाँप, दशवार, गायत्रीमन्त्र कह अभिमंत्रित करदेवे। और यज्ञोपवीतके नव तागोंमें नव तथा ग्रन्थिमें तीन देवताओंकी भावना, करता हुआ विनियोगसहित मूलमें कहे हुए ॐ प्रणवस्य' इत्यादि मन्त्रों द्वारा ओङ्कारादिका आवाहन करे।

१--विश्वरूप ऋषिः। इति संहितायां दृश्यते।

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सर्पा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । तृतीयतन्तौ सर्पावाहने विनियोगः ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो येकेच पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षेयेदिवितेभ्यः सर्प्पेभ्योनमः । (य० अ० १३ मं० ६) तृतीयतन्तौ सर्पेभ्यो नमः सर्प्पानावाहयामि ॥ ३ ॥ ॐ वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । गायत्री छन्दः । सोमो देवता । सोमावाहने विनियोगः । ॐ वयꣳ सोमव्व्रते तव मनस्तनुषु विब्भ्रतः प्रजावन्तः सचेमहि । (यजु० अ० ३ मं० ५६) चतुर्थतन्तौ सोमाय नमः सोममावाहयामि ४ ॥ ॐ उदीरतामित्यस्य शंख ऋषिः । पितरो देवताः त्रिष्टुप्छन्दः । पञ्चमतन्तौ पित्रावाहने विनियोगः । ॐ उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुंयऽईयुरवृकाऽऋतज्ञास्तेनोवन्तु पितरो हवेषु (य०अ०१९मं०४९)॥ पञ्चमतन्तौ पितृभ्यो नमः।पितॄनावाहयामि॥५इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता गायत्री छन्दः । सूत्रत्रिगुणीकरणे विनियोगः। ॐ इदं विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ७ सुरे ॥ (य० अ० ५ मं० १५) प्रजापते इति मन्त्रस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । षष्ठतन्तौ प्रजापत्यावाहने विनियोगः । ॐ प्रजापतेनत्वदेतान्न्यन्न्योविश्वारूपाणिपरिताबभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तुवयꣳस्यामपतयोरयीणाम् (य० अ० २३ मं० ६५) । षष्ठतन्तौ प्रजापतये नमः । प्रजापतिमावाहयामि ६ ॥ ॐ आनोनियुद्भिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अनिलो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । सप्तमतन्तौ अनिलावाहने विनियोगः।

देवश्रवाऋषिः । भुरिक्प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः ।

ॐआनोनियुद्धिः शतिनीभिरध्वरर्ठसहस्त्रिणीभिरुपयाहियज्ञम् । वायो-ऽअस्मिन्त्सवनेमादयस्वयूयम्पातस्वस्तिभिः सदानः ॥ (अ०२७मं०२८) सप्तमतन्तौ अनिलाय नमः । अनिलमावाहयामि ७ ॥ ॐ सुगाव इत्यस्य अत्रिर्ऋषिः । ग्रहपतयो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । अष्टमतन्तौ यमावाहने विनियोगः । "ॐ सुगावोदेवाःसदनाऽअकर्मयऽआजग्मे-दर्ठसवनञ्जुषाणाः ॥ भरमाणाव्वहमानाहवीर्ठष्यस्मेधत्त वसवो वसु-निस्वाहा (य० अ० ८ मं० १८) ॥ अष्टमतन्तौ यमाय नमः । यममावाहयामि ८ ॥ ॐ विश्वेदेवासऽआगता इति मंत्रस्य परमेष्ठी ऋषिः । गायत्रीच्छंदः । नवमतन्तौ विश्वेदेवानामावाहने विनियोगः ॥ ॐ विश्वेदेवासआगत श्रृणुतामऽइमर्ठ हवम् । एदम्बर्हिर्निषीदत । उपयाम गृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वादेवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्य-स्त्वादेवेभ्यः ॥ (य० अ० ७ मं० ३४) नवमतन्तौ विश्वेभ्यो-देवेभ्यो नमः । विश्वान् देवान् आवाहयामि ९ ॥ ततो ग्रन्थिदेवता नामावाहनम्- ॐ ब्रह्मयज्ञानमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मा देवता । गायत्री छन्दः । ग्रन्थिमध्ये ब्रह्मावाहने विनियोगः ॥ "ॐ ब्रह्म यज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोव्वेनऽ आवः । सबुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः (य० अ० १३ मंत्र ३) ग्रन्थिमध्ये ब्रह्मणे नमः । ब्रह्माणमावाहयामि १ ॥ ॐ इद विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री छन्दः । ग्रन्थिमध्ये विष्णोरावाहने विनियोगः । "ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा-निदधे पदम् । समूढमस्य पार्ठसुरे । (य० अ० ५ मन्त्र १५) ग्रन्थि-मध्ये विष्णवे नमः । विष्णुमावाहयामि २ ॥ ॐ त्र्यंबकमित्यस्य

वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । ग्रन्थिमध्ये रुद्रावाहने विनियोगः ॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे । सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ (य० अ० ३ मंत्र ६०) ग्रन्थिमध्ये रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि ३ ॥ इत्यावाह्य । ॐ यज्ञोपवीते आवाहितदेवताभ्यो नमः । इति मन्त्रेणावाहितान् देवान् षोडशोपचारैः संपूजयेत् ॥ ततो हस्ते जलमादाय अनया पूजया यज्ञोपवीते आवाहिता देवाः प्रीयन्तान्न मम । इति जलमुत्सृज्य यज्ञोपवीतधारणङ्कुर्यात् । तत्र मन्त्रः–यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः ॥ ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यम्प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ इति । यज्ञोपवीतधारणान्ते द्विराचमनं कुर्यात् ॥

सर्वसंस्काराणां संक्षेपविचारः ।

गौतमस्मृतौ चत्वारिंशत्संस्कारा उक्ताः । आङ्गिरसस्मृतौ तु पञ्चविंशति संस्कारा एव प्रदर्शिताः । एते त्वन्ययुगेष्वनुष्ठातुं शक्याः । परञ्च व्यासस्मृतौ प्रथमाध्याये ये षोडशैव संस्काराः

इस प्रकार आवाहन हो जानेपर किसी पवित्र पात्रमें यज्ञोपवीतोंको धर देवे, और षोडशोपचारसे आवाहित देवताओंका पूजन कर, हाथमें जल ले 'ॐ अनया पूजया०' इत्यादि वाक्य कहकर जल छोड देवे । फिर 'ॐ यज्ञोपवीतम्०' इत्यादि विनियोग सहित मन्त्र कहकर यज्ञोपवीतको धारण करे और जलसे दोवार आचमन करलेवे ॥ इति नवयज्ञोपवीत धारण प्रयोग ॥

सर्वसंस्कारोंका विचार इस प्रकार है कि–गौतमस्मृतिमें चालीस संस्कार और आङ्गिरसस्मृतिमें पच्चीस ही संस्कार दिखाये हैं, जो कि, यथोचित रीतिसे अन्य-

कथितास्ते यद्यपि ऐहिकपारलौकिकोत्तमफलप्रदाः सन्ति, तथाऽपि संप्रति कलौ तेषां फलानभिज्ञत्वाच्छ्रद्धाहीनैरविद्याग्रस्तैर्जनैर्नानुष्ठीयन्ते; अतएव कारणात् सांप्रतं स्वल्पबुद्धिबलप्रभावाः स्वल्पायुषश्च जनाः दृश्यन्ते. अतःस्वकुटुम्बहितमिच्छद्भिः सनातनधर्मावलम्बिभिः शास्त्रोक्तसंस्कारजन्यमहाफलप्रभावं विदित्वा गर्भाधानादिषोडशसंस्कारास्त्ववश्यमेवकर्तव्याः ॥ ते यथा--

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ।
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ।
नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्ज्जं क्रियाः स्त्रियः ॥

युगोंमें होसकतेथे । व्यासस्मृतिके प्रथमाध्यायमें षोडशही संस्कार कहे हैं, यद्यपि वे इस लोक तथा परलोकमें उत्तम फलोंको देनेवाले हैं तथापि कलियुगके इस वर्त्तमान समयमें उन संस्कारोंके उत्तम फलोंको नहीं जाननेसे श्रद्धाहीन और अविद्याग्रस्त मनुष्य होकर उन १६ को भी नहीं करते बस, यही कारण है कि, वर्तमान समयमें बहुतही थोड़ी बुद्धि, बल और प्रभाववाले तथा स्वल्पायु जन देखेजातेहैं । अतः सभी कुटुम्बियोंको सर्व प्रकारसे सुखी रहनेकी इच्छारखनेवाले, सनातनधर्मानुसार कर्म विश्वासपूर्वक करनेवालोंको शास्त्रोंमें कहे संस्कारोंसे होनेवाले महान् फलोंके प्रभावोंको जान कर अवश्यही ये षोडशसंस्कार तो करना चाहिये. सोलह संस्कार ये हैं; १–गर्भाधान, २–पुंसवन, ३–सीमन्तोन्नयन, ४–जातकर्म, ५–नामकरण, ६–निष्क्रमण, ७–अन्नप्राशन, ८–चूडाकर्म, ९–कर्णवेध, १०–यज्ञोपवीत, ११–वेदारम्भ, १२–केशान्त, १३–समावर्तन, १४–विवाह, १५–आवसथ्याधान (विवाहाग्निपरिग्रह), १६–श्रौताधान (त्रेताऽग्निसंग्रह) इन १६ संस्कारोंमें कर्णवेध पर्य्यन्त स्त्रियोंके ९ संस्कारोंको वैदिक मन्त्रोंको विना कहे हुये और दशवाँ

विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश ॥

मनोरप्येते एव संमताः ।इति॥ एतेषां सर्वसंस्काराणां मध्ये, एकैकस्य पृथक् पृथक् श्रेयस्कराणि महामहाफलानि शास्त्रेषु लिखितानि दृश्यन्ते। किन्त्वत्र ग्रन्थवृद्धिभिया सर्वसंस्कारजन्यशुभफलस्याङ्गुल्या निर्देशस्वरूप एव सामान्यफलमात्रोल्लेखः कृतः । यथाह मनुः—(२ अ. २६ श्लो.)

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ १ ॥ इति ॥
विवाहस्यावश्यकत्वं फलञ्च स्मृतिसंग्रहे—
पत्न्या सहाग्निहोत्रादि तस्य स्वर्गफलं स्फुटम् ।
ब्राह्माद्युद्वाहसम्भूतः पितॄणां तारकः सुतः ॥
विवाहस्य फलन्त्वेतद्व्याख्यातं परमर्षिभिः ॥ २ ॥

इति श्रीचिकित्सकचूडामणि पं० ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठिविरचित विवाहसोपाङ्गविधौ स्मृत्याद्युक्तविशिष्टपरिभाषा ॥

विवाह संस्कार वैदिकमन्त्रों सहित करना चाहिये. तथा शूद्रोंके विवाह पर्य्यन्त दशही संस्कार विना वैदिक मन्त्रोंके ही किये जाते हैं । ये व्यासोक्त और मनुजीके भी संमत है । इन संस्कारोंमें एक एकके बडे वडे फल भिन्न भिन्न प्रकार कल्याणके देनेवाले अनेक शास्त्रोंमें लिखे देखेजाते हैं, किन्तु यहां ग्रन्थ वहुत बढ़जानेके भयसे उनका उल्लेख न कर केवल सभी संस्कारोंके विषयमें सामान्य शुभ फल जैसा कि मनुस्मृति २ अध्यायके २६ श्लोकमें लिखा है कि, वेदोक्त गर्भाधानादि पुण्य कर्मों द्वारा ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य नामक द्विजोंके शरीरोंको इस लोक तथा परलोकमें पवित्र करनेके लिये ही सर्व संस्कारोंको करने चाहिये ॥ इति ॥ १ ॥ विवाह संस्कारकी आवश्यकता और फल स्मृतिसंग्रहमें इस प्रकार लिखा है कि, पत्नीके सहित ही मनुष्य आधान पूर्वक अग्निहोत्र तथा दर्श पौर्णमासादि याग कर सकते हैं, और ब्राह्म आदि शास्त्रोक्त विवाहविधिसे प्राप्त पत्नी द्वारा उत्पन्न हुआ पुत्र पितरोंका तारदेनेवाला होताहै । यही विवाहकी आवश्यकता और उत्तम फल कहा और मानागयाहै! ऐसेही औरभी संस्कारोंके मुख्यमुख्य प्रयोजन जाने और मानेगयेहैं॥२॥

इति बालबोधनीटीकायां विशिष्टपरिभाषा समाप्ता ॥

अथ विवाहे कर्तव्यानामावश्यकावान्तरकृत्यानां क्रमेण निरूपणम् । तत्र-

वरायुषो विचारः ।

अखिलधर्मशास्त्रानुमत्या ब्रह्मचर्याश्रमेण सह वेदादिविद्याग्रहणादनन्तरमेव पुरुषाणां विवाहः कार्य इति स्थितम् । दीर्घकालावधि ब्रह्मचर्यधारणं कलौ निषिद्धम्, अतो मानवधर्मशास्त्रोक्तं पादिकं ग्रहणान्तिकं वा ब्रह्मचर्यं ग्राह्यम् । तथा सति द्विजबालकानां सप्तदशवर्षादारभ्य पञ्चविंशतिवर्षावधिर्विवाहकालः अतिबाल्यावस्थायबालानां द्वादशादिवर्षावस्थानामपि विवाहः सर्वथैव अकर्तव्यः, शास्त्राज्ञा-

विवाह संस्कारमें आवश्यक लिये जानेवाले कर्मोका क्रमसे निरूपण करते हैं । तिनमें प्रथम वरके आयुष्यका विचार इस प्रकार है कि, सभी धर्मशास्त्रोंकी सम्मतिसे ब्रह्मचर्यमें रहतेहुये वेदादि विद्याओंको पढ लेनेके बादही युवा पुरुषोंका विवाह करना निश्चित है । कलियुगमें ३६ । ४८ वर्ष आदि दीर्घकालतक ब्रह्मचर्य धारणका निषेध है । इस कारण मानवधर्मशास्त्रके कथानुसार ९ वर्षतक उपयुक्त विद्याध्ययनपर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम द्विजोंको ग्रहण किये रहना चाहिये । जैसा कि, मनु तथा पारस्करका कथन है कि " गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ " " अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वा एकादशवर्षं राजन्यम् । द्वादशवर्षं वैश्यम् । " इति पारस्करः ॥ अर्थात् गर्भसे वा जन्मसे ब्राह्मणका आठवें, क्षत्रियका ११ वें और वैश्यका १२ वें वर्षमें उपनयन संस्कार करे । कारण विशेषसे कुछ न्यूनाधिक कालभी माना है; किन्तु पूर्वोक्त प्रमाणानुसार ब्राह्मण बालकका आठ वर्षकी अवस्थामें उपनयन होनेके समयसे ९ वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम है विद्याध्ययन करते हुये १७ वर्षकी आयु होती है । बस. इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्यका भी यथासमय उपनयन होकर ब्रह्मचर्याश्रममें रहनेसे १७ या १८ वर्षके आयुसे लेकर २५ वर्षके आयुतक ब्राह्मणादि द्विज बालकोंका विवाह काल होता है । इन्हीं कालोंमें विवाह करना चाहिये । इससे पहिले अति बाल्यावस्थाहै ता १० । १२ वर्षके

विरुद्धश्च । तस्माद्युवावस्थारम्भादनन्तरमेव पुरुषाणां विवाह उचितोऽस्ति ॥

कन्यायुषो विचारः ।

यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत्कुमारिका ।
भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥ (इति व्यासः)
प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात् पिता ।
ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः पितरमृच्छति॥ (इति व०॥अ०१७)

सामान्यनियमानुसारे कन्यायाः द्वादशवर्षायुषि रजोदर्श-

आयुमें भी लडकोंका विवाह करदेना अनुचितही नहीं, किन्तु अत्यन्त हानिकारक होता है और शास्त्राज्ञाके विरुद्ध होनेसे एक प्रकारका अधर्म है; अतः युवावस्था आरम्भ होनेपर ही लडकोंका विवाह करना समुचित जानकर ऐसाही करना चाहिये ॥

कन्याओंके विवाह करनेमें आयुष्यका विचार धर्मशास्त्रोंमे इस प्रकार है कि--व्यासस्मृतिमें लिखा है कि, यदि कन्यादान करनेवाले पितादिकी भूल या बेपरवाही आदिसे समयपर कन्याका विवाह नहीं हो और विवाह होनेसे पहिले रजोधर्म होने लगे, तो उन रजोधर्मोंसे जितने गर्भोंकी हानि हो उतनी भ्रूणहिंसाका पाप विवाह न करनेवाले पितादिको लगता है और वे पितादि पतित मानेजाते हैं। इससे वसिष्ठ स्मृतिमें जैसा लिखा है कि, ऋतुकाल न आ जाय ऐसा भय मानताहुआ पिता "नग्निका" अर्थात् " अव्यञ्जना भवेत् कन्या कुचहीना तु नग्निका " जबतक स्त्रीपनके लज्जा संकोचादिका विचार पुत्रीको नहीं मालूम हों तबतक कन्या कहाती और स्त्रीपनके लज्जादिका भान हो जानेके बाद कुचोत्थान होनेसे पहिलेकी अवस्थावाली पुत्री नग्निका नाम कही जाती है ॥ ऐसीही कुचोत्थान और ऋतुप्राप्त होनेसे पहिलेही अपनी कन्याका विवाह कर देवे. क्योंकि, विवाहसे पहिले ऋतुमती कन्या पिताके घरमें रहे तो कन्यादानके अधिकारी पितादिको दोष लगता है। सामान्यनियमके अनुसार बारह वर्षकी अवस्थामें कन्याओंके रजोदर्शनका

नारम्भो भवति । यथाह आयुर्वेदशास्त्रे सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने-

तद्वर्षाद्द्वादशात् काले वर्तमानमसृक् पुनः ।
जरापक्वशरीराणां याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥

देशकालभेदेन शीतोष्णादितारतम्येन च कचिद्दशमवर्षायुषः सकाशात् षोडशवर्षावध्यायुष्यपि रजःप्रवृत्तिर्दृश्यते । किन्तु रजोदर्शनात्प्रागेव उरोजादिप्रादुर्भावो भवति । तेन रजः प्रादुर्भविष्यतीति पूर्वत एव ज्ञातुं शक्यते । इति ॥

तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ इति संवर्तः ॥

गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात् ।
रविशुद्धिवशाच्छुभो नराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः ॥
(इति मुहूर्तचिन्तामणौ)

प्रारम्भ होजाता है । जैसा आयुर्वेदशास्त्र सुश्रुतसंहिताके शारीरस्थानमें कहा है कि, बारहवें वर्षके आयुष्यसे स्त्रियोंके रजोदर्शनका आरम्भ होकर वृद्धावस्थामें शरीर पक जानेपर ५० वर्षकी अवस्थामें रजोधर्म होना बन्द होजाता है, परन्तु देश, काल, भेद वा शीतोष्णकी न्यूनाधिकताके कारण कभी कहीं दशम आदि वर्षहीकी अवस्थासे और कहीं किसीको शरीरके स्वाभाविक निर्बलता वा रोगादिके कारण सोलह वर्षकी अवस्थातकमें कन्याको रजोधर्मका आरम्भ देखाजाताहै. किन्तु, रजोदर्शन होनेसे पहिले ही कुचोत्थानादि चिन्होंका प्रादुर्भाव होजाताहै, जिससे पहिलेही यह मालूम होसकताहै कि, अब रजोदर्शन होनेका समय समीप आगया; अतः जैसा संवर्त स्मृतिमें लिखाहै कि, दोष न लगनेके विचारसे जबतक ऋतुमती नहीं हो तभीतकमें कन्यादाताको कन्याका विवाह कर देना चाहिये । आठ वर्षकी अवस्थामें कन्याका विवाह करदेना धर्मशास्त्रकारोंने प्रशस्त माना है । इसीप्रकार मुहूर्तचिन्तामणिमें भी कहाहै कि, बृहस्पतिकी शुद्धता देख कन्याका विवाह छः वर्षकी होजानेके बाद सम अर्थात् अष्टमादि वर्षोंमें करना । और पुरुषका सूर्य शुद्ध रहनेसे विषम वर्षोंमें विवाह शुभ होताहै, किन्तु वर कन्या

इत्यादिप्रमाणसत्त्वादष्टवर्षायुषः सकाशात् षोडशवर्षावधि रजोदर्शनकुचोत्थानाभ्यां प्रागेव कन्यानामुद्वाहकालः। इत्याद्यनेकप्रमाणानां सत्त्वात्सर्वधर्मशास्त्रकाराणामैकमत्येन योग्यानां कन्यानामार्तवदर्शनात् कुचोत्थानाच्च प्रागेव योग्यवरेणोद्वाहः कार्य इति स्थितम् ॥ तथाहि, अग्निहोत्रादिकं श्रौतं स्मार्तञ्च कर्म पत्न्या सहैव विहितम्। तदर्थमल्पवयस्कापि पत्नी पत्न्येवास्ति। तस्माद्यथा पूर्वमेवोक्तम्, तथैवाष्टमनवमदशमैकादशादिवर्षे कन्योद्वाहः कर्तव्य इत्येव निश्चितम् ॥

अथ विवाहार्थवरकन्ययोर्योग्यताविचारः।

तत्रादौ वरस्य गुणदोषादिविचारो लिख्यते–"पञ्च विवाहकारकाणि भवन्ति वित्तं रूपं विद्या प्रज्ञा बान्धव इति ॥'

(मैत्रायणीयमानवगृह्यसूत्रेषु प्रथमपुरुषस्य ७ खण्डे ६ सूत्रम्)

दोनोंहीका चन्द्र शुद्ध रहना चाहिये। इत्यादि प्रमाणोंसे अष्टम वर्षके आयुसे लेकर सोलह वर्ष आयुके भीतर रजस्वला तथा कुचोत्थान होनेसे पहिलेही कन्याओंका विवाहकाल होताहै; इत्यादि अनेक प्रमाण होनेसे सब धर्मशास्त्रकार ऋषियोंकी एकानुमतिसे यही निश्चितहै कि, योग्य कन्याका रजोदर्शन और कुचोत्थान होनेसे पहिलेही योग्य वरके साथ विवाह करदेना चाहिये। और यह भी है कि अग्निहोत्रादि श्रौत स्मार्त कर्म सपत्नीक पुरुषके लिये ही कहा है; अतः अग्निहोत्रादि कर्मोंके लिये आठ दश वर्षकी भी विवाहिता कन्या पत्नी ही मानीजायगी। इससे जैसा कि, पहिले निश्चित कर चुके वैसेही आठ वर्ष आदिकी अवस्थावाली कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पहिले कर देना चाहिये ॥

अब विवाहलायक वर तथा कन्याकी योग्यताका विचार दिखाते हैं, तहां पहिले विवाह करनेके योग्य वरके गुण दोषादि मानवगृह्यसूत्र सप्तम खण्ड प्रथम पुरुषके ६ वें ७ वें सूत्रमें जैसा कहा है कि, कन्याका पिता वरकी

"एकालाभे वित्तं विसृजेत्, द्वितीयालाभे रूपम्, तृतीयालाभे विद्याम्, प्रज्ञायां बान्धव इति च विवहन्ते ॥ (मै० मान० गृ० खं० १ पुरु० ७ सूत्रम्)

स्पष्टार्थोऽनयोः—कन्यापिता वरस्य वित्तादिपञ्च विवाहकारकाणि पश्येत् । यदा पञ्चगुणानां मध्ये एको न भवेत् तदा धनं न भवतु । यदा द्वितीयो न स्यात् तदा रूपं न भवतु । तृतीयगुणाभावश्चेत् तदा विद्या न भवतु । एवं बुद्धिबान्धवयोर्मध्ये कुटुम्बरहितेऽपि प्रज्ञायुक्तो वरो विवाह्य इति । (मा० सू० ७ सू०)

"बन्धुशीललक्षणसंपन्नः श्रुतवानरोग इति वरसम्पत् ॥"

(आपस्तंबीय १ पटलस्य ३ खण्डे १९ सूत्रम्) सूत्रार्थः स्पष्ट एव ॥

संस्कारभास्करे—

कुलं च शीलं च वयश्चरूपं विद्यां च वित्तं च सनाथताञ्च ।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

पांच दशा देखे; धन १, रूप २, विद्या ३, बुद्धि ४ और बांधव ५ । यहां रूप कहनेसे काने अन्धेका निषेध और बान्धव कहनेसे कुटुम्बके साथ कुलीनता भी आजाती है । इनमें यदि पांचों गुण वरमें न मिलते हों तो प्रथम गुण धनको छोड दे. क्योंकि, धन तो अनित्य है. विद्या बुद्धिवालेके पास धन होजाना सुगम है. दूसरा गुण न मिलता हो तो रूपको भी छोड दे. क्योंकि, विद्या कुरूपोंकाभी सुन्दर रूप है. तीसरा न मिले तो विद्याको भी छौड दे. क्योंकि, बुद्धिमान् होगा तो पीछेभी पढ सकता है तथा न भी पढसके तो भी बुद्धिमान् निर्बुद्धि पटितसे अच्छा है । तथा बुद्धि और बांधव इन दोनोंमें कुटुम्ब न होने पर भी बुद्धिमान् वरका विवाह अपनी कन्यासे करदेवे । और आपस्तंबीय गृह्यसूत्र तृतीय खण्ड प्रथम पटलके १९ सूत्रमें कहा है कि, कुलीन, सुशील, शुभ लक्षणोंवाला, वेदशास्त्रका विद्वान्, निरोगये वरके शुभ लक्षण जानो ॥ संस्कारभास्करमें कहा है कि, वर कुलीन, शीलवान्, रूप-यौवनयुक्त, विद्वान्. धनवान् और जिसके पितादि रक्षक हैं;

मूकोऽन्धो बधिरः कुब्जः स्तब्धः पङ्गुर्नपुंसकः ।
कुष्ठी रोगी ह्यपस्मारी दश दोषाः प्रकीर्तिताः ॥

अन्यच्चापि–आचारहीनो मूर्खश्च कुरूपश्चौरजारकः ।
पाखण्डी च तथोन्मत्तो गूहकः कुलदूषकः ।
द्यूतकर्मरतश्चैव दश दोषाः प्रकीर्त्तिताः ।
एतद्दोषप्रयुक्ता ये तेषु कन्या न दीयते ॥ इति ॥

कन्यायाः गुणदोषादिविचारः ।

“बन्धुमतींकन्यामस्पृष्टमैथुनामुपयच्छेत समानवर्णामसमानप्रवरां यवीयसीं नग्निकां श्रेष्ठाम् ॥” मानवगृह्यसूत्रेषु ७ खण्डे १ पुरुषस्य ८ सूत्रम्) सूत्रार्थः-यवीयसीम्-वरायुषः सकाशादल्पवयस्काम् । नग्निकाम् ऋतुमप्राप्ताम् कुचोत्थानरहिताञ्च । शेषं स्पष्टम् ॥ (सू० ८)

परीक्षा करके ऐसे गुणोंवाले वरके साथ बुद्धिमान् अपनी कन्याका विवाह करे ॥ तथा गूङ्गा, अंधा, बधिर, कुबडा, ढीठ, पँगुला, नपुंसक, कुष्ठी, रोगी और मिरगीरोगवाले वरसे विवाह न करे ॥ सदाचारसे हीन वा दुराचारी, मूर्ख, कुरूप, चोर, व्यभिचारी, पाखण्डी, उन्मत्त, गुप्तदुराचारी और स्वकुलमें निंदित तथा ज्वारी ऐसे दोषोंवाले वरको कन्या नहीं देना चाहिये ॥इति॥

अब कन्याके गुणदोषादिका विचार दिखाते हैं–मानव गृह्यसूत्र सप्तम खण्ड प्रथम पुरुषके ८ वें सूत्रमें कहा है कि, जिस कन्याके साथ किसीपुरुषका संयोग नहीं हुआ हो, जिसके कोई भाई विद्यमान हो, जो अपने वर्णकी हो, जिसके प्रवर ऋषि अपनेसे भिन्न हों, जो ठीक युवति वरके आयुष्यसे कम उमरवाली और अच्छी हो, जिसके स्तन नहीं उगे हों और रजस्वला न होनेलगी हो तथा रूप लावण्य वर्ण मनभावन हो ऐसी कन्यासे विवाह करे ॥ पुरुषकी युवावस्थाका आरम्भ सोलहवें वर्षसे और स्त्रीकी युवावस्थाका आरम्भ ग्यारहवें वर्षसे हो जाता है ॥ और भी

अन्यत्रापि-" बन्धुशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत ॥ "

(आपस्तंबीय ३ खण्डे १ पटलस्य १८ सूत्रम्) सूत्रार्थः स्पष्टः ॥

अन्यत्रापि-अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ।

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् (इति या० स्म्यः)

अन्यच्च-" दत्तां गुप्तां द्योतामृषभां शरभां विनतां विकटां मुण्डां मण्डूषिकां साङ्कारिकां रातां पालीं मित्रां स्वनुजां वर्षकारीं वर्जयेत् ॥ "

(आपस्तंबीय ३ खण्डे १ पटलस्य ११ सूत्रम्)

सूत्रार्थः-पञ्चदशमकारां कन्यां विवाहे वर्जयेत् । दत्ताम्-अन्येन सह विवाहिताम् १ । गुप्ताम्-अनवलोकिताम् अर्थादशुभलक्षणादिकारणैः पित्रादिभिर्गोपिताम् २ । द्योताम्-विकृतदृष्टिमतीम् ३ । ऋषभाम्-वृषभस्वभावाम् ४ । शरभाम्--अतीव सुन्दरीम्, यतस्तां दृष्ट्वैव जारपुरुषाश्छद्माद्यनेकां विक्रियाङ्कर्त्तुमुद्यता भविष्यन्ति ५ । विनताम् -कुब्जाद्यङ्गदोषयुताम् ६ ॥ विकटाम्- विस्तीर्णजघनाम् ७ ॥ आपस्तंबीय तृतीयखंड प्रथम पटलके १८ वें सूत्रमें कहा है कि, भाई आदि कुलवाली, अच्छे शील स्वभाववाली और लक्षणसम्पन्ना अर्थात् हाथकी रेखादि चिन्ह जिसके अच्छे हों (पतञ्जलि महर्षिके महाभाष्यके लेखानुसार पतिघ्नी पाणिरेखा आदि न हों) तथा क्षयी मृगी आदि असाध्य रोगवाली न हो ऐसी कन्यासे विवाह करे ॥ याज्ञवल्क्यस्मृतिमें भी कहा है कि, अन्य किसी वरके साथ पहिले न व्याही गई हो, वरके सपिण्ड कुलकी न हो, अति छोटी बालिका न हो रोगिणी न हो, जिसके भाई हो और गोत्रप्रवरकी न हो, ऐसी कन्यासे विवाह करना चाहिये ॥ और भी आपस्तंबीय तृतीयखण्डके प्रथम पटलके ११ वें सूत्रमें कहा है कि, दत्ताम्-अन्यके साथ विवाहिता १, गुप्ताम्-छिपीहुई अर्थात् जिसको अच्छे प्रकार देखा न हो और अशुभ लक्षणोंके कारण माता पिता जिसको गुप्त रखते हों २, द्योताम्-टेपरी (तीरीं) आदि विषमदृष्टिवाली ३, ऋषभाम् वृषभ स्वभाववाली ४, शरभाम्- अतीव सुन्दरी, (क्योंकि अतिसु॰ ˋ होनेसे व्यभिचारियोंकी निन्द्य क्रिया उसके

मुण्डाम्- मुण्डितकेशाम् ८ । मण्डूषिकाम्--कठोराम्, मण्डूकसदृश-त्वक्शरीरां वा, अथवा वामनशरीराम् ९। सांकारिकाम्यस्मिन् कुले जन्म जातम् तं कुलं विहायान्यकुलैः पालिताम्, वा मातृकुक्षौ स्थित्य-वसरे यस्याः माताऽस्थिसञ्चयनक्रियामकरोदेवम्भूताम् १० । राताम्--कामिनीमतिक्रीडने रताम् ११ । पालीम् -पशुपालनेऽतिदत्तचित्ताम् १२। मित्राम्-बहुभिः सह मित्रताकरणस्वभावाम् १३ । स्वनुजाम्-शोभना अतिसुन्दरी अनुजा लघुभगिनी यस्यास्ताम् १४ । वर्षकारीम्--नियत-गर्भकालादल्पकालेनैवोत्पन्नाम्, अथवा वरवयोवर्षादेकवर्षज्येष्ठवयस्वाम् वा यस्मिन् वर्षे वरस्य जन्म तस्मिन्नेव वर्षे समुत्पन्नाम् ॥ १५ ॥ इति ॥ एवमन्यत्रापि । यथा संस्कारभास्करे—

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥

लिये सदाही लगी रहती है) ५, विनताम्- कुबडापनादि अङ्ग दोष युक्ता ६, विकटाम्—फैली जांघोंवाली ७, मुण्डाम्—शिरके केश मुण्डित हों जिसके ८, मण्डूषिकाम्- कठोर वा मेंढकके सदृश त्वचाली अथवा बौनी शरीरवाली ९, सांकारिकाम्—अन्य कुलमें पैदाहुई और अन्यकुलने पालन किया हो जिसको या जिसके गर्भमें रहनेके समय उसकी माताने अस्थिसंचयनक्रिया किया हो १०, राताम् अतिकामिनी, खिलाडिन वा रतिशीलवाली ११, पालीम्- पशुओंके पालनेमें विशेष मन रखनेवाली १२, मित्राम् -बहुतोंके साथ मेल मित्रता रखनेवाली १३, स्वनुजाम्--जिसकी छोटी बहिन बहुतही दर्शनीय हो १४, वर्षकारीम् -नियत समयसे कम समयमें ही पैदा हुई हो या वरके अवस्थामें एक वर्ष बडी हो या जिस वर्षमें वर पैदा हुआ हो उसी वर्षमें उसका भी जन्महुआ हो १५, इन १५ प्रकारकी कन्यासे विवाह न करे ॥ संस्कारभास्करमें भी लिखा है कि, जिसके सभी अङ्ग सीधे और पूरे हों शास्त्रानुकूल सुन्दरनामवाली, हंस तथा हाथीके तुल्य गम्भीर चालवाली,

नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचालां न पिङ्गलाम् ॥

एवं वरस्य कन्यायाश्च पृथक् पृथक् गुणदोषादिकं दृष्ट्वा, तथैव विवाहसंबन्धे वरस्य कन्यायाश्च दूषितकुलमपि विचारयेत् । यथाह संस्कारभास्करे—

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रकुष्ठकुलानि च ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥

एवं वरकन्ययोर्गुणदोषादिविचारं कृत्वा कन्यायाः विशेषपरीक्षणं सुन्दर महीन मुलायम शरीरके बाल तथा केशवाली, सुन्दर छोटे दांतोंवाली, हाँथ पांव सभी अङ्ग कोमल हों जिसके, ऐसी कन्यासे विवाह करना चाहिये। और पीले केशोंवाली, अधिक अङ्गवाली, रोगिणी, अधिक लोमवाली या लोमही न होनेवाली, बहुत बोलनेवाली और कंजी या पीली आंखोंवाली. ऐसी कन्यासे निर्दोष वरका विवाह नहीं करना चाहिये ॥ इस प्रकार वर तथा कन्याके गुण दोषादि अलग अलग देखकर और विवाह करनेके लिये वरवाले कन्याके, तथा कन्यावाले वरके दूषित कुलका भी विचार करे । जैसा कि, संस्कारभास्करमें लिखा है कि—धर्म, कर्म, सन्ध्या, तर्पण, पञ्चमहायज्ञादि नित्य-नैमित्तिक काम्य कर्मकाण्डसे शून्य कुल १, जिस कुलमें पुरुषार्थी पुरुष न हों २, वेद वेदाङ्गपढनेसे शून्य ३, जिस कुलमें अधिक लोमवाले होते हों ४, जिसमें अर्श (ववाशिर) रोग होता हो ५, जिसमें क्षयी-राजरोग हों ६, जो मन्दाग्निवाले हों ७, मृगीरोगी हों ८, श्वेतकुष्ठवाले ९ और गलितकुष्ठवाले हों १० । इन ऊपर कहे १० कुलोंमें कन्याका अथवा लड़काका विवाह संवन्ध नहीं करे; चाहे ये कुल गौ आदि पशु और धन धान्यसे भरे पुरे और श्रीमान् हों परन्तु इन कुलोंको छोड़ देना चाहिये ॥

इस प्रकार वर तथा कन्याके गुण दोषादि विचार कर कन्याकी विशेष

कर्तव्यम् । यथाह गृह्यसूत्रे—" विज्ञानमस्याः कुर्यादष्टौ लोष्टानाहरेत्, सीतालोष्टं वेदिलोष्टं दूर्वालोष्टं गोमयलोष्टं फलवतो वृक्षस्याधस्ताल्लोष्टं श्मशानलोष्टं मध्वलोष्टमिरिणलोष्टमिति ॥ ९ ॥ देवागारे स्थापयित्वाऽथ कन्यां ग्राहयेत् । यदिश्मशानलोष्टं गृह्णीयादध्वलोष्टमिरिणलोष्टं वा नोपयमेत् ॥ " (मैत्रायणीयमानवगृह्यसूत्रे ७ खण्डे १ पुरुषस्य ९ ॥ १० सूत्रे) अनयोरर्थः--सीतालोष्टम्—हलचलितसस्यक्षेत्रलोष्टम् । वेदिलोष्टम्- हवनवेदिकायाः मृल्लोष्टम् । दूर्वासहितमृल्लोष्टम् । इरिणलोष्टम्—ऊषरभूमिमृल्लोष्टम् । देवागारे वरो वरपक्षीयो वा स्थापयित्वा कन्यां ग्राहयेत् । शेषं स्पष्टम् इति ॥ एवमन्यत्रापि--

" शक्तिविषये द्रव्याणि प्रतिच्छन्नान्युपसमाधाय ब्रूयादुपस्पृशेति ॥ १४ ॥ नानाबीजानि संसृष्टानि वेद्याः पांसून् क्षेत्राल्लोष्टं शकृद् श्मशानलोष्टमिति ॥ १५ ॥ पूर्वेषामुपस्पर्शने यथालिङ्गमृद्धिः ॥ १६ ॥ उत्तमं परिचक्षते ॥ १७ ॥ " एतेषामर्थः–शक्तिविषये वरो वर पक्षीयो वा नानाबीजानि संसृष्टानि--यवाद्यनेकसंमिलितबीजानि १ । वेद्याः पासून्—होमवेद्याः पांसून् २ । क्षेत्राल्लोष्टम्--

परीक्षा करे. जैसा कि, मानव गृह्यसूत्र सप्तम खण्ड प्रथम पुरुषके ९ वे १० वें सूत्रमें लिखा है कि, कन्याके गुप्त वा अदृष्ट दोषोंकी परीक्षाके लिये जुते खेत १, होमकी वेदी २, दूब ३, गोबर ४, जिसमें फल लगेहों ऐसे वृक्षके नीचेका ५, मरघट ६, मार्ग ७, और ऊषर भूमि इन सब स्थानोंमेंसे एकएक मट्टीका ढेला लेकर किसी देवताके मंदिरमें ढेला रखे और उनमेंसे एक ढेला कन्यासे उठवावे । यदि मरघट, मार्ग और ऊषरके ढेलोंमेंसे उठालेवे तो उस कन्याके साथ विवाह नहीं करे ॥ और ऐसेही आपस्तंबीय तृतीय खण्ड प्रथम पटलके १४, १५, १६, १७ सूत्रोंमें भी कहा है कि, शक्तिमान् घर वा कुटुंबके लोगोंकी सम्मति होतो आगे लिखे पाँच वस्तुके पाँच गोला वर या वरके पक्षवाले छिपावर बनावें और बने गोलोंको

सस्यक्षेत्राल्लोष्टम् ३ । शकृत् गोमयम् ४ । श्मशानलोष्टम्–श्मशानस्थानमृल्लोष्टम् ५ इति पञ्चद्रव्याणि प्रतिच्छन्नानि–लोष्टरूपाणि कृत्वा देवागारे उपसमाधाय–धृत्वा उपस्पृश इति कन्यां प्रति ब्रूयात् ॥ द्रव्यनिर्मितपञ्चलोष्टानां पूर्वेषाम् उपस्पर्शने यथालिङ्गम्–यथा द्रव्यरूपम् तथा ऋद्धिः-वृद्धिः । यथा–अन्नबीजलोष्टेन सन्तान वृद्धिः १ । होमवेदिलोष्टेन यज्ञादिकर्मकाण्डस्य वृद्धिः २ । क्षेत्रलोष्टेन धनधान्यवृद्धिः ३ । गोमयलोष्टेन गोवृषादिपशूनां वृद्धिः ४ । श्मशानलोष्टेन मरणवृद्धिः ५ । उत्तमं नामअन्त्यम्, श्मशानलोष्टम् आचार्याः अनिष्टं वदन्ति । यस्य स्पर्शनेन वरकन्ययोर्मरणं भवेदेकस्य वा ॥ इति (सू. १४-१७)॥ अन्यच्चापि–"यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिर्नेतरदाद्रियेतेत्येके " (आप० ३ खं० १ पट० २० सूत्रम्) अस्यार्थः–यस्यां कन्यायां वरस्य मनश्चक्षुषोः निबन्धो भूत्वा सन्तुष्टिर्भवेत् तस्यामेव वृद्धिर्विवाहेन। इतरत् कन्यारूपं वस्तु न आद्रियेत । इत्येके अचार्य्याः मन्यन्ते। (सू. २०) ॥ इति वरकन्ययोर्योग्यताविचारः ॥

किसी उत्तम स्थानमें रखके कन्यासे कहें कि, इनमेंसे एक उठाले । पांच वस्तु ये हैं–धान, जौ, गेहूं आदि मिलेहुये अनेक अन्नोंका १, वेदीकी धूलिका २, जुते खेतका ढेला ३, गोवरका ४ और श्मशानकी मट्टीका ५, इन पांचोके बने पाँच गोलेमेंसे एकको उठवावे । इनमें जो अन्नका ढेला उठावे तो सन्तानोंकी वृद्धि, गोवरसे पशुओंकी वृद्धि और मरघटके ढेला उठानेसे मरणकी वृद्धि । उत्तम नाम अन्त्यका अर्थात मर्घटके मट्टीका बना ढेला उठानेको आचार्य लोग बुरा कहते हैं । उससे वर कन्या ये दोनों, या किसी एकका मरण अवश्य होगा ॥ और आपस्तंबीय तृतीय खण्ड प्रथम पटलके २० वें सूत्रमें कहा है कि, जिस कन्यासे वरका मन और चक्षु लग जावे तथा ठीक सन्तुष्ट होजावे उसी कन्यासे विवाह करना अच्छा है विशेष विचारकी आवश्यकता नहीं; ऐसा किसी आचार्यका मत है ॥

इति बालबोधिनीटीकायां वरकन्ययोर्योग्यताविचारः ॥

अथ विवाहस्थिरीकरणप्रकारः।

"सुहृदः समवेतान् मन्त्रवतो वरान् प्रहिणुयात्॥" (आप० गृ० ४ खण्डे २ पट० १ सूत्रम्) अर्थः--वरावलोकनार्थं कन्यावलोकनार्थं वा तत्पित्रादयः सुहृदः-आत्मनः प्रेमकरान्। समवेतान्--सर्वकार्येषु संमिलनशीलान्। मन्त्रवतः--आत्मनः सर्वविषये सम्मतिकरान्। तथा, वरान्--वरकन्ययोर्गुणदोषादिलक्षणज्ञान् ब्राह्मणान् प्रहिणुयात्-प्रेषयेत्। इति॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण निरीक्षकद्वारा कन्यायाः वरस्य च यथासंभवं पूर्वोक्तलक्षणादिकं विचार्य ततो ज्योतिःशास्त्रोक्तशुभमुहूर्त्ते आदौ कन्यायाः आवरणम् ततो वरस्य वररक्षावाग्दानादिकर्मारंभपूर्वकं विवाहार्हशुभलग्ने वराय कन्यां प्रयच्छेत्। यथाह मानवगृह्यसूत्रे-
"संजुष्टां धर्मेणोपयच्छेत ब्राह्मेण शौल्केन वा॥"

(मान० गृ० ७ खण्डे १ पुरु० ११ सूत्रम्)

अब विवाह स्थिर करनेका प्रकार आगे कहते हैं जैसा कि, आपस्तंबीय चतुर्थ खण्ड द्वितीय पटलके १ सूत्रमें कहा है कि--वर या कन्या देखनेके लिये जिनको माता पितादि भेजें वे परम प्रेम रखनेवाले और सभी कामोंमें विशेष साथ व सुन्दर सलाह देनेवाले, वेदपाठी और कन्यावरके शास्त्रोक्त योग्यता अयोग्यताके लक्षणोंको अच्छे प्रकार जाननेवाले ब्राह्मणोंको भेजे। ऐसे निरीक्षकद्वारा कन्या तथा वरका पहिले कहेहुये यथासम्भव लक्षणादिकोंको विचार करलेने पर ज्योतिःशास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त्तमें पहिले वरपक्षवाले कन्याका आवरणकर्म अर्थात् ठहरौनी करे॥ तत्पश्चात् कन्यापक्षवाले वाग्दानके शुभ-मुहूर्त्तमें वररक्षा वाग्दान कर्मारम्भकर विवाहके शुभ मुहूर्त और सुन्दर लग्नमें वरके साथ कन्याका विवाह विधिपूर्वक कर देवे। जैसा मानव गृह्य सूत्र ७ खण्ड १ पुरुष ११ वें सूत्रमें कहा है कि, योग्य वरके साथ तद्योग्य कन्याका लक्षण मिलजानेसे ब्राह्म या आर्ष विवाहके विधिसे विवाह करे,

अर्थः—योग्यवरेण सह संजुष्टाम्-तद्योग्यलक्षणैः संयुक्तां कन्याम् ब्राह्मेण--ब्राह्मधर्मेण शौल्केन अर्थात् आर्षधर्मेण वा उपयच्छेत दद्यात् । इति (सू० ११) इति विवाहसोपाङ्गविधौ विवाहस्थिरीकरणप्रकारः ॥

अथ कन्यावरयोर्विवाहाङ्गप्रथमकर्मारम्भविचारः ।

यथा—केषाञ्चित्कुले कन्यापक्षीयाः वरगृहङ्गतास्तत्र वरावलोकनं कृत्वा कन्यायाः नाममात्रेण "वर्णो वश्यं तथा तारा" इत्यादि ज्योतिः शास्त्रोक्तप्रकारेण चिञ्चित् वरनाम्ना सह मेलनं कृत्वैव वरस्य वररक्षात्मकं वाग्दानम् (वरिच्छा) इति लोके प्रसिद्धं कर्म आदावेव कुर्वन्ति । तथा वरपक्षीयाः स्वगृहस्थिता एव कन्यागुणदोषादिनिरीक्षणं विनैव कन्यानामश्रवणमात्रेण सन्तुष्टाः कन्यया सह वरस्य विवाहनिश्चयं मत्वा विवाहदिन एव कन्यागृहे पाणिग्रहणसमयात् किञ्चित्प्रागेव कन्याव

(एक बैल और एक गौ अथवा दो बैल और दोगौ या इनके मूल्य कन्याके पिताको वर देकर विवाह करे तो आर्ष विवाह कहा जाता है)

इति बालबोधिनीटीकायां विवाहस्थिरीकरणप्रकारः ॥

अब कन्या वरके विवाह करनेको प्रथम कर्म-आरम्भ करनेमें विचार लिखते हैं; किसीके कुलमें कन्यापक्षवाले वरके गृह जाय वरको देखकर कन्या और वरके नामसे ज्योतिःशास्त्रमें कहे, वर्ण, वश्य और तारा आदिका कुछ मिलान कर विवाह स्थिर करके " वररक्षा वाग्दान " जिसको वरिच्छा या ठहरौनी लोकमें कहते हैं यही पहिला कर्म आरम्भ करते हैं, और वरपक्षवाले इस समय कुछ भी नहीं कर अपने घरहीमें बैठे कन्याके गुण दोषादि लक्षणोंको विना देखे ही केवल कन्याका नाम मात्र सुन परम सन्तुष्टतापूर्वक अपने बालकका विनदेखी कन्याके साथ विवाह स्थिर कर लेते हैं, और जब विवाह करनेके लिये वरसहित सब लोग कन्याके गृह पहुंचते हैं, तब कन्याके पाणिग्रहण समयसे कुछ पहिले कन्याको वस्त्राभूषणादि देकर कन्यावलोकन

लोकनात्मकमावरणरूपम् (चढाव) इति लोके प्रसिद्धं कर्म कुर्वन्ति । एवं विवाहदिन एव कन्यावलोकनं यद्भवति तच्छास्त्रविरुद्धत्वाच्छोभनं-न । तथा बहुदेशे कुलेऽपि च, बहुधा यथा वरस्य गुणदोषाद्यवलोकनं भवति तथैव वरपक्षीयाः कन्यागुणदोषाद्यवलोकनमप्यादौ कृत्वैव विवाहार्थनिश्चयात्मकं कन्यायाः आवरणम् (मुंहदेखनी, ठहरौनी, कुंकुमटीका) इत्यादिनामभिर्लोके प्रसिद्धं कर्म कुर्वन्ति, शोभनमप्येवम् । तथा एवमेव करणे यानि स्मृत्यादिप्रमाणानि तानि तु पूर्वमेव लिखितानि । अत्र तु किञ्चिज्ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रमाणमपि लिख्यते । पूर्वोक्त-प्रकारेण ज्ञातगुणदोषायां निश्चयमुहूर्तमाह—

पुण्याहे च विवाहर्क्षे चित्रावस्वश्विविष्णुभे ।
लब्ध्वा चन्द्रबलं दद्यात् निश्चयं सत्यया गिरा ॥

अन्यच्च मुहूर्तचिन्तामणौ विवाहप्रकरणे—

विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रैर्वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः । वस्त्रालङ्कारादिसमेतैः फलपुष्पैः सन्तोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ॥

आवरण स्वरूप चढ़ावचढ़ाना नामसे जो लोकमें प्रसिद्ध कर्म है सो करते हैं । इस प्रकार विवाहके दिनही प्रथम कन्यावलोकन करना यह शास्त्र विरुद्ध और अनेक अनिष्टकी सम्भावना रहनेसे अच्छा नहीं होता ॥ बहुधा तो अनेक देशोंमें तथा कुलोंमें तो जैसा वरका गुणदोषादि देखाजाता है, वैसा ही वरपक्षवालेभी कन्याका गुणदोषादि पहिलेही देख, विवाह स्थिर होनेका "कन्या आवरण" मुंह देखनी, ठहरैनी, कुमकुमटीका आदि नामोंसे जो लोकप्रसिद्ध कर्म है सो प्रयोग पहिले कन्याका करते हैं । तब वरका वररक्षा वाग्दान कर्म होता है ॥ इसी विधिसे कर्म करनेके लिये जो प्रमाण स्मृत्यादिमें कहे हैं उनको इस ग्रन्थमें पहिलेही लिखा है । अब यहां कुछ ज्योतिः शास्त्रके अनुसार जैसा मुहूर्तचिन्तामणि विवाहकेप्रकरणमें लिखाहै वह क्रम भी लिखते हैं कि- उत्तराषाढ, स्वाती, श्रवण, तीनों पूर्वा, अनुराधा, घनिष्ठा, कृत्तिका, अथवा वैवाहिक नक्षत्रोंमें पहिले वरपक्षवाले वस्त्र, अलङ्कार,

अस्यार्थः–उत्तराषाढा स्वाती श्रवणा पूर्वात्रयम् अनुराधा धनिष्ठा कृत्तिका अथवा वैवाहिकनक्षत्रेषु आदौ हि वरपक्षीयो वस्त्रालङ्कारफल-पुष्पैः कन्यां संतोष्य तस्याः आवरणम् (वरेण सह विवाहार्थमवरोधनम्) कुर्यात् ॥ इति लिखित्वा ततो वरस्य वरणमुहूर्त्तादिकं लिखितमस्ति ॥ एवं पूर्वोक्तप्रमाणादिभिस्त्वादौ कन्यायाः गुणदोषादिकं विचार्य तद्योग्यवरेण सह विवाहार्थकन्यायाः आवरणकं कृत्वैव वरस्य वाग्दानं विज्ञैः कर्तव्यमिति बहुसम्मतसिद्धान्तशोभनप्रकारः ॥ इति कन्यावरयोर्विवाहाङ्गप्रथमकर्मारम्भविचारः ॥

अथ कन्यावलोकनपूर्वक आवरणप्रयोगः ।

(मुंहदेखनी, ठहरौनी, सगाई, कुंकुमटीका, इत्यादिनामभिर्लोके प्रसिद्धः)

तत्र वरहितैषिणस्तत्पित्रादिसम्बन्धिनो ब्राह्मणेन सहिताः कन्यागृहं गताः तत्र पूर्वोक्तकन्यागुणदोषविचारप्रकारेणावलोकनं कृत्वा दोषरहितां शुभलक्षणोपेतां तद्वरयोग्यां कन्यां ज्ञात्वा शुभमुहूर्त्ते स्वस्तिवाचनमन्त्रोच्चारणपूर्वकं सर्वजनस्थितस्थाने कन्यामानीय शुभासने

फल पुष्पादिकोंद्वारा कन्याको संतुष्ट करके कन्याका आवरण अर्थात् वरके साथ विवाह करनेके लिये अवरोधन करे । ऐसा लिखनेके पश्चात् वरवरण करनेको मुहूर्तसहित विधान लिखा है ॥ इससे पहिले कहे सप्रमाणिक क्रमसे ही प्रथमही कन्याका गुणदोषादि विचारकर तिस कन्याके योग्य वरसे विवाह करनेको पहिले कन्याका, आवरण जिसके बाद वरको वाग्दान बुद्धिमानोंको करना चाहिये । यही बहुसम्मत सिद्धान्त और शोभन प्रकार है ॥

इति विवाहाङ्गप्रथमकर्मारम्भविचारः ॥

कन्याके देखने तथा आवरण करनेका प्रयोग लिखते हैं, जो मुंहदेखनी, ठहरौनी, सगाई, कुंकुमटीका इत्यादि नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध हैं। वरके हित चाहतेवाले पितादि संबंधी ब्राह्मणके सहित कन्याके गृह जाकर कन्याका पूर्वोक्त गुणदोषादि अवलोकन कर, दोषोंसे रहित शुभ लक्षणोंवाली, वरके योग्य जानकर सुन्दर मुहूर्तमें जहां सभी इष्ट मित्र बांधव बैठे हों ऐसे

पूर्वाभिमुखीमुपवेशयेत् ॥ स्वस्तिवाचनं यथा—ॐ स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु (य. अ. २५ मं. १९) इत्यादि । ततो वरपिताऽन्यो वा कश्चिद्ब्राह्मणश्चोत्तराभिमुखस्तत्रैवोपविश्य कन्यायाः आवरणं कर्म कुर्यात्। अत्र केषाञ्चित्कुले गणेशकलशस्थापनपूजनादिकमपि भवति । केषाञ्चित्कुले गणेशस्मरणमात्रमेव भवति तथैवात्र लिख्यते ॥ आवरणकर्ता कन्या च द्वावपि हस्ते द्रव्याक्षतादीन्यादाय—

ॐसुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

इत्यादिमन्त्रैर्गणपतिस्मरणं कुर्यातास् । तत आवरणकर्ता—

स्थानमें 'ॐस्वस्तिनइन्द्रो०' इत्यादि मन्त्र ब्राह्मणके पाठ करते हुये कन्याको लाय शुभासन पर पूर्वाभिमुखी बैठावे। और वरके पिता या और कोई पुरोहितादि ब्राह्मण कन्याके समीप बैठ कन्याका आवरण कर्म करे। इस समय किसी कुलमें गणेशादि नवग्रह पर्य्यन्तका स्थापन, पूजन (जैसा वरवृतिप्रयोगमें लिखाहै) करते हैं और किसीके यहां गणेशस्मरण मात्र ही होताहै। यहां ऐसाही प्रयोग लिखते हैं। कन्या तथा आवरणकर्ता दोनों ही द्रव्याक्षतपुष्पोंको ले हाथ जोड 'ॐ सुमुखश्च०' इत्यादि श्लोकोंसे गणेशका स्मरण करे। फिर आवरणकर्ता

१ गणेश-गौरी-कलश नवग्रहाणाम् स्थापन-पूजनादिकम् वरवृतिप्रयोगे दृष्ट्वा कारयितव्यम् ।

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥

इति मन्त्रेण कन्यायै वस्त्रालङ्कारादिकं दत्त्वोत्तिष्ठन् कन्याऽभिमुखं गतस्तां पुष्पमालां परिधाप्य द्रव्याक्षतपुष्पयुतं नारिकेलफलं पाणिभ्यामादाय वक्ष्यमाणवाक्यमुक्त्वा तस्याञ्जलौ निक्षिपेत् ॥ ॐअद्यदत्तैरेभिर्वस्त्रालङ्कारादिद्रव्यैः अमुकगोत्रोत्पन्नेन अमुकनामवरेण सहोद्वाहार्थम् अमुकगोत्रोत्पन्नाम् अमुकनाम्नीम् त्वां सन्तोषयामि त्वं सन्तुष्टा भव ॥ इति सन्तोष्य ततः कुसुमरङ्गरञ्जितेनैकेन वस्त्रेण तामावृण्वन् वक्ष्यमाणवाक्यं पठेत्–अयि कन्ये ! अनेनावरणकर्मणा त्वं गायत्री सावित्री सरस्वतीव सुभगा भूत्वा सुरक्षिता भव ॥ एवं कृत्वा द्वावपि ब्राह्मणादिभ्यो यथाशक्ति दक्षिणादिकं दत्त्वोत्तिष्ठन्तौ ब्राह्मणान् गुरुन् वृद्धांश्च प्रणमेयाताम् ॥

इति विवाहसोपाङ्गविधौ कन्याऽऽवरणप्रयोगः ॥

कन्याको संतुष्ट करनेके लिये यथोचित वस्त्र और अलङ्कारादि गणेशको स्पर्श करायकर–ॐ मङ्गलं भगवान्' इस श्लोकको पढताहुआ कन्याको देवे । पुनः कन्याके संमुख खडा हो पुष्पोंकी माला कन्याको पहिनावे । फिर यथासंभव द्रव्य अक्षत और पुष्पोंसहित कुंकुमरंजित नारियल या सुपारी दोनों हाथोंमें लिये हुये 'ॐ अद्य दत्तैरेभि०' इत्यादि वाक्योंको पढ कन्याके गोदमें देदेवे । इस प्रकार कन्याको संतृष्ट कर पुनः एक कुसुम रंगसे रंगी चुंदरी या रेशमी लाल या पीला पीताम्बरसे कन्याको ओढाता हुआ 'अयि कन्ये०' इस वाक्यको कहे । इस प्रकार आवरण होजानेपर कन्या तथा आवरणकर्ता यथाशक्ति दक्षिणा ब्राह्मणोंको देखकर उठै और ब्राह्मण गुरू आदि वृद्धोंको प्रणाम करे ॥

इति बालबोधिनीटीकायां कन्या आवरणकर्मप्रयोग ॥

अथ वाग्दानविधिः ।

(सम्प्रति वाग्दानस्यैव वररक्षा-वरावलोकनादीनि पर्य्याय-
वाचकानि नामानि लोके प्रसिद्धानि)

यत्र यस्मिन्कुले त्वादौ गणपतिस्मरणान्ते सङ्कल्पपूर्वक गणेशगौरीकलशग्रहाणां पूजनं कृत्वा वाग्दानं भवति, तत्र सङ्कल्पस्त्वेवं भवति यथा--पूजास्थाने पूर्वाभिमुखो वरश्चोत्तराभिमुखो वाग्दाता स्थितौ आचमनादि गणपतिस्मरणं कृत्वा सङ्कल्पं कुर्याताम् । तद्यथा-वरः ॐ विष्णुरित्यारभ्य अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे सुमुहूर्ते अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकनामाहं स्वकीयविवाहाङ्गभूतवररक्षाविषयकवाग्दानग्रहणकर्मणि निर्विघ्नार्थं माङ्गल्यार्थं च गणपतिवरुणग्रहादीनां यथोपस्थितोपचारैः पूजनं करिष्ये ॥ तथैव वाग्दातापि-ॐ विष्णुरित्यादिमासाद्युल्लिख्य अमुकगोत्रः अमुकशर्म्माऽहं अमुकगोत्रोत्पन्नायाः अमुकीनाम्न्याः कन्यायाः विवाहङ्गभूत अमुकगोत्रोत्पन्न अमुकनामकवररक्षणार्थवाग्दानकर्मणि शुभतासिद्ध्यर्थं गणपत्यादिपूजनं करिष्ये ॥ एवं सङ्कल्प्याग्रे यथा वर—-

अब वाग्दानकी विधि लिखते हैं—वर्तमानसमयमें वाग्दानहीका नाम वरेक्षण-वररक्षा वरावलोकन या वरकी ठहरौनी आदिनामोंसे लोकमें प्रसिद्ध है । जहां जिस कुलमें पहिले गणेशस्मरणके बाद संकल्प पूर्वक गणेश गौरी कलश और ग्रहोंका पूजन कर वाग्दान होता है, तहां संकल्प इस प्रकार होता है कि, पूजा स्थानमें पूर्वाभिमुख वर और उत्तर मुख वाग्दाता बैठ आचमनादि गणेश—स्मरणपर्य्यन्त कर्म कर कुशादि हाथमें ले आगे लिखे अनुसार दोनोंही संकल्प इस प्रकार करे कि, पहिले वर 'ॐविष्णुर्विष्णु०' आदिसे आरम्भकर अमुकके स्थानोंमें वर्तमान मासादिकोंका नाम कहता हुआ 'पूजनङ्करिष्ये' संकल्प करे ॥ और दूसरा वाग्दाताभी वैसेही 'ॐ विष्णु०' से आरम्भकर अमुकके स्थानोंमें नामादिलेताहुआ 'पूजनं

वृत्तिप्रयोगे गणेशादिग्रहान्तानां पूजनं लिखितं तथैव कृत्वा वाग्दानं कर्तव्यमिति ॥ तथा बहुकुलेषु गणेशस्मरणमेवादौ कृत्वा वाग्दानं भवति । तथैवात्र प्रयोगोऽपि लिखितः । यथाहवृद्धमनुः--

वरं संपूज्य खार्जूरं फलं दत्वा मुखे तथा ।
सुरक्षितं तु कन्यार्थे कुर्य्याद् वाग्दानपूर्वकम् ॥ १ ॥

इति विवाहसोपाङ्गविधौ वाग्दानविधिः ॥

अथ वाग्दानप्रयोगः ।

तत्र कन्यापिता भ्राता पुरोहितोऽन्यो वा कश्चिद्ब्राह्मणो वरगृहं गतस्तत्र वरस्य पूर्वोक्तगुणदोषादिलक्षणं ज्ञात्वा स्वयमुदङ्मुख उपविश्य, वरोऽपि स्वलंकृतः कृतकुङ्कुमादितिलकः प्राङ्मुख उपविशेत् । द्वावपि हस्ते द्रव्यपुष्पादिकं गृहीत्वा गणपति स्मरणं कुर्यास्ताम् ।

करिष्ये' पर्य्यन्त संकल्प कर तत्पश्चात् वरवृतिप्रयोगमें जैसा कलश गणेश गौरी और ग्रहादिकोंका स्थापन पूजनादि लिखा है वैसाही करके वाग्दान करना चाहिये । तथा बहुत कुलोंमें केवल गणपतिस्मरण ही प्रथम कर वाग्दान होता है । सो इसी प्रकारका प्रयोग यहां लिखते हैं । जैसा वृद्धमनुजीने कहा है कि वाग्दाता वरकी पूजा गन्धमाल्यादिद्वारा कर उसके मुखमें खार्जूर (छोहारा या बताशा) देकर "वाग्दान" अर्थात् कन्याके साथ विवाह करनेके लिये सुरक्षित करदेवे । इति विधिः ॥

अब वाग्दानका प्रयोग लिखते हैं कि- कन्या का पिता वा भ्राता या पुरोहित अथवा कोई भी ब्राह्मण वरके गृह जाय, पूर्वमें कहे वरके गुण दोषादि लक्षणोंको कन्याके योग्य विचार आप उत्तरमुख होकर बैठे । और वर भी कुंकुमका तिलक माथामें लगाय सुन्दर वस्त्रादि धारण किये पूर्व मुख बैठे । इस प्रकार दोनों ही अपने आसनोंपर बैठे हुए हाथोंमें द्रव्याक्षत पुष्प

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ॥
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥
विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
सरस्वतीं प्रणम्यादौ सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥
सर्वेष्वारब्धकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥
श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ध्यायामि । इति ॥

ततः वाग्दाता वरं पुष्पमालादिभिरलंकृत्य तन्मुखे खार्जूर फलं (छोहारा) तदभावे वातासां (बताशा) दत्त्वा

ले गणपतिस्मरण (ॐ सुमुखश्चैक०) इत्यादि ध्यायामि पर्यन्त कह कर करे। फिर वाग्दाता वरको पुष्पमालादिकोंसे अलंकृत कर उसके मुखमें खार्जूर फल

स्वयं साक्षात् पूगीफलयज्ञोपवीते यथोचितं द्रव्यं चादाय वाग्दानवचनं पठेत्—

वाचा दत्ता मया कन्या पुत्रार्थं स्वीकृता त्वया ।
कन्यावलोकनविधौ निश्चितस्त्वं सुखी भव ॥ १ ॥
तुभ्यं कन्यार्थिने वाचा कन्यादानं प्रयच्छति ।
तन्निश्चयार्थं मद्दत्तं गृह्यतां साक्षतं फलम् ॥ २ ॥

अमुकीनाम्न्या कन्यया सह विवाहार्थं सुरक्षितो भव । इति पठित्वा वरहस्ते पूगीफलादिकं दद्यात् ॥
(छोहारा या बताशा) देकर अपने हाथोंमें सुपारी नारिकेल फल यज्ञोपवीतका जोडा और यथोचित द्रव्य ले वाग्दानवचन—' वाचा दत्ता० ' इत्यादि पढकर वरके हाथमें पूगीफलादिदेवे ॥

---

१ पुत्रार्थमित्यत्र--पत्न्या सहाग्निहोत्रादि तस्य स्वर्गफलं स्फुटम् ' ब्राह्माद्युद्वाहसम्भूतः पितॄणां तारकः सुतः विवाहस्य फलं त्वेतद्व्याख्यातं परमर्षिभिः ॥ इति स्मृतिसंग्रहोक्तादिप्रमाणेन विवाहस्य पुत्रोत्पादनमेव मुख्यप्रयोजनमुक्तम् । अतोऽत्र वरं प्रति उक्तवाक्ये पुत्रार्थम् पुत्रोत्पादनार्थं त्वया स्वीकृता, इत्येवार्थो विज्ञैः स्वीकृत इति

भाषार्थ—वाग्दाताका वरसे वाचा दत्तादि वचन कहनेका यह अर्थ है कि, मैंने तुमको वचनद्वारा कन्या दिया और तुमने पुत्र उत्पन्न करनेके अर्थ कन्याको स्वीकार किया, अब अपने विवाहार्थ दूसरीकन्याके निरीक्षणकर्मसे निश्चिन्त हो आप सुखी होवें ॥ और वाग्दातासे वरभी ऐसाही आगे लिखा प्रतिवचन कहेगा ॥ प्रतिवचनमें कहेहुए (पुत्रार्थम्) शब्दका (पुत्रके साथ विवाह करनेको) ऐसा अर्थ कोई मानकर वरके पितासे यह वचन कहना और उन्हीसे प्रतिवचन लेना बताते है । किन्तु ऐसा अर्थ वरकन्याके विवाहसंबन्धमें मानना शास्त्रविरुद्ध है; क्योंकि, मानवगृह्यसूत्र अष्टम खण्ड प्रथम पुरुषके सप्तमसूत्रमें कन्या ग्रहण करनेमें " पुत्रेभ्यस्त्वा प्रति गृहणामि " यही वरका कहना लिखा है कि, पुत्रोत्पादनहीके अर्थ मैं तुमको ग्रहण करता हूं । और यहां टिप्पणीमें जो स्मृतिसंग्रहका प्रमाण लिखा है उसमें भी पुत्रोत्पादनार्थही विवाहका मुख्यप्रयोजन कहा है ॥ इत्यादि शास्त्रप्रमाणोंसे विद्वानोंका यही सिद्धान्त अर्थ है कि, वाग्दाता वरहीसे ' वाचादत्तादि ' वचन कहै और आगे लिखा प्रतिवचन वाग्दातासे वरही कहै ॥ इति ॥

ततो वरः दत्तं पूगीफलादिकं गृहीत्वा–

वाचा दत्ता त्वया कन्या पुत्रार्थं[1] स्वीकृता मया।
वरावलोकनविधौ निश्चितस्त्वं सुखी भव॥ इति पठेत्।

यदि गणेशाद्यावाहनपूर्वकं वाग्दानं कृतश्चेत्तदा-ॐ यान्तुदेवगणाः इत्यादि वाक्यैस्तानपि विसृज्य, ततः ब्राह्मणादिभ्यो यथाशक्ति दक्षिणादिकं दत्त्वा ब्राह्मणान् गुरुन् वृद्धांश्च प्रणमेत्॥

इति विवाहसोपाङ्गविधौ वाग्दानप्रयोगः॥

अथ वरवृतिकर्मप्रयोगः।

(तिलक–टीका–फलदान–नामभिर्लोके प्रसिद्धः)

तत्र नारदस्मृतौ (अध्या० १२। २। ३) यथा–

स्त्री पुंसयोस्तु संबन्धाद्वरणं प्राग् विधीयते।
वरणाद्ग्रहणं पाणेः संस्कारोऽपि विचक्षणैः॥ इति।

तब वर भी दिये हुए फल द्रव्यादि हाथमें लेकर वाग्दातासे 'वाचा दत्ता' इत्यादि प्रतिवचन कहदेवे। इसके पीछे पुरोहितादि ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणादि देवे। यदि गणेश कलशादि स्थापन होकर वाग्दान हुआ हो तो उनका विसर्जन 'ॐ यान्तु' इत्यादि वाक्योंसे करके तब ब्राह्मण, गुरु और वृद्धोंको प्रणाम कर इस कर्मको पूर्ण करदेवे। यह वाग्दान प्रयोग पूरा हुआ॥

अब वरवृतिप्रयोग लिखते हैं-जो तिलक, टीका, फलदान आदि नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध है॥ इसका विधान शास्त्रकारोंने इस प्रकार लिखा है, जैसे नारदस्मृति अ० १२।२।३ में है कि, कन्या और वरके यथोचित लक्षणादि स्थिर होजानेपर स्त्री और पुरुष इन दोनोंके विवाह संस्कार संबन्ध होनेमें पहिले वरण करना तत्पश्चाद् पाणिग्रहणका विधान करना विद्वानोंने निश्चित किया है। इस प्रमाणसे वरण प्रथमही करे॥ तथा मुहूर्तचिन्तामणिके विवाह

---

१ पुत्रोत्पादनार्थम्।

मुहूर्तचिन्तामणौ विवाहप्रकरणे—

धरणिदेवोऽथवा कन्यकासोदरः शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संयुतः । वरवृर्ति वस्त्रयज्ञोपवीतादिना ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वा-त्रयैराचरेत् ॥ इति ॥

तत्र क्रमः—शुभदिने कन्याप्रदः स्वगृहे श्रीखण्डचन्दननारिकेल-फलहरिद्रपूगीफलदूर्वायज्ञोपवीतानि तथा यथोचितोष्णीषादिवस्त्राभर-णानि यथाशक्ति द्रव्याणि च कुंकुमाक्ततण्डुलपूरितबृहत्पात्रे (स्थाली लोके) वरवरणसामग्रीं निधापयेत् । ततः कन्याभ्राता पुरोहितोऽन्यो वा कश्चिद्ब्राह्मणः गणपतिस्मरणपूर्वकं पूर्वोक्तवरणसामग्रीं गृहीत्वा वरगृहं व्रजेत् । ततः 'सुमुखश्च' इत्यादि 'जनार्दनाः' इत्यन्तं पठित्वा गणपतिस्मरणं कुर्यात् । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः । इति ॥ ततो वरगृहं गतस्तत्र शुभ-मुहूर्तलग्नवेलायामङ्गणादिशुभस्थाने उदङ्मुख उपविश्य ततः स्वलङ्-प्रकरणमें वरवृति करना इस प्रकार बताते हैं कि, तीनों उत्तरा, रोहिणी, कृत्तिका और तीनों पूर्वा, इनमेंसे किसी नक्षत्रवाले दिन शुभ मुहूर्तमें, पुरो-हितादि कोई ब्राह्मण या कन्याका सगा भाई, मङ्गल गान वाद्योंके सहित, वस्त्र यज्ञोपवीत द्रव्यआदि द्वारा कन्यादान ग्रहण करनेके अर्थ वरका वरण करे इति ॥ वरण करनेका क्रम यह है कि, कन्यादाता शुभदिन विचार अपने गृहमें, मलयागिरि चन्दनका मुट्ठा, नारियल फल, हरिद्रा, सुपारी, दूर्वा, यज्ञोपवीतके जोडे तथा यथोचित पगडी आदि वस्त्र, आभूषणादि और यथाशक्ति द्रव्योंको कुंकुमके रंगे चावलोंसे भरे बडे थालमें वर वरणकी सभी सामग्री धर देवे । फिर पुरोहितादि कोई ब्राह्मण या कन्याका सगाभाई वरणकी साम्ग्रियोंको लेकर वरण कर्ता "ॐ सुमुखश्चैक०"[1] इन श्लोकों द्वारा गणे-शस्मरण पूर्वक वरके गृह जानेके लिये यात्रा करें ॥ वरके गृह पहोंच, वहां शुभमुहूर्त और सुन्दर लग्नके समय अङ्गणादि पूजास्थानमें 'ॐ स्वस्तिन

१ इनका ध्यान ३६ पृष्ठमें देखलेना ।

कृतं कृतकुङ्कुमकेशरादिशुभतिलकं वरमपि स्वस्तिवाचनपूर्वकं तत्रैवानीय शुभासने प्राङ्मुखमुपवेशयेत् । स्वस्तिवाचनं यथा--

ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु (य० अ० २५ मं० १९) ॥ १ ॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वेनो देवाऽअवसागमन्निह (य० २५ मं० २०) ॥ २ ॥ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः (य० अ० २५ मं० २१) ॥ ३ ॥ शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रानश्चक्रा जरसन्तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्यारीरिषतायुर्गन्तोः (य० अ० २५ मं० २२) ॥ ४ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता सपिता सपुत्रः । विश्वेदेवाऽअदितिः पञ्चजनाऽअदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् (य० अ० २५ मं० २३) ॥ ५ ॥ दीर्घायुत्त्वाय बलाय वर्च्चसे । सुप्रजाय त्वाय सहसाऽअथो जीव शरदः शतम् ॥ ६ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वᳬशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि (य० अ० २५ मं० १७) ॥ ७ ॥ सुशान्तिर्भवतु ॥ इति ॥

'ॐस्वस्तिनइन्द्रो इत्यादि मन्त्रोंको ब्राह्मणोंको पढते रहनेपर वरणकर्ता आयकर उत्तरमुख आसनपर बैठे और कुंकुम केशरादि मंगल तिलक लगाये वस्त्राभरणसे

ततो वरो वरणकर्ता च द्वावपि सहैव गणपत्यादिपूजनं कुर्यातास् । तद्यथा--आचम्य प्राणानायम्य कुशानीतजलैः--

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु इत्यात्मानं पूजाद्रव्याणि चाभिषिंच्य द्रव्याक्षतान् गृहीत्वा वरो वरणकर्ता च पूर्वोक्तरीत्या 'सुमुखश्च' इत्यादिना 'जनार्दनाः' इत्यन्तं पठित्वा गणपतिस्मरणं कुर्याताम् ॥ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । कुलदेवेभ्यो नमः । इष्टदेवेभ्यो नमः । ग्रामदेवेभ्यो नमः सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ॥ ततः कुशादीन्यादाय-वरः--ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भागवतो महापुरुषस्य श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणोद्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेत वाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भारतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे आर्यावर्तैकदेशे बौद्धावतारे अमुकनाम-संवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथा-यथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवंगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्म्मा अमुकगोत्रोत्पन्नया अमुकनाम्न्या

समलङ्कृत वरको भी लायकर पूर्वाऽभिमुख आसनपर बैठावे । इस प्रकार बैठ जानेपर वर और वरणकर्ता दोनोंही गणपत्यादिका पूजन प्रारंभ करें ॥ तीन आचमनके बाद प्राणायाम कर कुशासे जल 'ॐ अपवित्रः' इस मन्त्रसे अपने और पूजाकी सब सामग्रियों पर छिडक देवे । फिर हाथमें द्रव्याक्षत ले 'ॐ सुमुखश्चैक' इत्यादिसे गणपतिस्मरण कर द्रव्यादि पृथ्वीपर छोड, फिर दोनोंही कुश जल हाथोंमें ले संकल्प करे । वर ॐ विष्णुः' इत्यादि कह अमुक स्थानोंमें वर्तमान संवत्सरादिका नाम कहता हुआ

कन्यया सह स्वकीयविवाहाङ्गभूतपाणिग्रहणार्थवरणग्रहणकर्मणि शुभतासिद्ध्यर्थं गणपतिकलशग्रहाणां स्थापनं पूजनञ्चाहं करिष्ये॥ वरणकर्त्तापि कुशादीन्यादाय मासाद्युच्चार्य अमुकगोत्रः अमुकशर्मा अमुकगोत्रायाः अमुकनाम्न्याः कन्यायाः विवाहाङ्गभूतवरवरणकर्मणि शुभतासिद्ध्यर्थं गणपत्यादिदेवानां यथोपस्थितोपचारैः पूजनमहङ्करिष्ये॥ ततः कलश--गणेश--गौरी--ग्रहाणां स्थापनादिकं कुर्यात्। तद्यथा--यजमानो गन्धादिपञ्चोपचारैः भूमिं "ॐ भूम्यै नमः॥ इति संपूज्य। भूमिस्पर्शनम्--ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीन्दृꣳह पृथिवीम्मा हिꣳसीः॥ (य० अ० १३ मंत्र १८) गोमयनिर्मितां गौरीमुपस्पृश्य ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नो ऽअश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमि त्वा हवामहे॥ (य. १६ मं. १६) कलशतले सप्तधान्यं यवान्वा ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनाम्पयोऽसि (य. अ. १ मं. २०) इति मंत्रेण प्रक्षिप्य धान्योपरि कलशं पूर्वोक्तधातुजं मृण्मयं वा -ॐ आ

'पूजनञ्चाहं करिष्ये' पर्यन्त कहकर जल छोडदेवे॥ वरणकर्ता भी ऐसाही कुशादि ले 'विष्णुः' इत्यादि कह 'पूजनङ्करिष्ये पर्यन्त दूसरा संकल्प कर जल छोड देवे। तदन्तर कलश, गणेश, गौरी और ग्रहोंका स्थापन पूजनादि निम्नलिखित रीतिसे वर और वरकर्ता दोनोंही करते जावें। 'ॐभूम्यै नमः' इस मंत्रसे भूमिकी पूजा यथोपचार गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य यह पंचोपचारसे कर भूमिस्पर्शन

जिंघ्रकलशम्मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्ज्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्म्मा विशताद्रयिः ॥ (य० अ० ८ मं० ४२) इति निक्षिप्य कलशे शुद्धजलम् ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्त्थो व्वरुणस्यऽऋतसदन्न्यसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥ (य० अ० ४ मं० ३६) इति मंत्रेण पूरयित्वा कलशकण्ठे रक्तवस्त्रं सूत्रं वा ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः । तं धीरासः कवयऽउन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः ॥ इति मंत्रेण वेष्टयेत् । ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ कलशे गन्धमुचन्दनादिना परिलेपनञ्च कृत्वा ॐ याऽओषधीः पूर्व्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा । मनै नु बभ्रूणामहं शतन्धामानि सप्त च ॥ (य० अ० १२ मं ७५) कलशे सर्वौषधीः । ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ॥ य० अ० ३६ मंत्र १३) इति सप्तमृदः । ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः

'ओंभूरसि' मन्त्रसे गौरीका स्पर्श 'ॐ मानस्तोके' मंत्रसे कलशके नीचे सप्तधान्य या यव 'ॐ धान्यमसि' मन्त्रसे धान्यपर कलश पहिले कहे प्रकार धातु या मट्टीका 'ॐ आजिघ्रकलश, मन्त्रसे कलशमें शुद्धजल 'ॐ वरुणस्योत्तं०' मन्त्रसे कलशके कण्ठमें रक्त वस्त्र या सूत्र वेष्टित करे 'ओं युवासुवासा' मंत्रसे वा 'ओं परिवाज पतिः' मन्त्रसे कलशमें गंध 'ओं गन्धद्वारां' मन्त्रसे छोडे और कलशके ऊपर भी लगा देवे। कलशमें

१ सप्त धान्यानि-व्रीहि--चावल १, यव--जवा २, गोधूम--गेहूं ३, नीवार--ककुनी ४, श्यामाक--सांवा ५, मुद्ग--मुंग ६, और माष--उडद ७ ॥

परुषस्परि। एवानों दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ (य० अ० १३ मंत्र २०) इति दूर्वाङ्कुराणि। ॐ या ॰ फलिनीर्य्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वहंस ॥ (य० अ० १२ मंत्र ८९) इति पूगीफलम्। ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ (य० अ० ११ मंत्र २५) इति कलशे पञ्चरत्नानि। ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (य० अ० १३ मंत्र ४) इति हिरण्यम्। ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मानयतिकश्चनससस्त्यश्वकःसुभद्रिकां कांपीलवासिनीम् ॥ इति पञ्चपल्लवान् आम्रपल्लवं वा। ॐ पवित्रेस्त्थोवैष्णग्गह्यौ सवितुर्वःप्रसवऽउत्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य

'सर्वौषधी ओं 'औषधी' मंत्रसे छोडै ॥ सप्तमृत्तिका—'ॐ स्योना पृथिविनो०' मन्त्रसे, दूर्वा 'ॐ काण्डात्काण्डात् प्र०' मन्त्रसे, पूगीफल 'ॐ या फलिनी' मन्त्रसे पञ्चरत्न, 'ॐ परिवाजपति०' मन्त्रसे हिरण्य, ॐ हिरण्य गर्भ०' मन्त्रसे पंचपल्लव या आम्रपलव, ॐ अम्बे अम्बिके०' मन्त्रसे कुशा

---

१ सर्वौषध्यः-मुरा--मुर्रा १, वचा--२, कुष्टं--कूट ३, शैलेयं--प्रसिद्ध है ४, हरिद्रा ५, दारुहरदी ६, सुंठी ७, चम्पक ८, मांसी--जटामासी ९, और मुस्ता--नागरमोथा १० ॥ सर्वाभावे सतावरी--सब न मिलै तो सतावर ही छोडै ॥

२ सप्तमृदः—अश्वस्थान--घोडाके नीचेकी १, गजस्थान-हाथीके थानकी २, वल्मीक-वेम उरकी ३, संगम--नदीके संगमकी ४, हृदकी ५, चतुष्पथकी ६, रथकी ७ इति ॥

३ पञ्चरत्नानि—कनकं--सुवर्ण या सोना १, कुलिशं--हीरा २, नीलं--३, पद्मरागं—पोखराज ४, और मौक्तिकं- मोती ५ ॥ इति ॥

४पञ्चपल्लवान्—उदुम्बर--गूलर १, न्यग्रोध--वट २, अश्वत्थ- पीपल ३, जांबू--जामुन या पाकर ४, आम्र--आम ५ ॥ इति ॥

यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ (य० अ० १ मं० १२) इति कलशे कुशान् । ॐ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा ऽ इषमूर्ज्जꣳ शतक्रतो ॥ (य० अ० ३ मं० ४९) इति कलशोपरि तण्डुलपूर्णपात्रम् । ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा ॥ (य० अ० ३ मं० ९) इति कलशपूर्णपात्रोपरि घृतदीपम् । इति मङ्गलकलशं संस्थाप्य तत्समीपे पूर्णपुटकादावक्षतपुञ्जोपरि पूगीफलं निधाय तत्र गणेशमावाहयेत् । अक्षतान् गृहीत्वा--

हे हेरंब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज ।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुः पितः ॥
नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज ।
भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः ॥
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः ।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां रक्ष च मे क्रतुम् ॥

ॐ गणानान्त्वेति गृत्समदऋषिर्लिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दो गणपत्यावाहने विनियोगः । ॐ गणानान्त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳ

ॐ पवित्रेस्थो० ' मन्त्रसे छोडे । कलशके ऊपर तंडुलपूर्णपात्र "ॐ पूर्णादर्वि " मन्त्रसे धरे । पूर्णपात्र पर घृत दीप " अग्निर्ज्ज्योति० " मंत्रसे धरै ॥ इस प्रकार कलशस्थापन कर समीप ही पर्णपुटकादिमें रक्ताक्षत पुंजपर पूगीफल रख उसीपर महागणपतिका आवाहन, हाथमें अक्षत ले ' हे हेरम्ब० ' इत्यादि ' आवाहयामि ' तक मन्त्रोंको पढकर करे ।

हवामहे व्वसो मम । आहमंजामि गर्ब्भधमात्वमंजासि गर्ब्भधम् ॥ (य० अ० २३ मं० १९) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः महागणपतिं आवाहयामि ॥ पुनरक्षतान् गृहीत्वा गोमयनिर्मितायां गौर्यां--ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥ (य० अ० ३१ मं० २२) ॐ भूर्भुवः स्वः गोमयपिण्डे गौरीं सांगां सपरिवाराम् आवाहयामि । पुनरक्षतान् गृहीत्वा कलशे वरुणं ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो व्वरुणेहबोध्युरुशꣳ समानऽ आयु ऽप्रमोषीः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं आवाहयामि ॥ पुनरक्षतान् गृहीत्वा— ॐ मनोजूर्ज्जुतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमन्दधातु व्विश्वे देवास ऽ इह मादयन्तामोꣳ ३ प्रतिष्ठ ॥ (य० अ० २ मंत्र १३) ॥ गणपत्याद्यावाहितान् देवान् प्रतिष्ठापयामि । आसनार्थे चाक्षतान् समर्पयामि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः । इति मंत्राभ्यां यथोपस्थितोपचारैः गणेशं गौरीञ्च संपूज्य ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः । इति वरुणं गन्धादिभिरेव संपूजयेताम् । ॐ अद्यार्चनायां

फिर अक्षत ले गोमय निर्मित गौरपर गौरीका "ॐ श्रीश्चते०" मन्त्रसे आवाहन करे ॥ पुनः अक्षत ले कलशमें वरुणका "ॐ तत्त्वायामि०" मन्त्रसे आवाहन और "ॐ मनोजूति०" इस मन्त्रसे प्रतिष्ठा कर आसनार्थ अक्षत समर्पण करदेवे। इसके पश्चात् "ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धि०" और "ॐ भूः० गौर्यै०" आदि तथा "ॐ भू० वरुणाय० ॥

गन्धाक्षतपुष्पधूपदीपनैवेद्यतांबूलदक्षिणादिसहितया अनया पूजया गणपत्यादिदेवताः प्रीयन्तान्नमम । ततः कलशे गङ्गाद्यावाहनं कुर्यात्-

ॐ सर्व्वे समुद्रास्सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥

ततः कलशाभिमन्त्रणम् । अनामिकाग्रेण स्पृष्ट्वाः-

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्व्वे कलशन्तु समाश्रिताः ।

ततः कलशप्रार्थना—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा; सपैतृकाः ॥

आदि इन नाममन्त्रोंसे अथवा वैदिक या पौराणिक मन्त्रोंसे षोडशोपचार वरुणका गन्धसे आरम्भकर पूजन करे । अर्थात् पाद्यम्, अर्घ्यम्, आचमनीयम्, स्नानीयम्, वस्त्रम्, चन्दनम्, अक्षतान्, पुष्पम्, धूपम्, दीपम्, नैवेद्यम् आचमनीयजलम्, तांबूलम्, पूगीफलम्, दक्षिणाम् इन सभोंसे पूजा कर हाथमें जल ले "ॐ अद्यार्चनायां०" इत्यादि "प्रीयन्तान्नमम" पर्यन्त कह जल छोड देवे ॥ फिर कलशमें गंगादिका आवाहन 'ॐ सर्वे स० इस श्लोकसे कर, अपनी अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे कलशको स्पर्श कर अभिमन्त्रण 'ॐ कलशस्य इत्यादि 'समाश्रिताः' पर्यन्त कहके करना ।

त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः।
त्वत्प्रसादादिदं कर्म कर्त्तुमीहे जलोद्भव।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।

ततः गणपतये विशेषार्घ्यं दद्यात्, तद्यथा—पात्रे रक्ताक्षतगन्धपुष्पद्रव्यफलजलानि गृहीत्वाः—

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक।
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो।
वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्व्वदेवनमस्कृत।
अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम॥

ॐ सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः। विशेषार्घ्यं समर्पयामि॥
ततः प्रार्थना—

ॐ विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय। नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥ भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय। विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते॥

नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक॥

फिर हाथ जोड़ प्रार्थना 'देवदानन०' इत्यादि 'प्रसन्नो भव सर्वदा' पर्यंत कहके करना। तत्पश्चात् ताम्रादिपात्रमें रक्ताक्षत, गंध, पुष्प, द्रव्य, फल और जल लेकर 'ॐ रक्षरक्ष०' इत्यादि 'विशेषार्घ्यं समर्पयामि' पर्यन्त कह गणेशको विशेषार्घ्य देवे। फिर हाथ जोड प्रार्थना 'ॐ विघ्नेश्वराय' इत्यादि

लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय।
अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥

इति कलशगणेशगौरीपूजनं कृत्वा ततः पीठे पर्णपुटे वा सूर्यादिदेवानावाह्य पूजयेत्। यथा अक्षतान् गृहीत्वा ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्याय नमः, सूर्यमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्रमसे नमः, चन्द्रमसमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः भौमाय नमः, भौममावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः बुधाय नमः, बुधमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः गुरवे नमः, गुरुमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः शुक्राय नमः, शुक्रमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः शनये नमः, शनिमावाहयामि, ॐ भूर्भुवः स्वः राहवे नमः, राहुमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः केतवे नमः, केतुमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः अधिदेवेभ्यो नमः, अधिदेवानावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः प्रत्यधिदेवेभ्यो नमः, प्रत्यधिदेवानावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः कुलदेवेभ्यो नमः, कुलदेवानावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः ग्रामदेवेभ्यो नमः, ग्रामदेवानावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः, इन्द्रादिदशदिक्पालानावाहयामि, ॐ भूर्भुवः स्वः गणपत्यादिपञ्चलोकपालेभ्यो नमः, गणपत्यादिपञ्च लोकपालानावाहयामि। ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमन्दधातु। विश्वेदेवासऽइहमादयन्तामोꣳ३म्प्रतिष्ठ (य० अ० २ मंत्र १३)॥ ॐ सूर्याद्यावाहितान्देवान् प्रतिष्ठापयामि॥ इत्यक्षतान्प्र-

'सर्वकार्येषु सर्वदा' पर्यन्त कह करना। इस प्रकार कलश, गणेश, गौरीका पूजन पूर्ण कर फिर सूर्यादिग्रहोंका, किसी नव कोष्ठात्मक पीठ या पर्णपुटमें 'ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्याय०' आदिनाममन्त्रों अथवा वैदिक या पौराणिकमन्त्रों द्वारा सभीका आवाहन, प्रतिष्ठा कर सर्वोपचारसे "ॐ सूर्याद्यावा०" इत्यादि नाममंत्रसे पूजनकर हाथमें जल ले। 'अद्यार्चनायां०' इत्यादि

क्षिप्य, सर्व्वोपचारैः ॐ सूर्याद्यावाहितेभ्यो देवेभ्यो नमः । इति मन्त्रेण सर्वान् संपूज्य हस्ते जलमादाय—ॐ अद्यार्चनायां स्नानादिर्दक्षिणा-सहितया अनया पूजया सूर्य्याद्यावाहिता देवताः प्रीयन्तान्न मम ॥ इति जलं प्रक्षिपेत् । ततः प्रार्थना——

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रश्शनिराहुकेतवः सर्व्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

सर्व्वेभ्य आवाहितदेवेभ्यो नमः ॥ इति कलश गणेश-गौरी-ग्रहाणाम्पूजनं कृत्वा वरः वरणकर्ता च पुरोहितादियथासंख्य-ब्राह्मणानां पूजनं कृत्वा मङ्गलवाचनार्थं दक्षिणां दद्यात् । तद्यथा-ॐ ब्राह्मणाय नमः । इति मंत्रेण पादप्रक्षालनादिभिरेकैकं संपूज्य हस्ते कुशजलदक्षिणाश्चादाय ॐ अद्य अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय मङ्गलवाचनार्थम् इमां दक्षिणाम् तुभ्यम् अहं संप्रददे । इति दद्यात् । ब्राह्मणः दक्षिणां गृहीत्वा, ॐ मङ्गलं तवास्तु । इति ब्रूयात् ॥ ततो वरणकर्ता— ॐ वराय नमः, वरचरणाभ्यान्नमः । इति वाक्येन वरपादौ प्रक्षाल्य तस्य ललाटे मन्त्राभ्याम तिलकं कुर्यात् । मन्त्रौ यथा—ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषञ्चरन्तम्परितस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि १ ।

वाक्य कह जल छोड, फिर प्रार्थना—'ब्रह्मामुरारि०' इस श्लोकसे कर देवे ॥ यह कलश , गणेश, गौरी और ग्रहादिकोंका पूजन पूराकरके तदनन्तर वर और वरणकर्ता अपने पुरोहितादि जितने ब्राह्मणोंको होसके मङ्गलवाचनार्थ पूजन कर दक्षिणा दे देवे । इस प्रकार कि- 'ओं ब्राह्मणाय नमः' इस मन्त्रसे एक एक ब्राह्मणका पादप्रक्षालनादि पूजन कर, हाथमें कुश, जल, दक्षिणा ले 'ओं अद्य०' इत्यादि गोत्र नामोंको कह 'मङ्गलवाचनार्थम्' आदि 'संप्रददे' पर्यन्त कह ब्राह्मणको दक्षिणा दे देवे । ब्राह्मण दक्षिणा लेकर 'ओं मङ्गलन्तवास्तु' ऐसा कहदेवे । फिर वरणकर्ता 'ओं वराय नमः' इत्यादि वाक्यसे वरके चरणोंको धोय, फिर अपने हाथोंको धोकर, कुंकुमादिसे वरके माथेमें 'ओं युञ्जन्ति०' इन

युञ्जन्त्यस्य काम्म्याहरी विपक्षसारथे । शोणाधृष्ण्णूनृवाहसा (य० अ० २३ मं० ५, ६) ॥ २ ॥ इति । ततः पुष्पमालाञ्च परिधाप्य हस्ते कुशजलसहितां वरणसामग्रीं गृहीत्वा । ॐ विष्णुर्विष्णुः अद्य पूर्व्वोच्चरितग्रहगुणविशिष्टायां तिथौ शुभे मुहूर्ते अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अमुकगोत्रोत्पन्नायाः अमुकीनाम्न्याः कन्यायाः विवाहाङ्गभूतपाणिग्रहणकर्तृत्वेन अमुकगोत्रोत्पन्नममुकनामकं वरं सुपूजितमेभिः कुङ्कुमाक्ततण्डुलपूरितपात्रश्रीखण्डचन्दननारिकलेपूगीफलहरिद्रादूर्वाव--स्त्रादिभिर्यथाशक्तिद्रव्यैश्च त्वामहं वृणे ॥ इति वरं वृत्वा श्लोकं पठेत्—

ॐ शुभे कालेऽस्मिसान्निध्ये कन्यां स्नाते ह्यरोगिणि ।
अव्यङ्गेऽपतितेऽक्लीबे पिता तुभ्यं प्रदास्यति ॥

पुरोहितादिश्चेत् तदा " दाता तुभ्यं प्रदास्यति" इत्यूहः कार्य्यः ॥ ततो वरणसामग्रीं वरो गृहीत्वा—ॐ वृतोऽस्मि—इति पठेत् ॥ अस्मिन्नेवावसरे केचित् लग्नपत्रिकामपि ददति पुरोहितः श्रावयति च । इति ॥ ततः पुरोहिताय समुचितां वरदक्षिणाम् दद्यात् । हस्ते कुशादीन्यादाय ॐ अद्य अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अस्य

दो मन्त्रों द्वारा तिलक अक्षत लगाय, फूलोंकी माला बरको पहिनाय देवे । और अपने हाथमें कुश जल सहित वरणकी सामग्री ले--' ॐ विष्णु० ' इत्यादि अमुक स्थानोंमें गोत्र नामादि कहता हुआ ' अहं वृणे ' पर्यन्त पूरा संकल्प कर वरको देवे । और ' ॐ शुभे काले० ' इस श्लोकको कह देवे । यदि भाई वरणकर्ता नहीं हो दूसरा कोई हो तो श्लोकमें जो पिता शब्द है उसके स्थानमें दाता शब्द कहकर पढे । और वर इस वरणकी सामग्रियोंको ग्रहण कर, ' वृतोऽस्मि ' ऐसा कहदेवे । इसी अवसरमें कन्याके यहाँसे आई हुई लग्नपत्रिका वरके पुरोहित पढके सबको अर्थ बताते हैं ॥ तत्पश्चात् वर और वरणकर्ता अपने पुरोहितादि ब्राह्मणोंको इस प्रकार दक्षिणादेवे कि, हाथमें कुश जलादि ले ' ॐ अद्य० ' इत्यादि गोत्रनामोंको कहता हुआ

कर्मणः परिपूर्णतासिद्ध्यर्थं अमुकगोत्राय अमुकशर्म्मणे पुरोहितब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे ॥ इति दक्षिणां दत्त्वा पुनरपि कुशादीन्यादाय—ॐ अद्यास्मिन्कर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं भूयसीं दक्षिणान्नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च यथाभागं विभज्य दातुमहमुत्सृजे ॥ इति संकल्प्य दक्षिणावितरणंकुर्यात्। ततः पुरोहितः यजमानललाटे तिलकं कुर्य्यात्, तत्र मन्त्रः—

ॐ मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुड़ध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥ इति ॥

ततो यजमानौ हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा—

ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।
इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

गणपत्याद्या अत्रावाहिताः देवाः स्वस्थानं गच्छन्तु ॥ इति देवान् विसृज्य प्रणमेत्।

ॐ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या व्रतपूजाक्रियादिषु।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

इति विष्णुं स्मृत्वा, हस्ते जलमादाय, अनेन कर्मणा भगवान् प्रजापतिः प्रीयतान्न मम ॥ इति जलमुत्सृज्य, द्रव्यादिभिः—

'संप्रददे' पर्यन्त कह पुरोहितको दक्षिणा दे और भी ब्राह्मणों दीन, अनाथोंको देनेके लिये भूयसी दक्षिणासहित कुशजलादि हाथमें ले 'ॐ अद्यास्मिन्०' इत्यादि 'समुत्सृजे' पर्यन्त संकल्पकर ब्राह्मणदिकोंको बांट देवे ॥ फिर पुरोहित यजमानके माथे में तिलक लगावे 'ॐ मङ्गलम्भगवान्०. इस मंत्रसे तत्पश्चात् यजमान अपने हाथमें अक्षत ले 'ॐ यान्तु देव०' इस मंत्रको कह सब आवाहित देवताओंका विसर्जन अक्षत छोडकर कर देवे। फिर हाथ जोड 'ॐ यस्य स्मृत्या०' इत्यादि श्लोक कह विष्णुका स्मरणकर हाथमें जलले 'अनेक कर्मणा०' इस वाक्यको कह जल छोड

नापितादीन् सन्तोषयेताम् । तथासनादुत्तिष्ठन्तौ ब्राह्मणान्, गुरून्, वृद्धांश्च प्रणमेताम् ॥ इति ॥ अथाग्रे यथाविहितकाले शुभे मुहूर्ते वरगृहे कन्यागृहे च तत्पित्रादयः शास्त्रविहितैः स्वकुलदेशाऽऽचारैः मृत्तिकामाङ्गल्यादिकर्म कुर्याताम् ॥ इति वरवरण (तिलक) प्रयोगः ॥

अथ अकृतगर्भाधानादिसंस्कारप्रायश्चित्तम् ।

तत्रादौ यदि कन्याया गर्भाधानादिचूडाकर्मपर्यन्ता अष्ट संस्काराः स्वस्वकाले न कृताः स्युश्चेत्तदातिक्रान्तगर्भाधानादिसंस्कारलोपजनितप्रायश्चित्तं सङ्कल्पपुरस्सरमनादिष्टहोमं च बौधायनस्मृत्युक्तप्रकारेण पिता कुर्यात् ॥ तथैव वरस्यापि च यदि गर्भाधानादिसंस्काराः स्वस्वकाले न कृताः स्युस्तथोपनयनावसरेऽप्यतिक्रान्तगर्भाधानादिसंस्कारलोपजनितप्रायश्चित्तं न कृतश्चेत्तदातत्पितापि स्वगृहेऽवश्यमेव प्रायश्चित्तप्रयोगं कुर्य्यात् ॥

देवे । फिर नापितादिकोंको भी द्रव्यादि द्वारा संतुष्टकर आसनसे उठे और ब्राह्मण गुरु और वृद्धोंको प्रणाम करे इस प्रकार कर्मके वाद यथाविहित कालमें वरगृह और कन्यागृहमें अपने देश--कुलके अनुसार मृतिका माङ्गल्यादि कर्मोंको करें ॥ इति बालबोधिनीटीकायां वरवरण (तिलक) प्रयोगः ॥

अब गर्भाधानादि संस्कार जिनका नहीं हुआ उनके लिये प्रायश्चित्त लिखतेहैं--कि, पिताने यदि कन्याका विवाह करना निश्चित कर लिया और उसका गर्भाधानादि चूडाकर्मपर्यन्त आठ संस्कार अपने अपने समय पर नहीं किये गये हैं तो उन छूटे हुये गर्भाधानादिसंस्कारोंके लोपका प्रायश्चित्त संकल्पपूर्वक अनादिष्टहोम वौधायनस्मृतिके अनुसार पिता अवश्यही करलेवे । तथा वरकाभी गर्भाधानादि संस्कार अपने कालोंपर यदि नहीं किये गये हों और उपनयनसंस्कारकरनेके अवसरमें भी यदि संस्कारोंके लोपका प्रायश्चित्त नहीं किये गये हों तो वरके पिताको भी चाहिये कि, अपने यहां प्रायश्चित प्रयोग अवश्यही करें ॥

अथ बौधायनस्मृत्युक्तातिक्रान्तगर्भाधानादिसंस्कारलोपजनितप्रायश्चित्तप्रयोगः । तत्र कन्यागृहे कन्यापिता, वरस्यापि प्रायश्चित्तकरणे वरपितापि च स्वस्वगृहे वरवरणकर्मानन्तरं कस्मिंश्चिदपि शुभे दिने, अथवा मण्डपाच्छादनान्ते विवाहदिवसात् प्रागेव यथावकाशं वा शुभे दिने कन्यापिता कन्यासहितो वरपिता वरसहितः सपत्नीकः मङ्गलं स्नात्वा अहतवाससी परिधाय धृतमङ्गलतिलकोऽलङ्कारादिभिरलंकृतः यत्र कुत्रापि गोमयोपलिप्तायां शुद्धायां भूमौ मण्डपे वा शुभासने पूर्वाभिमुख उपविश्य स्वदक्षिणतः पत्नीं तद्दक्षिणतः कन्यां पुत्रं वोपवेश्य धृतपवित्रपाणिः, आचम्य प्राणानायम्य कुशानीतजलैः—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ॐ पुण्डरी काक्षःपुनातु ॥ इति सपत्नीकं कन्यासहितं पुत्रसहितं वा आत्मानं सर्वसंभारांश्च

अतिक्रान्त गर्भाधानादि संस्कारलोपजनित प्रायश्चित्तका प्रयोग बौधायनस्मृतिमें कहे प्रकारसे लिखते हैं । कन्यागृहमें कन्याका पिता और वरके लिये भी प्रायश्चित्त करना हो तो वरपिता भी अपने गृहमें कर्म करे । कन्याका " आवरण " तथा वरका " तिलक " होनेसे पहिले ही अथवा इन कर्मोंके हो जानेके पीछे ही किसी शुभदिनमें मण्डपाच्छादन होनेके पहिले या पीछे अर्थात् विवाह होनेके दिनसे पहिलेही जिस सुन्दरदिनमें अवकाश हो कन्याका पिता कन्यासहित, वरका पिता वरसहित सपत्नीक मङ्गलस्नान कर अहतवस्त्रोंका जोडा पहिन माथेमें कुंकुमादिका तिलक लगाय सुन्दर आभूषणोंसे समलङ्कृत हो गोमयसे लिपीहुई कहीं पवित्रभूमिमें अथवा मण्डपहीमें आय शुभासनपर पूर्वाभिमुख स्वयं बैठ अपने दहिने स्त्रीको और उसके दहिने संस्कार्यपुत्र अथवा कन्याकोभी बैठाकर अपने हाथोंमें कुशकी पवित्री पहिन तीन बार जलका आचमन कर फिर जलसे कुशोंद्वारा 'ॐ अपवित्रः' से 'पुनातु०' पर्य्यन्त कहता हुआ पत्नी और कन्या या पुत्रसहित अपने तथा सभी

संप्रोक्ष्य द्रव्याक्षतपुष्पाण्यादाय "ओं सुमुखश्च" इत्यादि "जनार्दनाः" इत्यन्तं पठित्वा गणपतिस्मरणं कुर्यात् । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ध्यायामि । इति । ततः कुशजलान्यादाय प्रतिज्ञासंकल्पं कुर्यात् यथा—विष्णुरित्यादि देशकालसंकीर्तनान्ते अमुकगोत्र अमुकशर्मा (कन्यापिता अमुकगोत्राया' अमुकनाम्न्याः मम कन्यायाः) (वरपिता अमुकगोत्रस्यः अमुकनाम्नो मम पुत्रस्य) स्वस्वकाले अकृतगर्भाधानादिसंस्कारजनितदोषपरिहारार्थमद्य शिष्टाचारप्राप्तं गणेशपूजनमादौ कृत्वा ततः कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चित्तप्रत्याम्नाययथाशक्ति गोनिष्क्रयद्रव्यदानपूर्वकं व्याहृत्याद्यनादिष्टहोमात्मकं प्रायश्चित्ताख्यकर्माहङ्करिष्ये । इति ॥ ततो विवाहमण्डपएव यदि कृतं भवेत्, तदा तु तत्र पूर्वावाहितानेव ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशगौरीकलशाधिष्ठितादिसर्वमण्डपस्थिताभ्यो देवताभ्यो नमः । इति मंत्रेण स्नानीयम् जलम् गन्धम् अक्षतान् पुष्पाणि धूपम् दीपम् नैवेद्यम् । नैवेद्यान्ते आचमनीयम् जलम् ताम्बूलं पूगीफलं दक्षिणाम् समर्पयामि । इति पूजयित्वा हस्ते जलमादाय अनया पूजया गणेशादयोऽत्र पूजिता देवाः प्रीयन्ताम् ।

समाप्रियोंपर जलसिञ्चन करे । तत्पश्चात् हाथमें द्रव्याक्षत और पुष्प ले "ॐ सुमुखश्चैक०" से "ध्यायामि" पर्यन्त श्लोकादि कह गणपतिस्मरण कर द्रव्यादि पृथ्वीपर छोड देवे । फिर कुशजल हाथमें ले इस प्रकार प्रतिज्ञा संकल्प करे कि-'ॐ विष्णु०' इत्यादि देशकाल और अपना गोत्रनाम कहनेके उपरान्त कन्यापिता 'अमुकगोत्रायाः' इत्यादि अपनी कन्याका और वरपिता-'अमुक गोत्रस्य०' इत्यादि अपने पुत्रका गोत्र नामादि कह "स्वस्वकाले अकृत०" इत्यादि "कर्माहङ्करिष्ये" पर्यन्त कहकर जल छोड देवे । यदि विवाहमण्डपहीमें कर्म आरम्भकिया हो तब तो पहिलेके आवाहित गणेशादिका "ॐ भूर्भुवः स्वः गणेश, गौरी०" इत्यादि नाममंत्रद्वारा स्नानसे दक्षिणापर्यन्त पूजनकर हाथमें जलले 'अनया०' से ले आगे 'न

न्तान्न मम, इति जलमुत्सृजेत् । मण्डपाद्भिन्नस्थाने यदि भवेत् तदा पत्रपुटकादौ अक्षतपुञ्जोपरि पूगीफलं निधाय तत्र ॐ भूर्भुवः स्वः महागणपतये नमः । महागणपतिम् आवाहयामि स्थापयामि । इति गणपतिमेवमावाह्य पूजनं सर्वोपचारैः कुर्यात् ॥ ततस्त्वेकं ब्राह्मणं गन्धादिभिः संपूज्य हस्ते कृच्छ्रत्रयात्मकगोनिष्क्रयभूतं रजतं सुवर्णद्रव्यं वा कुशजलसहितञ्चादाय ॐ पूर्व्वोच्चारितशुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (कन्यापिता अमुकगोत्रायाः अमुकनाम्न्या मम कुमार्याः कन्यायाः) (वरपिता तु अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणः मम पुत्रस्य) स्वस्वकाले अकृतगर्भाधानादिसंस्कारजनितदोषपरिहारार्थं कृच्छ्रत्रयात्मकप्रत्याम्नायेन इदं यथाशक्ति गोनिष्क्रयद्रव्यं अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय सुपूजिताय तुभ्यमहं संप्रददे ॥ इति संकल्प्य ब्राह्मणाय दद्यात् ॥ यदि अग्रे वक्ष्यमाणाहोमादिकर्म कर्त्तुं स्वयमशक्तश्चेत्तदाचार्यद्वारा कारयेत् । तद्यथा—आचार्यार्थमेकं ब्राह्मणंगन्धादिभिः संपूज्य वरणसामग्रीं कुशजलादिकञ्चादाय ॐ अद्य-

मम' पर्यंत कह जल छोड़ देवे । यदि मण्डपसे भिन्नस्थानमें कर्मारंभ किया हो तो किसी पात्रमें अक्षतपुञ्जपर एक सुपारीधर उसपर "भूर्भु०" इत्यादिनाममन्त्रसे आवाहनादि समस्तपूजन करे फिर यजमान किसी सुपात्र ब्राह्मणको गन्धादिसे पूजनकर अपने हाथमें तीन कृच्छ्रका गोदान अथवा गोनिष्क्रय रूप चांदी वा सुवर्ण द्रव्य कुशजलसहित ले 'ओंपूर्वोच्चरित०' आदि अपना गोत्रनामपर्य्यन्त कह कन्यापिता—"अमुक गोत्रयाः" इत्यादि अपनी कन्याका गोत्रनाम कहे और वरपिता 'अमुकगोत्रस्य' इत्यादि अपनेपुत्रका गोत्रनाम कहनेके वाद 'स्वस्वकाले" इत्यादि ब्राह्मणके गोत्रनामोंको कहता हुआ "संप्रददे" पर्यन्त कह कर सुपूजित ब्राह्मणके हाथमें द्रव्यादि दे देवे ॥ तत्पश्चात् होमादि कर्म करनेमें यदि स्वयम् असमर्थ होतो ब्राह्मणको आचार्यकर्म करनेकेलिये वरण कर उसीके द्वारा कर्म करे॥सो इस प्रकार है कि,आचार्य होनेकेलिये एक ब्राह्मणकी पूजा गंधादिसे कर हाथमें वरणसामग्रीसहित कुशजल ले 'ॐ अद्य'

अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा (कन्यापिता अमुकगोत्रायाः अमुकीनाम्न्याः ममकन्यायाः) (वरपिता तु—अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणः मम पुत्रस्य) अकृतगर्भाधानादिसंस्कारजनितदोषपरिहारार्थकर्त्तव्यप्रायश्चित्तहोमकर्मणि आचार्यकर्म कर्त्तुं अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः द्रव्यादिभिराचार्यत्वेन त्वामहं वृणे ॥ ॐ वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । ॐ यथाविहितं कर्म कुरु । इति यजमानः ॐ करवाणि इति आचार्यो वदेत् । ततः आचार्यः पूर्वाभिमुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य हस्ते कुशादीन्यादाय ॐ अद्येत्यादि, अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अमुगोत्रेण अमुकशर्मणा यजमानेन वृतोऽहमाचार्य्यकर्म करिष्ये । इति संकल्प्याऽग्निस्थापनादि कर्म कुर्य्यात् । यदि स्वयमेव कर्त्ता भवेत्तदाचार्यवरणमकृत्वा स्वयमेवाग्निस्थापनादि कर्म कुर्य्यात् । इति ॥

अथाग्निस्थापनम् ।

तत्र तुषकेशशर्करादिरहितस्थण्डिलोपरि भूमिं कुशैः परि—

इत्यादि, अमुक स्थानोंमें नामोंको कन्यापिता या वर पिता अपने अपने अनुसार 'वृणे' पर्य्यन्त संकल्प कर पूजित ब्राह्मणको देदेवे । और ब्राह्मणवरणसामग्री ले "ॐ वृतोस्मि" ऐसा प्रतिवचन कह देवे फिर यजमान 'ॐ यथा विहि०' आदि कहे । और ब्राह्मण 'ॐ करवाणि' ऐसा प्रतिवचन कहके यजमानके स्थानमें स्वयं, आचार्य बैठ जलसे तीन वार आचमन और प्राणायाम कर हाथमें कुशजलादि ले "ॐ अद्य०" इत्यादि कह अमुकके स्थानोंमें नामोंको कहता हुआ "करिष्ये" पर्य्यन्त पूराकर जल छोड़देवे । और आगेका कर्म अग्निस्थापनादि आचार्य ही आरम्भ करे ॥ यदि यजमान स्वयम् होमादि कर्म करनेमें प्रवृत्त हो तो आचार्यके वरणसे यहाँ प्रतिज्ञा संकल्पपर्य्यन्त कर्मोंको नहीं कर गोनिष्क्रय देनेके पश्चात् अपने आसनपर बैठे ही अग्निस्थापनादि सभी कर्मोंको आरम्भ करदेवे ॥

समुह्य, तान्कुशानीशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य श्रुवमूलेन प्रागग्रप्रादेशमात्रमुत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणैवानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य ततः-कांस्यपात्रेणाग्निमानीय स्वाभिमुखं तत्र निदध्यात् । तद्रक्षार्थं किञ्चिदिन्धनं नियुज्य आनीताग्निपात्रे जलाक्षतादि क्षिपेत् ॥ ततः हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा अग्ने विटनाम शाण्डिल्यगोत्र शाण्डिल्याऽसितदेवलेति त्रिप्रवरान्वित भूमिमातः वरुणपितः मेषध्वज प्राङ्मुख मम संमुखो भव ॥ इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य विटनामाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य, ब्रह्मवरणं कुर्य्यात् । तद्यथा—हस्ते पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय । ॐ अद्य (कन्यापिता—अमुकगोत्रायाः अमुकीनाम्न्याः कन्यायाः) (वरपिता तु अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणः पुत्रस्य) अकृतगर्भाधानादिसंस्कारजनितदोषपरिहारार्थकर्तव्यप्रायश्चित्तहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्त्तुममुकगोत्र-

अग्निस्थापन प्रयोग—इस प्रकार है कि—भूसी केश, कंकड़ी और भस्म आदि रहित हवनार्थ पहिलेसे बनी वेदीकी भूमिको कुशोंद्वारा चारोंतरफसे वटोरकर उन कुशोंको ईशानकोणमें फेंक उस वटोरे स्थानको गोवर और जलसे लीप, इस लिपे स्थानपर स्रुवके मूलसे प्रादेशमात्र प्रागग्र उत्तरोत्तरक्रमसे तीन रेखा वेदीमें खींचे, और उल्लेखन क्रमही करके प्रत्येक रेखाओंपरसे अनामिका और अंगुष्ठ द्वारा मट्टी उठाउठाकर फेंक रेखास्थानोंपर जल छिडक दे । फिर कांसेके पात्रमें अग्निको रख आग्नेय दिशासे ले आकर पश्चिममुख विटनाम इस अग्निको स्वयं पूर्वमुख होकर वेदीमें स्थापनकर इसके रक्षित रहनेके लिये कुछ इन्धन इसमें लगा देवे और जिस पात्रमें धरके अग्नि लाये हैं उस पात्रमें जलाक्षतादि छोड़ देवे । और हाथमें अक्षत ले 'अग्नेविट नाम' इत्यादि 'सम्मुखो भव' पर्यन्त कह विट नाम अग्निकी प्रतिष्ठा करके ब्रह्माका वरण करे । सो इसप्रकार कि, वरणकी सामग्री पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, वस्त्रादि कुश जल सहित हाथमें ले 'ॐअद्य०' इत्यादिकह कन्यापिता—'अमुक गोत्राया, इत्यादि कन्याका गोत्र नाम वा वरपिता 'गोत्रस्य' इत्यादि पुत्रका गोत्र

ममुकशर्म्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ॥ इति ब्रह्माणं वृणुयात् ॥ ॐ वृतोऽस्मि इति प्रतिवचनम् । ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं निधाय तदुपरिप्रागग्रान्कुशानास्तीर्य, अग्निप्रदक्षिणतो ब्रह्माणमानीय अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव इत्यभिधाय, भवानि इति तेनोक्ते तदासनोपरि ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेशयेत् ॥ ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा, वारिणा परिपूर्य्य, कुशैराच्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरत्तः कुशोपरि निदध्यात् ॥ ततः परिस्तरणं बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तमुत्तराग्रान् । ब्रह्मणोऽग्निपर्य्यन्तं पूर्वाग्रान् । नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तमुत्तराग्रान् । अग्नितः प्रणीतापर्य्यन्तं पूर्वाग्रान् कुशान् स्तृणुयात् ॥ ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्, पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भम्

नाम कहकर 'अकृत' इत्यादि 'वृणे' पर्यन्त पूरा कह वस्त्रादि ब्राह्मणको देदेवे। और ब्राह्मणभी 'ॐवृतोऽस्मि' ऐसा कहै । फिर यजमानके 'यथाविहितं इत्यादि कहनेपर, 'ब्रह्मा'ॐकरवाणि ऐसा कहै । तब अग्निसे दक्षिणमें शुद्धासन, बिछाय उसपर कुशोंको पूर्वाग्र फैलाय कर, अग्निके पूर्वतरफसे ब्रह्माको ले आकर 'अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव' ऐसा कह, ब्रह्माके 'भवानि' ऐसा कहने पर, उसी बिछाये आसनपर ब्रह्माको उत्तराभिमुख बैठा देवे । फिर प्रणीतापात्रको अपने आगेकर उसमें जलभर और कुशोंसे आच्छादित कर ब्रह्माकी ओर देख अग्निसे उत्तरमें बिछे हुए कुशोंपर रखदेवे तदनन्तर, परिस्तरण अर्थात् अग्निके सब ओर कुशोंको इस प्रकार बिछावे कि—बर्हिषश्चतुर्थभाग, अर्थात् ८१ कुशोंके चौथाई भाग २० कुशोंको अग्निकोणसे ईशानको तांई उत्तराग्र बिछावे । दूसरा २० कुशोंका भाग ब्रह्मासे अग्निपर्य्यन्त पूर्वाग्र । तीसरा २० कुशोंका भाग नैर्ऋत्यकोणसे वायव्यकोणपर्यन्त उत्तराग्र । और चौथा २० कुशोंका भाग अग्निसे प्रणितापर्य्यन्त पूर्वाग्र बिछादेवे । तथा एक कुशसे वाम हाथ खाली नही करे । तत्पश्चात् अग्निसे उत्तरमें पश्चिम दिशासे पूर्वके तरफक्रमसे पात्रोंका रखना इस प्रकार आरम्भकरे कि—पवित्रच्छेदनार्थ तीन कुश १ । पवि-

कुशपत्रद्वयम् प्रोक्षणीपात्रम् आज्यस्थाली सम्मार्जनकुशाः उपयमनार्थं वेणीरूपकुशाः समिधस्तिस्रः स्रुवः आज्यम् षट्पञ्चाशदुत्तरयजमान-मुष्टिशतद्वयावच्छिन्नामतण्डुलपूर्णपात्रम् पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्व-दिशि क्रमेणासादनीयम् ॥ इति पात्रासादनम् ॥ ततः पवित्रच्छेदनकुशैः प्रादेशमिते पवित्रे प्रमाप्य छित्त्वा सपवित्रदक्षिणकरेण प्रणीतोदकम् त्रिः प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षिप्य अनामिकाङ्गुष्ठाभ्याम् उत्तराग्रे गृहीतपवित्राभ्याम् तज्जलं किञ्चित् त्रिरुत्क्षिप्य ततः प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्ते करणम् अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुद्दिङ्गनम् । पुनः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रं त्रिरभिषिच्य प्रोक्षणी-

त्रक बनानेकेलिये एककुशमेंसे बीचोबीचवाले दो पत्र अग्रभागसहित निकालै जिन दो पत्रोंके बगलमें तीसरा और कोई पत्र नहीं लगरहा हो ऐसे दोनों कुशपत्र २ । प्रोक्षणीपात्र ३ । आज्यस्थाली ४ । सम्मार्जनकेलिये तीन कुश ५ । उपयमनके लिये चोटीके समान गुंथे, अग्रछोरमें गन्थिलगे अर्थात् वेणी-रूप तीन कुश ६ । अंगुष्ट समान मोटी, छिलका लगी विना चिरी या घुनी प्रादेशमात्र लंबी कटी हुई ऐसी तीन समिधा ७ । छिडल आदिकी तीन लकडी । स्रुवा ८ । आज्य ९ । यजमानके दोसौ छप्पन मुट्ठी चावलोंकापूर्ण पात्र १० । इन १० वस्तुओंका स्थापन पवित्रछेदनके कुशोंसे पूर्वपूर्वमें क्रमसे करके तत्पश्चात् पवित्र छेदनके तीन कुशोंसे अग्रसहित प्रादेशमात्र नपेहुए पवित्रके दो कुशपत्रोंको काटकर इन नपी कटीहुई पवित्र नामकी दो पत्तियोंको लेकर बांकी कटे व काटनेवाले कुशोंको फेंकदेवे । फिर इन दो पवित्रपत्रोंको लिये हुए दहिने हाथसे प्रणीताका जल तीन बार लेकर प्रोक्षणीपात्रमें छोडे । फिर दोनों हाथके अनामिका और अंगुष्ठसे उत्तराग्र पकडे हुए दो पवित्रक कुश-पत्रोंसे प्रोक्षणीका दल तीनबार ऊपरको उछाले फिर बायें हाथमें प्रोक्षणी-पात्रको लेकर दहिने हाथकी अनामिका और अंगुष्ठसे पकडे हुए पवित्रोंद्वारा उसके जलको तीनवार ऊपरके तरफ उछाले । फिर प्रणीताके जलसे तीन बार

जलेन यथासादितवस्तुसेचनं कृत्वा अग्निप्रणीतापात्रयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदद्ध्यात् ॥ आज्यस्थाल्यां आज्यनिर्वापः । ततोऽधिश्रयणं कृत्वा कुशान्प्रज्वाल्य आज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तान्प्रक्षिप्य स्रुवं त्रिः प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिपैः प्रतप्य अग्नेर्दक्षिणतो निदद्ध्यात् । ततः आज्यमग्नेरवतार्य त्रिः प्रोक्षणीवत् उत्पूय अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरस्य पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम् । तत उत्थाय उपयमनकुशान् वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्तास्तिस्रः समिधः एकैकमग्नौ क्षिपेत् । तत उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेण ईशानादि उदगपवर्गमग्निं पर्युक्षणं कृत्वा प्रणितापात्रे पवित्रे निधाय । ततो वक्ष्यमाणक्रमेण समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेण आज्याहुतीर्जु-

प्रोक्षणीको प्रोक्षणकर, इस प्रोक्षणीके जलसे यथाक्रम स्थापित सब वस्तुओंको एक एककर सिञ्चन कर देवे । फिर इस प्रोक्षणीपात्रको अग्नि और प्रणीताके बचमें रख देवे । तत्पश्चात्—आज्यस्थालीमें घीको छोड वेदीके अग्निपर तपनेके लिये रखदेना । और जलतेहुये कुशों या कोई तृणोंको अग्निपर तपतेहुये घृतके सब ओर प्रदक्षिणक्रमसे घुमाकर अग्निमें छोड देना । फिर स्रुवाके मुखको नीचे कियेहुये अग्नि पर तीनवार तपाना, फिर सम्मार्जनकुशोंके अग्रभागसे स्रुवाके भीतर तथा मूलभागसे बाहर सम्मार्जन कर पुनः प्रणीताजलसे पवित्रोंद्वारा स्रुवाको सिञ्चन करे । तत्पश्चात् अग्निपर स्रुवाको तीनवार तपायकर अग्निसे दक्षिणमें कुशोंके ऊपर धर देवे । तब तपेहुये घृतपात्रको अग्निपरसे उतार घृतको पवित्रोंद्वारा प्रोक्षणीके तुल्य ऊपरके तरफ चलताहुआ देखे, यदि उस घृतमें कोई अन्य वस्तु पडी हो तो उसे निकाल कर फेंक देवे । पुनः प्रोक्षणीके जलको पवित्रोंद्वारा तीनवार ऊपरको उछाले । तब उपयमन अर्थात् वेणीरूप कुशोंको वामहस्तमें लेकर खडा हो प्रजापतिका ध्यान मनमें करता हुआ, घृतसे लिपीहुई तीन समिधाओंको एकएक करके तीन वारमें

हुयात्। यथा–आघारावाज्यभागौ च हुत्वा पुनर्व्यस्तसमस्तव्याहृती-श्चतस्रः पञ्च वारुणा इति नवाहुतीश्चाज्येनैव जुहुयात्। सर्वत्राहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितघृतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः। तद्यथापातितदक्षिण-जानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धो यजमानः होमकर्त्ता) जुहुयात्। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम ॥ इतिमनसा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय न मम ॥ इत्याघारौ २ ॥ ॐ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम ॥ ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम ॥ इत्याज्यभागौ २। इति हुत्वा पुनः ॐ भू स्वाहा। इदमग्नये न मम १ ॥ ॐ भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम २॥ ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम ॥ ३ ॥ ॐ भूर्भुव स्वः स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम ॥ ४ ॥ ॐ त्वन्नोऽअग्ने व्वरुणस्स्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासि सीष्ठा ÷ ।

विना मन्त्रादि कुछ बोलेही अग्निमें छोड देवे। फिर आसनपर बैठ, पवित्रसहित प्रोक्षणीजलसे ईशानकोणसे उत्तरदिशापर्य्यन्त प्रदक्षिणक्रमसे अग्निके सब ओर पर्युक्षण कर प्रोक्षणीका जल सब गिरादेवे। और पवित्रोंको प्रणीतापात्रमें धर देवे। फिर आगे कहेहुये क्रमोंसे खूब जलतेहुये अग्निमें स्रुवाद्वारा घृतकी आहुतियोंको इस प्रकार देवे कि, पहिले आधार नामकी दो और आज्यभाग नामकी दो. यह ४ आहुतियोंको देकर, तब व्याहृतियोंकी अलग अलग तीन और सब व्याहृतियोंको मिलाकर एक यह चारों आहुतियां तथा पांच वारुण इन कुल नव आहुतियोंका नाम सर्वप्रायश्चित्त या अनादिष्ट है, इनको भी घृतसेही देवे। सब आहुतियोंको ' स्वाहा ' कहकर अग्निमें छोडनेके पीछे, स्रुवामें बचे हुये घृतविन्दुओंको प्रोक्षणीपात्रमें गिराता जावे और त्यागवचन ' न मम ' पर्यंत कहता जावे। सो इस प्रकार कि, अपने दक्षिणजानुको पृथ्वीपर टेकेहुये कुशोंद्वारा ब्रह्मासे अन्वारब्धहुआ यजमान, मनमें प्रजापतिका ध्यान कर प्रथमाहुति "ओंप्रजापतये०" इत्यादि मूलमें कहे मन्त्रोंद्वारा अर्थात् दो आघार,दो आज्यभाग देकर फिर "ओंभूः" इत्यादि अनादिष्ट नवआहुतियोंको देवे। तत्पश्चात् फिर भी महाव्याहृत्यादि स्विष्टकृत्पर्यन्त दश आहुतियोंको घृतहीसे

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा (य० अ० २१ मंत्र ३) । इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ १ ॥ ॐ सत्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्वनो वरुणᳬ रराणो वीहि मृडीकᳬ सुहवो न ऽ एधि स्वाहा (य० अ० २१ मंत्र ४) । इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ २ ॥ ॐ अयाश्चाग्ने ऽ स्यन-भिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि । अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजᳬस्वाहा । इदमग्नये अयसे न मम ॥ ३ ॥ ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णु र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ४ ॥ ॐ उदुत्तमं वरुण-पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳬश्रथाय । अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा (य० अ० १२ मंत्र १२) । इदं वरुणाय न मम ॥ ५ ॥ एताः सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः, एता एवानादिष्टा वा आहुतयः ॥ इति नवाहुतयः ॥ एतदनन्तरं पुनरपि महाव्याहृत्या-दिस्विष्टकृदन्ता दशाहुतीश्चाज्येनैव हुत्वा संस्रवप्राशनादिप्रणीताविमोक-नान्तं होमशेषं समापयेत् । तदपि यथा- ॐ भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ १ ॥ ॐ भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम ॥ २ ॥ ॐ स्वः स्वाहा । इदं सूर्य्याय न मम ॥ ३ ॥ एता महाव्याहृतयः ॥ ॐ त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो

देकर संस्रव प्राशनादि प्रणीताविमोकपर्य्यन्त होमके कर्मोको पूरा करे, सो इस प्रकारहै कि 'ॐ भू स्वाहा' इत्यादि मूलमें लिखे स्विष्टकृत्पर्यन्त दशमन्त्रोंसे आहुति

वीतमः शोशुचानो विश्वाद्वेषा ७७ सि प्रमुमुग्ध्यस्म्मत्स्वाहा (य० अ० २१ मं० ३) इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ ४ ॥ ॐ सत्वन्नोऽअग्नेऽवमोभवोतीनेदिष्ठोऽ अस्याऽउषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्वनो वरुणᳯ रराणो वीहि मृडीकᳯ सुहवो न ऽ एधि स्वाहा। (य० अ० २१ मं० ४) इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ ५ ॥ ÷ ॐ अयाश्चाग्नेऽस्य-नभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज७७स्वाहा । इदमग्नये अयसे न मम ॥ ६ ॥ ÷ ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ७ ॥ ॐ उदुत्तमंवरुणपाश-मस्म्मदवाधमं विमध्यम७७श्रथाय। अथावयमादित्यव्व्रते तवानागसोऽ अदितये स्याम स्वाहा (य० अ० १२ मं० १२)। इदं वरुणाय न मम ॥ ८ ॥ एताः सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम ॥ ९ ॥ इति मनसा प्राजापत्यम् ॥ ॐ अग्नये स्विष्ट-कृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ॥ १० ॥ इति स्विष्टकृद्धोमः ॥ ततः संस्रवप्राशनम्। आचमनञ्च कृत्वा ब्रह्मणे पूर्णपात्रदक्षिणां दद्यात्॥ ॐ अद्यैतस्मिन् प्रायश्चित्तहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रति-ष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे ॥ इति दक्षिणां दद्यात्।

करके, फिर प्रोक्षणीपात्रमें गिरायेहुये संस्रवका प्राशन कर, हाथ धोय, फिर तीन आचमन जलसे कर. हाथमें कुश जलसहितपूर्णपात्र ले 'ॐ अद्यैतस्मिन्०' इत्यादि नाम गोत्र कहता हुआ 'संप्रददे' पर्यन्त पूरा संकल्प कर ब्रह्माको दे देवे।

ॐ स्वस्ति । इति प्रतिवचनम् । ततः प्रणीतापात्रस्थिते पवित्रे अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीत्वा, ॐ सुमित्रिया नऽ आप ओषधयः सन्तु ॥ इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय, तेन शिरः संमृज्य, ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयंद्विष्मः ॥ (य० अ० ३५ मं० १२) इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् ॥ ततः स्तरणक्रमेण पवित्रसहितसर्वबर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयादनेन मंत्रेण—ॐ देवा गातु विदो गातुं वित्त्वागातुमित स्मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञᳯस्वाहा वातेधाः स्वाहा (य० अ० ८ मं० २१) इदं वाताय न मम ॥ इति बर्हिर्होमः ॥ ततः फलपुष्पसमन्वितघृतपूर्णेन स्रुवेण उत्तिष्ठन् पूर्णाहुतिं दद्यात् । (कर्मकर्त्ता आचार्यश्चेत् तदा सपत्नीकयजमानेन संस्कार्येण च सहितः आचार्य एव पूर्णाहुतिं कुर्यात्) ॐ मूर्द्धानन्दिवोऽअरतिम्पृथिव्यावैश्श्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविᳯ सम्म्राजतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः स्वाहा (य० अ० ७ मं० २४) ॥ इदमग्नये वैश्वानराय न मम ॥ तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षि-

और ब्रह्मा 'ॐस्वस्ति' कहकर लेलेवे । तत्पश्चात् यजमान, प्रणीतामें धरे पवित्रके कुशपत्रोंको अनामिकांगुष्ठों द्वारा लेकर 'ॐ सुमित्रिया न०' मन्त्र पढ इन पवित्रोंसे प्रणीताका जल अपने शिरपर मार्जन करे और 'ॐ दुर्मित्रिया' मन्त्रसे प्रणीताको ईशानकोणमें औंधा कर देवे । फिर स्तरण क्रमसे पवित्रोंसहित सब कुशोंको उठाके उनमें, आज्यस्थालीसे घी लगाकर ॐ 'देवगातु०' मन्त्रद्वारा 'न मम' पर्यन्त कह हाथसे ही होम कर देवे। तदनन्तर संस्कार्य और स्त्री सहित यजमान खडा हो स्रुवको घृतसे पूरितकर पुष्प नारियल या सुपारीसहित स्त्री और संस्कार्यके दहिने हाथसे स्पर्शकराये-हुये, स्रुवाद्वारा घृतादि द्रव्योंसे 'ॐ मूर्द्धानं' आदिसे 'न मम' पर्यन्त

णानामिकाग्रगृहीतभस्मना—ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेःइति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् इति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् इति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् (य०अ०३मं०६२) इति हृदि ॥ इति ललाटादौ भस्म योजयेत् ॥ एवम् स्ववध्वाः संस्कार्यस्य चापि कुर्यात्; तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः । (आचार्यस्तु स्वयं कृत्वा ततो यजमानस्य कुर्यात्) इति ॥ ततः आचार्यसत्त्वे आचार्याय दक्षिणां दद्यात् । यथा—ॐ अद्यकृतैतत्प्रायश्चित्तहोमकर्मणः पूर्णतासिद्ध्यै अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे आचार्याय यथाशक्ति दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे । ॐ स्वस्ति इत्युक्त्वा दक्षिणां गृहीत्वा स्वहस्ते पूगीफलम् अक्षतान वा गृहीत्वा ॐ अद्य यन्मया भवन्नियोगेनाऽस्मिन् प्रायश्चित्तहोमकर्मणि आचार्यकर्म कृतं तेनोत्पन्नं यच्छ्रेयस्तेन त्वं पुण्यवान् भव ॥ इत्युक्त्वा पूगीफलं यजमानाय दद्यात् । ततो यजमानः स्वहस्ते द्रव्यकुशादीन्यादाय ॐ अद्यास्मिन्कर्मणि त्याग सहित मन्त्र पढ पूर्णाहुति कर देवे ॥ फिर अपने स्थानोंपर बैठ यजमान स्रुवाद्वारा हवनाग्निसे भस्म ले अपने हाथकी अनामिकांगुलिके अग्र भागसे 'ॐत्र्यायुषं०' से अपने ललाटमें 'ॐकश्यप०' से कण्ठमें 'ॐयद्देवेषु०' से दहिने कन्धेमें और 'ॐतन्नो' से हृदयमें भस्म लगावे । इसीके अनुसार स्त्री और कन्या वा पुत्रके भी ललाटादिमें भस्म लगावे, परन्तु स्त्री और संस्कार्यके अङ्गोंमें लगाते समय 'तन्नो' के स्थानमें 'तत्ते' ऐसा कहे ॥ यदि आचार्यद्वारा यहां तक कर्म हुआ हो तो आचार्यही स्त्री और कन्या या पुत्र सहित यजमानके भस्म लगावे ॥ और यजमान आचार्यकी दक्षिणा और कुशादि हाथमें ले 'ॐअद्य०' इत्यादि गोत्रनाम 'संप्रददे' पर्यन्त पूरा संकल्प कह आचार्यको दे देवे । 'ॐस्वस्ति' ऐसां आचार्य कह दक्षिणाले तब अपने हाथमें एक सुपारी या अक्षत लेकर 'ॐअद्य यन्मया' इत्यादि वाक्योंको कहकर यजमानको सुपारी या अक्षत दे देवे । तदन्तर यजमान अपने हाथमें भूयसी

न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च यथाशक्ति भूयसीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ॥ इति भूयसीं दक्षिणां च दद्यात् ॥ यद्यादौ गणेशावाहनं कृतश्चेत्तदा अक्षतान् गृहीत्वा ॐ भो गणेश स्वस्थानं गच्छ । इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य गणेशं विसृजेत् । एवम् ॐ विटनामाऽग्ने स्वस्थानं गच्छ इत्यग्निश्च विसृज्य, ॐ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या व्रतपूजा क्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ १ ॥ इति प्रार्थ्य श्रीविष्णुः ३ इति त्रिः स्मरेत् । ब्राह्मणान् प्रणम्याशिषं गृहीत्वोत्तिष्ठेत् ॥ इति अकृतगर्भाधानादिप्रायश्चित्तप्रयोगः ॥

अथ दिनशुद्ध्यादिविचारः ।

तत्र विवाहात्प्राक्कर्त्तव्यानामावश्यककृत्यानां दिनशुद्धिं मुहूर्त्तचिन्तामणौ विवाहप्रकरणे आह—

विधोर्बलमवेक्ष्य वा दलनकण्डनं वारकं
गृहाङ्गणविभूषणान्यथ च वेदिकामण्डपान् ।

दक्षिणा कुश जल सहित ले 'ॐअद्याऽस्मिन्०' इत्यादि संकल्प कर दक्षिणा बांट देवे ॥ यदि पहिले गणेशका आवाहन भी किया गया हो तो हाथमें अक्षत ले 'ॐभो गणेश०' इत्यादि वाक्यसे अक्षतोंको छोड़ गणेशका विसर्जन कर पुनः अक्षत ले 'ॐविटनामाग्ने०' इत्यादि वाक्यसे अग्निका भी विसर्जन कर हाथ जोड 'ॐ यस्य स्मृत्या०' इत्यादि श्लोक कह तीन वार 'ॐविष्णुः ३०' ऐसा कहदेवे । और ब्राह्मणोंको प्रणाम कर आशीर्वाद ले स्त्रीकी गांठ खोल सब कोई आसनसे उठे ॥ यह अकृतगर्भाधानादि प्रायश्चित्त प्रयोग पूरा हुआ ।

अब दिन शुद्ध्यादि विचार लिखते हैं । विवाहमें कन्यादान होनेसे पूर्वही जो आवश्यक कर्तव्य कृत्य हैं उनके करनेमें जो विचार मुहूर्तचिन्तामणि विवाहप्रकरण तथा दैवज्ञमनोहर ग्रन्थादिका प्रमाण यहां मूलमें लिखा है, उनका स्पष्टार्थ इस प्रकार होता है, विवाहसंबन्धी सभी अङ्ग और उपाङ्ग कर्मोंके करनेमें वर तथा कन्याका चन्द्रबल अवश्य ही विचार लेना चाहिये ।

विवाहविहितोडुभिर्विरचयेत्तथोद्वाहतो
न पूर्वमिदमाचरेत्त्रिनवषण्मिते वासरे ॥ १ ॥

तत्र विवाहविहितानि नक्षत्राणि—

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगो मघाः ।
अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मङ्गलप्रदाः ॥ २ ॥

दैवज्ञमनोहरोक्तेस्तु—

चित्रा विशाखा शततारकाऽश्विनी
ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् ।
हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिका—
प्रदानकं कण्डनमण्डनादिकम् ॥ ३ ॥ तत्रैव—

मूलेन्दुरुद्रश्रवणार्कपौष्णविश्वेशचित्रानलरेवतीषु ।
संस्थापनं काञ्जिककुण्डिकाया वारे रवेर्भूमिसुतस्य शस्तम् ॥४॥

अथ विवाहवेदीलक्षणमाह नारदः—

हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः ।
स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः ॥ ५ ॥

और विवाह होनेके दिनसे पूर्वका तीसरा छठवां और नववां दिन कर्मोंके आरम्भका नहीं होना चाहिये । तथा दैवज्ञमनोहरग्रन्थमें चित्रा, विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और श्लेखा इन नक्षत्रोंको भी त्याग देना । और विवाहविहित नक्षत्र अर्थात् रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त इन शुभ नक्षत्रोंमें रवि अथवा मङ्गल वारको पञ्चाङ्ग शुद्ध दिन होनेसे सभी कर्मारम्भ करना शुभकारक होगा । कन्यादानसे पूर्वही होनेवाले कृत्य ये हैं जैसे गीत गानेका आरम्भ करना, चना आदि अन्नोंका दलना; कांडना आदि संस्कार, तथा वारक (मंगलकलश) का स्थापन अङ्गण और गृहादिकोंको झाडना, बोहारना, सफेदी आदिसे पोतना, गोबरसे लीपना दीवारोंपर चित्रादि बनाकर भूषित करना आदि और वरकन्याके बैठनेका वेदी एक हाथ ऊंचा चार हाथ लंबा चौडा चौकोना कदलीस्तंभादिसे सुन्दर

स्तम्भप्रमाणं बृहत्पाराशरे—

पालाशो ब्राह्मणस्योक्तो नैयग्रोधस्तु भूभुजः ।
बैल्वो वैश्यस्य स्तम्भः स्याच्छूद्रस्यौदुम्बरः स्मृतः ॥ ६ ॥

कलशलक्षणम्—

हैमराजतताम्राश्च मृण्मयो लक्षणान्विताः ।
यात्रोद्वाहप्रतिष्ठासु कुम्भाः स्युरभिषेचने ॥ ७ ॥
धातुजं मृण्मयं वापि कलशं यत्प्रतिष्ठितम् ।
सिततण्डुलपूर्णेन पात्रेण पिहिताननम् ॥ ८ ॥

अथ तैलादिलापने संख्यानियम उक्तः मुहूर्तचिन्तामणौ—

मेषादिराशिजवधूवरयोर्वटोश्च तैलादिलापनविधौ कथिताश्च संख्याः ।

शोभित ऐसा एक चबूतरा (वेदी) अपने गृहमण्डपके वाम भागमें बनानेको आरम्भ करना, मध्यस्तम्भका गाडना, मण्डपकी रचना अर्थात् तृण पत्र चटाई आदि अथवा वस्त्रकी चांदनी आदिसे छाव कर मण्डप वनाना । यहां ग्रन्थमें मण्डपशब्दको 'मण्डपान्' ऐसा बहुवचन लिखाहै, इससे और भी कर्मोंका आरम्भ जैसे कढाई चढानेकी भट्ठी या चूल्हाआदिका बनाना 'काञ्जिककुण्डिकाधारण' अर्थात् सिरका, अचारआदि बनाके रखना, वर तथा कन्याके शरीरमें उबटन, तैल लगानेका आरम्भ करना हरिद्रा चंदन (ऐपन वारी) तैयार करना इत्यादि सभी शुभ कर्मोंको करना वा रचना आदि आरम्भ करना चाहिये ॥ १–५ ॥ स्तंभका प्रमाण बृहत्पाराशरमें कहाहै कि–ब्राह्मणको पालाश (छिडल) का, क्षत्रियको वट (वरगद) का, वैश्यको बेलका और शूद्रको गूलरका स्तंभ होनाचाहिये ॥ ६ ॥ कलशका लक्षण यह कहा है कि–यात्रा, विवाह, प्रतिष्ठा और अभिषेचनकर्ममें शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न, सुवर्णका उत्तम, रजतका मध्यम, तांबेका साधारण अथवा सामर्थ्य नहीं रहनेसे मृत्तिकाहीका कलश, विना टूटा फूटा सुन्दर सुडौल और जिसके मुखपर चावलोंसे भरा पात्र ढँका हो ऐसा सुशोभित कलश प्रतिष्ठित होताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ तैलादि लगानेकी संख्या किसी विद्वान्के मतसे मुहूर्त्तचिन्तामणिमें इस प्रकार कहाहै कि, जो वर वधू अथवा वटु,

शैला दिशः शरदिशाक्षेनगाद्रिबाणाः बाणाक्षबाणगिरयो विबुधैस्तु कैश्चित् ॥ ९ ॥

इत्यत्र कुलदेशाचारतोऽपि व्यवस्था विज्ञेया ॥ एवं पूर्वोक्तधर्मशास्त्राद्यनेकप्रमाणवाक्यानुसारेण सर्वसनातनधर्मावलम्बिनां कर्ममूलन्त्वेकमेव; परञ्च सर्वकृत्यान्तरेष्वेव स्वस्वकुलदेशाचारभेदैर्बहून्याभ्यन्तरकर्माणि भवन्ति । यथा विवाहेकल्याणीस्थापन कटाहपूजन घोडी सोहगी बटेहरी रहसबधाई शिरगुन्धी पलकाकाचार ककनावर समधी आदिका मिलना टीका इत्यादिनामभिः प्रसिद्धानि देशेदेशे कुलेकुले च भिन्नभिन्नप्रकारकर्माणि भवन्ति तान्यपि " नोल्लङ्घनीया कुलदेशधर्माः " इति वाक्यश्रवणात् स्वस्वकुलदेशानुसारतः कर्त्तव्यान्येव ॥ इति दिन शुद्ध्यादिविचारः ॥

मेषराशिमें पैदा हुआ हो, उसके शरीरमें इस क्रमसे तैलादि लगाना आरम्भ करे कि, जिसमें उस तैलादि लगानेकी गिनती मुख्य समय पर्यन्त सात (७) वार पूरी हो जावै । बस ऐसेही वृष राशिवालेके १०, मिथुनमें ५, कर्कमें १०, सिंहमें ५, कन्यामें ७, तुलामें ७, वृश्चिकमें ५ धनमें ५, मकरमें ५, कुम्भमें ५, मीनराशिमें पैदा होनेहालेके ७ गिनती पूरी करना । यह अपने कुल देशाचारके अनुसार व्यवस्था जानना ॥ ९ ॥ ऐसे ऊपर कहे हुये धर्मशास्त्रादिके अनेक प्रमाण वाक्योंद्वारा सभी सनातनधर्मावलम्बियोंका, कर्मका मूल शास्त्रोंसे तो सर्वत्र एकही हैं परञ्च देश कुलाचारके भेदसे उन कर्मोंके करनेकी रीति तथा बीचबीचमें कर्मान्तरोंके करनेका प्रचार विभिन्नरूपोंमें पायेजातेहैं जैसे विवाहमें कल्याणीस्थापन, कटाहपूजन, घोडी, सोहगी, बटेहरी, रहसबधाई, शिरगुन्धी, पलकाकाचार, ककनावर, समधीका मिलना, टीका इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध ऐसेही औरभी अनेक कर्म देश देश तथा कुल कुलमें भिन्न भिन्न प्रकारके होतेहैं सो सभी कर्मोंको " नोल्लंघनीया कु० " इस वाक्यकी ख्यातिसे करनाही चाहिये किन्तु शास्त्रके तथा धर्मके विरुद्ध नहींहो । यह दिनशुद्ध्यादि विचार पूरा हुआ ॥

मृतिकामाङ्गल्यप्रयोगः ।

अथात्र तु यथासंभवानि बहुदेशकुलेषु प्रचलितानि अति प्रसिद्धानि च कर्माणि लिख्यन्ते । तत्रादौ मृतिकामाङ्गल्य प्रयोगः प्रारभ्यते—वैवाहिकनक्षत्रादियुते शुभे दिने कन्यागृहे वरगृहेऽपि च स्वगृहस्थिताः सर्वास्तथैवेष्टमित्रबान्धवादिगृहादप्यागताः स्त्रियः एकत्रितास्तत्र केशेषु तैलाऽऽलेपनं तथा सौभाग्यवत्यः परस्परं सीमन्ते सिन्दूरभूषणञ्च सौभाग्यसूचकं शृङ्गारं कुर्वन्ति । अथैवं यथाचारसञ्जातकृत्ये कन्यामाता वरमातापि च स्वस्वगृहे त्वादौ गणपति स्मरणं कृत्वा सर्वस्त्रीसमाजसहिता मङ्गलगानपुरस्सरा ग्रामाद्बहिः कश्चित् तडागादिकं सस्यक्षेत्रं वा गच्छेत् । तत्र भूमौ पूर्वाभिमुखी स्थिता आलेपनसिन्दूरपुष्पाक्षतादिभिः स्वस्याग्रभूमिं कुद्दालादि खनित्रञ्च संपूजयित्वा तत्रैव स्वस्याञ्चलं प्रसार्य्य स्थिता भवेत् । ततो मङ्गलगानं

मृत्तिकामाङ्गल्य (मंटमंगरानाम प्रसिद्ध) प्रयोग प्रारम्भ करते हैं । सो इस प्रकार है कि,—वैवाहिक नक्षत्रादियुक्त शुभदिनमें कन्या और वरके गृहोंमें अपने घरकी सब तथा औरभी इष्टमित्र बान्धवादिके घरोंसे आकर इकट्ठीहुई स्त्रियां शिरके बालोंमें तैलका लगाना तथा सौभाग्यवती स्त्रियां परस्पर अपने मांगोंमें सिन्दूरका लगाना आदि सोहागसूचक शृङ्गार करतीहैं । तब यथाचार यह कृत्य पूरा होजानेपर कन्याकी माता और वरकी माता भी अपने अपने गृहमें प्रथम गणपतिस्मरण कर सब स्त्रियोंके समाज सहित मङ्गल स्नान करतीहुई ग्रामके बाहर किसी तालाव या पोखरा आदिपर अथवा अन्न बोनेके किसी खेतमें जावें और वहां भूमिपर माता पूर्वाभिमुखी बैठ अपने आगेकी भूमि और कुदाल (मट्टी खोदनेका यन्त्र) इन दोनोंकी पूजा ऐपन सिन्दूर पुष्प और अक्षतादि द्रव्योंसे करके उसी स्थानमें बैठीहुई अपने अञ्चलको फैलावे । तत्पश्चात् मंगलगान गातीहुई सभी सौभाग्वती स्त्रियां उस पूजितकु-

कुर्वन्त्यः सर्वाः सौभाग्यवत्यः पूजितभूमिमृदं खनित्रेण खनित्त्वा किञ्चित् किञ्चित् तस्या अञ्चले दद्युरिति। अथ कन्यामाता वरमाता च स्त्रीभिः प्रदत्तमृदमात्मनोऽञ्चले गृहीत्वा सर्वाभिः सह मङ्गलगानं गायन्ती निजालयं प्रत्यागत्य स्वस्याञ्चलेनानीतां मृदम् कस्मिंश्चिदपि स्थले सुरक्षितां स्थापयेत्। अस्याः सुरक्षितमृत्तिकायाः प्रयोजनन्त्वग्रे यत्कन्यागृहे वरवध्वोरुपवेशनार्थचत्वरस्य होमवेदिकायाश्च तथाऽन्येषामपि चुल्हिकादीनां तथैव वरगृहेऽपि चुल्हिकादीनामेव यद्यन्मृत्स्नया निर्माणम् भविष्यति, तस्यां मृत्तिकायामेनां मेलयित्वैव निर्माणं कर्तव्यमिति॥ ततस्ताभिरेव सौभाग्यवतीभिः साकं स्थिता कन्यामाता वरमाता च स्वस्वगृहे चक्रिकोलूखलमुशलशूर्पाद्यन्नसंस्कारयन्त्राणि आलेपनसिन्दूरादिभिरलंकृत्य तैश्चणकाद्यन्नानां दलन पेषणादिसंस्कारारम्भान् सर्वाः सौभाग्यवत्यः मिलिताः कुर्युः॥

दालीसे पूजीहुई भूमिकी मृत्तिका खोदकर फैलेहुये माताके अञ्चलमें किञ्चित्किञ्चित् छोडदेवें॥ फिर कन्या और वरकी मातायें अपने अपने यहां सौभाग्वती स्त्रियोंकी दीहुई मृत्तिकाको अपने अञ्चलमें ही लियेहुये सब स्त्रियोंके सहित मंगलगान गातीहुई अपने घर लौट आकर अञ्चलमें लाईहुई मृत्तिकाको किसी स्थानमें सुरक्षित रूपसे रखदेवे। इस मृत्तिकाको सुरक्षित रखनेका प्रयोजन यह है कि, जो अब आगे कन्याके गृहमें वरवत्के बैठनेका चबूतरा और होमकी वेदी तथा औरभी चूल्हा आदि तथा ऐसेही वरके गृहमें भी जो चूल्हा आदि मट्टीसे बनाये जावेंगे उन सबोंको बनानेकी मट्टीमें यह लाईहुई मृत्तिकाको मिलाकरही बनाना चाहिये॥ तदनन्तर उन्ही सब स्त्रियोंके साथ बैठीहुई कन्या और वरकी मातायें अपने अपने गृहमें चकरी ओखली मूशल सूप तथा औरभी जो अन्नसंस्कार यन्त्र हैं उनको ऐपन सिन्दूरादिसे सुशोभितकर चकरीमें चनोंका दलना ओखलीमें चावलोंका छाटना ऐसेही औरभी अन्नोंका संस्कार सब सोहागिनें मिलकर आरम्भकरें॥

अस्मिन्नेवावसरे कुलदेशाचारानुसारतः गुडतण्डुलानामपि च वितरणं यथोचितम् भवति ॥ इति मृत्तिकामाङ्गल्यप्रयोगः ॥

अथ स्तम्भारोपणप्रयोगः ।

ततः स्तम्भारोहणमण्डपाच्छादनादिकर्म भवति । तद्यथातत्र पूर्वोक्त शुभमुहूर्तदिने स्वगृहे कन्यया सह सपत्नीकः कन्यापिता तथा स्वगृहे वरपिता च संस्कार्यपुत्रेण सहितः सपत्नीकः यथाचारं सुगन्धितैलाभ्यञ्जनपूर्वकमुष्णोदकेन शीतोदकेन च मङ्गलस्नानं कृत्वा ईषद्धौते नवे वस्त्रे परिधाय यथायोग्यालंकृतो धृतकुंकुमकेशरादिमाङ्गलिकतिलकः स्वयं करद्वये पवित्रोपग्रहः गोमयोपलिप्तायां बहिःशालायामागत्य शुभासने पूर्वाभिमुख उपविश्य स्वदक्षिणतः ग्रन्थिबन्धनयुतां पत्नीं तद्दक्षिणतः हरिद्रारञ्जितनवीनकाष्ठासने कन्यापिता कन्यां वरपिता पुत्रं चोपवेश्य ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः.

और इसी अवसरमें कुल देशाचारके अनुसार गुड चावलभी यथोचित बांटे जाते हैं ॥ यह मृत्तिकामाङ्गल्य प्रयोग पूरा हुआ ॥

इसके अनन्तर खंभा गाढना और मण्डपाच्छादनादि कर्म होते हैं ॥ अब स्तम्भारोपण (खम्भागाडना) आदिकर्मोंका प्रयोग इस प्रकार है कि–पहिले मुहूर्तका विचार जैसा कह आये हैं तदनुसार शुभ दिनमें कन्याका पिता स्त्री और कन्याके सहित अपने गृहमें एवम् वरका पिताभी अपने घरमें स्त्री तथा संस्कार्यपुत्र सहित कुलाचारके अनुसार सुगन्धित तैल लगाय गरम और शीतल जलसे मङ्गलस्नान कर शुद्धजलसे पछारेहुये नयेवस्त्रके जोडे पहिन यथायोग्य अलंकृत हो मस्तकमें कुंकुम केशरादिका माङ्गलिक तिलक लगाय स्वयं दोनोंहाथकी अनामिका अंगुलीमें कुशकी पवित्री धारणकिये गोबरसे पूजास्थानमें सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठे अपने दहिने गाँठ बंधी स्त्रीको और उसके दक्षिण हरदीसे रँगे नये पीढेपर, कन्याका पिता कन्याको, तथा वरका पिता पुत्रको बैठाय लेवे । तत्पश्चात् जलका तीन आचमन ' ॐकेशवाय

इति जलेन त्रिराचम्य हस्तौ प्रक्षाल्य । ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतो वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सः बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॥ इत्यात्मानं पत्नीपुत्रादिसहितं पूजासंभारान् मण्डपस्थानञ्च जलेन कुशैः संप्रोक्ष्य प्राणानायम्य द्रव्याक्षतान् गृहीत्वा "सुमुखश्च०" इत्यादि "जनार्दनाः" इत्यन्ततेन गणपतिस्मरणं कुर्यात् । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । गणपतिं ध्यायामि ॥ संकल्पः कुशादीन्यादाय ॐ विष्णुरित्यादिदेशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अस्यामुकशर्मणो मम पुत्रस्य (इति वरपिता) अस्या अमुकनाम्न्याः देव्या मम कन्यायाः (एवं कन्यापिता उच्चार्य) करिष्यमाणविवाहाङ्गभूतस्तम्भारोपणं मण्डपाच्छादनादिकञ्च कर्म गणपत्यादिपूजनपूर्वकमहं करिष्ये इति । तत कलशगणेशादिस्थापनं पूजनञ्चकुर्यात् । तद्यथा—भूमिं गन्धादिभिः " ॐ भूम्यै नमः " इतिमन्त्रेण संपूज्य भूमिस्पर्शनं कुर्यात् । ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीन्दृᳬह पृथिवीम्माहिᳬसीः (य० अ० १३ मं० १८) ॥

नमः ' इत्यादिनामोंसे कर हाथ धोय पुनः जलमें कुश बोर ' ॐअपवित्रः० ' मन्त्र द्वारा स्त्री आदि सहित सब सामग्री मण्डपस्थान और अपने ऊपर छिडके । तदनन्तर प्राणायाम करे । तब हाथोंमें द्रव्य सहित पुष्पाक्षत ले हाथ जोड ' ॐसुमुख० ' इत्यादि ' ध्यायामि ' पर्यन्त कह गणपतिस्मरण कर द्रव्यादि छोड देवे । तदनन्तर कुशजलादि हाथमें ले ' ॐविष्णु० ' कन्याका देशकालको कहता हुआ अपना गोत्र नाम कह वरपिता ' मम पुत्रस्य ' कन्याका पिता ' मम कन्यायाः ' ऐसा उच्चारण कर ' करिष्यमा० ' आदिसे ' करिष्ये ' पर्यन्त संकल्प पूराकरजल छोड देवे । तदनन्तर कलश गणेशादिका स्थापन और पूजन करे ॥ सो इस प्रकार कि ' ॐ भूम्यै नमः इस ' मन्त्रद्वारा गन्धादिसे भूमिकी पूजाकर, हाथसे पृथ्वीस्पर्श किये हुये

ततो गोमयनिर्मितां गौरीं स्पृशन्, ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषिमानोगोषुमानोऽअश्वेषुरीरिषः । मानोव्वीरान्न् रुद्रभामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे । (य० अ० १ मं० १६) इति पठन् ततो यवान् कलशस्याधः-ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृब्भ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनाम् पयोसि ॥ (य० अ० १ मं० २०) इति प्रक्षिप्य तदुपरि ॐ आजिघ्र कलशम्मह्यात्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्ज्जा निवर्तस्व सानः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्म्माविशताद्रयिः ॥ (य० अ० ८ मं० ४२) इति कलशं संस्थाप्य कलशे जलम्—ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्यस्कम्भसर्ज्जनीस्त्थो व्वरुणस्यऽऋतसदन्यसिव्वरुणस्यऽऋतसदनमसिव्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥ (य० अ० ४ मं० ३६) इति पूरयित्वा तस्मिन् ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ गन्धम् । ॐ या ओषधीः पूर्व्वा जाता देवेब्भ्यस्त्रियुगम्पुरा । मनैनुबब्भ्रूणामहꣳ शतन्धामानि सप्तच ॥ (य० अ० १२ मं० ७५) इति सर्वौषधीः । ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन

'ॐ भूरसि' मन्त्र पढे। गोमयकी बनी गौरीका स्पर्श कियेहुये 'ॐ मानस्तो०' मन्त्र पढे ॥ कलशके नीचे 'ॐधान्यमसि०' मन्त्रसे यवा रखकर उस यवापर 'ॐ आजिघ्र०' मन्त्रसे कलशको स्थापन कर 'ॐ व्वरुणस्यो०' मन्त्रसे जल पूरण करे। 'ॐ गन्धद्वारा०' मन्त्रसे गंध 'ॐ

च ॥ (य० अ० १३ मं० २०) इति दूर्वाङ्कुराणि । ॐ अम्बेऽअम्बिके ऽम्बालिके न मानयति कश्चन स्वसस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ इति आम्रपल्लवं पञ्चपल्लवं वा । ॐ पवित्रेँ स्त्थोव्वैष्णव्व्यौ सवितुर्व्वः प्रसव ऽ उत्त्पुनाम्म्यच्छिद्द्रेण पवित्त्रेण सूर्य्यस्य रश्म्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम् ॥ (य० अ० १ मं० १२) इति कुशान् ॥ ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानः शर्म्म सप्प्रथाः ॥ (य० अ० ३६ मं० १३) इति सप्तमृदः । ॐ याः फलिनीर्य्याऽ अफला ऽ अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वᳬहसः ॥ (य० अ० १२ मंत्र० ८९) इति पूगीफलम् । ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्न्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ (य० अ० ११ मंत्र० २५) इति पञ्चरत्नानि । ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् । सदाधारपृथिवीन्द्यामुते माङ्कस्म्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (य० अ० १३ मंत्र ४) इति हिरण्यं च निधाय ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वध्यो मनसा देवयन्तः ॥ इति रक्तसूत्रं वस्त्रं वा वेष्टय ॐ पूर्णा दर्व्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत । व्वस्नेवव्विक्रीणा-

या ओषधीः' मन्त्रसे सर्वौषधी, 'ॐ काण्डात्०' मन्त्रसे दूर्वा 'ॐ अम्बे०' मन्त्रसे आम्रपल्लव या पञ्चपल्लव 'ॐ पवित्रेस्थो०' मन्त्रसे कुश 'ॐ स्योना०' मन्त्रसे सप्तमृत्तिका, कलशमें 'ॐ याफलिनीर्या०' मन्त्रसे पूगीफल, कलशमें 'ॐ परिवाजपति' मन्त्रसे पञ्चरत्न, कलशमें 'ॐ हिरण्यगर्भः' मन्त्रसे सुवर्णका कुटका, कलशके गलेमें 'ॐ युवासु०' मन्त्रसे रक्तसूत्र या वस्त्र, 'ॐ पूर्णादर्वि०' मन्त्रसे कलशके मुखपर चावलोंका पूर्णपात्र,

वहाऽइषमूर्ज्जं ꣳ शतक्रतो ॥ (य० अ० ३ मंत्र ४९) इति कलशोपरि पूर्णपात्रम् ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा । ज्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा (य० अ० ३ मन्त्र ९) इति दीपं च निधाय हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणाव्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो व्वरुणे ह बोध्युरुश ꣳ समान आयुः प्रमोषीः ॥ ॐ कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं आवाहयामि ॥ इत्यावाह्य ततः कलश-समीपेऽक्षतपुञ्जोपरि पूगीफलं निधाय तदुपरि गणेशमावाहयेत् । अक्षतान् गृहीत्वा—

ॐ हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज ।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुःपितः ॥
नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज ।
भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशांकुशपरश्वधैः ।
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः ।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां रक्ष च मे क्रतुम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः । गणपतिमावाहयामि ॥ पुनरक्षतान् गृहीत्वा गोमयनिर्मितायां गौर्यां गौरीम् आवाहयेत्— ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वेनक्षत्राणि रूपमश्विनौ

'ॐ अग्निर्ज्यो०' मन्त्रसे कलशपर दीप रख कर तत्पश्चात् हाथमें अक्षत ले 'ॐ तत्त्वायामि०' इत्यादि 'आवाहयामि' पर्यन्त पढ कलशपर अक्षतोंको छोडदेवे । फिर हाथमें अक्षत ले आगे कहे मन्त्रादिसे हर एकके आवाहनादि करनेमें अक्षतोंको उनपर छोडता जावे । जैसे कलशके समीप अक्षतपुञ्जपर धरीहुई सुपारीमें 'ॐ हेरम्ब०' इत्यादिसे 'आवाहयामि' पर्यन्तसे गणे-

द्या तेम्‌ । इष्णन्निषाणामुम्मंऽइषाण सर्व्वलोकम्मंऽइषाण ॥ (य० अ० ३१ मं० २२) ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्य्यै नमः गौरीमावाहयामि ॥ पुनरक्षतान्‌ गृहीत्वा ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्यबृहस्प्पतिर्र्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्टं य्यज्ञ समिमन्दधातु । विश्वेदेवासऽइहमादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ । (य० अ० २ मं० १३) ॐ गणपतये नमः । गणपतिं गौरीं वरुणञ्च प्रतिष्ठापयामि पूजयामि ॥ ततः सर्वोपचारैर्गणेशादीन्‌ पृथक्पृथक्‌ एकतन्त्रेण वा ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । श्रीगौर्य्यै नमः । कलशे वरुणाय नमः, इति मन्त्रैः पूजयेत्‌ । तद्यथा—ॐ आसनार्थेऽक्षतान्‌ समर्पयामि । पाद्यम्‌ अर्घ्यम्‌ आचमनीयम्‌ स्नानीयम्‌ जलम्‌ समर्पयामि । वस्त्रार्थेऽक्षतान्‌ समर्पयामि चन्दनेनानुलेपनं समर्पयामि गौर्य्यै नमः । सिन्दूराभरणं समर्पयामि । अक्षतान्‌ समर्पयामि । पुष्पाणि माल्यञ्च समर्पयामि । गणपतये नमः । दूर्वाङ्कुरान्‌ समर्पयामि । धूपम्‌ आघ्रापयामि । दीपं दर्शयामि । (हस्तौ प्रक्षाल्य) यथाभागं नैवेद्यं निवेदयामि । मध्ये पानीयम्‌, अन्ते आचमनीयम्‌, हस्तप्रक्षालनीयं मुखप्रक्षालनीयं जलं समर्पयामि । ताम्बूलानि पूगीफलानि समर्पयामि । यथाभागं विभज्य दक्षिणां समर्पयामि।ततः पात्रे गन्धाक्षतपुष्पफलद्रव्यजलान्यादायॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितश्रीमन्महागणाधिपतये नमः। विशेषार्घ्यं समर्पयामि ॥ततः शजीकागोमयसे बनी गौरमें ' ॐ श्रीश्चते० ' इत्यादिसे गौरीका आवाहन-कर पुनः गणेश गौरी और कलशपर ' ॐ मनोजूति० ' इत्यादि ' पूजयामि ' पर्यन्त कह अक्षत छोडदेवै । फिर सबोंका पूजन अलग अलग अथवा एक मन्त्रहीमें ' ॐ भूर्भुव० ' इत्यादि नाम मन्त्रों द्वारा इस प्रकार करे कि ' ॐ आसनार्थे० ' इत्यादिसे ' दक्षिणां समर्पयामि ' पर्यन्त कर, किसी ताम्रादिपात्रमें गन्ध, अक्षत, पुष्प, द्रव्य और जल धरके दोनों हाथोंमें लिये हुये ' ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धि० ' इत्यादि मंत्रसे विशेषार्घ्य देकर तब हाथ जोड

प्रार्थना-ॐ गणपत्यादिदेवताः अनया पूजया प्रीयन्ताम् न मम । मम सकुटुम्बस्य आयुष्कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारस्तुष्टिकर्त्तारो माङ्गल्यकर्त्तारो वरदातारो भवत ॥ ततः मण्डपनिर्माणार्थं भूम्यावाहनं कुर्यात् । हस्ते पुष्पं गृहीत्वा भूमिस्पर्शनं कृत्वा मन्त्रं पठेत्-ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीन्दृंह पृथिवीम्माहिंसीः (य० अ० १३ मंत्र १८) ॥ १ ॥

आगच्छ सर्वकल्याणि वसुधे लोकधारिणि ।
उद्धृतासि वराहेण सशैलवनकानना ॥ २ ॥
रत्नाकरे विष्णुना त्वं धृता वाराहरूपिणा ।
आगच्छ वरदे धात्रि यज्ञेऽस्मिन् शुभदायिनि ॥ ३ ॥

इत्यावाह्य ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमन्दधातु । विश्वेदेवास ऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ (य० अ० २ मंत्र १३) इति प्रतिष्ठाप्य—

ॐ भूमिर्भूमिमवागात् मातामातरमप्यगात् ।
भूयाम पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स नश्यतु ॥ ४ ॥

इति नत्वा भूमिं सर्वोपचारैः ॐ भूर्भुवः स्वः पृथिवीकूर्मानन्तदेवताभ्यो नमः ॥ इति मन्त्रेण संपूज्य अञ्जलिं बद्ध्वा प्रार्थयेत्—

'ॐगणपत्यादि०' इत्यादि वाक्योंको कह प्रार्थना करे ॥ तत्पश्चात् मण्डप बनानेके लिये भूमिका आवाहन अक्षत लिये हाथसे पृथ्वीका स्पर्श किये 'ॐभूरसि भूमि०' इत्यादि 'शुभदायिनि' पर्य्यन्त कह आवाहन करे और 'ॐमनोजूति०' इस मन्त्रसे अक्षत छोड प्रतिष्ठा कर देवे । फिर हाथ जोड 'ॐभूमिर्भूमिमवा०' इस मन्त्रसे प्रणाम कर सर्वोपचारोंसे भूमिकी पूजा 'ॐ

ॐ सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते ।
रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह ॥
तवोपरि करिष्यामि मण्डपं सुमनोहरम् ।
क्षन्तव्यं च त्वया देवि सानुकूला मखे भव ॥
निर्विघ्नं मम कर्मेदं यथा स्यात्त्वं तथा कुरु ॥

इति संप्रार्थ्य स्वाभीष्टमानां मण्डपभूमिं स्वीकृत्य कुशैः प्रोक्षयेत्—

ॐ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥

ॐ नृसिंह उग्ररूप ज्वलज्वल प्रज्वलप्रज्वल स्वाहा । ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्प्रसवेऽश्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्य्यन्त्रेणाग्नेः साम्म्राज्ज्येनाभिषिञ्चामि ॥ (य० अ० १८ मं० ३७) इति भूमिं प्रोक्ष्य ततः श्वेतसर्षपान् गृहीत्वा—

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
भूतप्रेतपिशाचाद्या ह्यपक्रामन्तु राक्षसाः ।
स्थानादस्माद्व्रजन्त्वन्यत्स्वीकरोमि भुवं त्विमाम् ॥

इति ईशानाभिमुखः सर्वतो मुखं विकिरेत् ॥ ततः मण्डपार्थ-स्वीकृतमध्यभूमौ स्तंभारोपणार्थं गर्तं कृत्वा स्ववर्णानुरूपकाष्ठ-

भूर्भुवः स्वः पृथिवी० ' इस नाममन्त्रसे करे और फिर हाथोंकी अंजुली बनाय ' ॐ सर्वबीज० ' इत्यादि ' तथा कुरु ' पर्यन्त कह जितनी पृथ्वीमें मण्डप बनाना हो मनसे उतनी भूमिको ग्रहण कर, कुशोंद्वारा जलसे उस भूमिको ' ॐ जितं ते पुण्डरी० इत्यादि ' साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ' पर्य्यन्त कह सिञ्चन करे । तदनन्तर श्वेत सरसोंको ईशानकोणसे चारोंतरफ छिडकता हुआ ' ॐ अपसर्पन्तु० ' से ' भुवं त्विमाम् ' पर्य्यन्त पढे फिर मण्डप बनानेकी भूमिके बीचमुख्यस्तंभ गाडनेके लिये. गढहा खोद, वर्णके अनुसार काष्ठके बने-

निर्नितस्तम्भं जलेन संस्नाप्य हारिद्रातैलाभ्यक्तं कृत्वा पुनर्जलेन स्नापयित्वा संमुखे धृत्वा स्तंभस्तुतिं कुर्यात्—

ॐस्तम्भस्त्वं निर्मितः पूर्वं यज्ञभागः सुरेश्वरः ।
स्तुतो मण्डपरक्षार्थं पूजां पुष्पादिकां तथा ॥
गृहीत्वा सुस्थिरो भूत्वा यजमानोदयं कुरु ॥

इति प्रार्थ्य स्तंभं घृतेनाभ्युक्ष्य आलेपनसिन्दूरपुष्पमालाद्युपचारैरभ्यर्च्य सर्षपगोरोचनगुग्गुलदूर्वानिम्बपत्राणामेतेषां मिलितानां वस्त्रेण पञ्च पोटलिकां कृत्वा ॐ यदा बंध्नन्दाक्षायणा हिरण्य ꣳ शतानीकायसुमनस्यमानाः । तन्मऽआबध्नामि शतशारदायायुष्मान्जरदष्टिर्यथासम् ॥ (य० अ० ३४ मन्त्र ५२) इति मन्त्रेणैकां स्तम्भे बध्वाऽवशिष्टाश्चतस्रोऽवशेषयेत् । ततः स्तंभगर्ते अक्षतपुष्पकुंकुमद्रव्यपूगीफलहरिद्रादर्भान् ॐ गर्ताधिष्ठात्रिवासुकिने देवाय नमः । इति मंत्रेण प्रक्षिप्य स्वकुलदेशाचारानुसारेण स्तम्भेन सह हरितकिञ्चित्पल्ल

खंभेको शुद्धजलसे धोय, पिसीहुई हरदीमें तेल मिलाय, खंभेमें सर्वत्र लेपन कर, फिर जलसे धोय, अपने संमुख सीधा रख, हाथमें अक्षत लिये 'ॐस्तंभस्त्वं०' से 'कुरु' पर्य्यन्त कह स्तंभकी स्तुति कर, खंभेपर अक्षत छोड देवे । फिर समग्र खंभेमें घृतको लगाय ऐपन, कुंकुम, सिन्दूर, पुष्पोंकी माला आदि उपचारोंसे पूजा करे । फिर सरसों, गोरोचन, गुगुल दुर्वा और नीमके पत्ते इन सबको यथोचित मिलाय, हलदीसे रंगे पीले वस्त्रके ५ टुकडोंमें थोडा थोडा रख ५ पोटली छोटी छोटी सूतसे बंधी हुई बनाय, एक पोटली 'ॐयदाबध्नं०' इस मन्त्रसे खंभेमें बांध बाकी ४ पोटिलियोंको सुसञ्चित रखलेवे ॥ तब खोदेहुये खंभाके गढमें ऐपन, अक्षत, पुष्प, द्रव्य, सुपारी, हलदीकी गांठ और कुशोंको 'ॐगार्ताधिष्ठात्रि०' इस नाम मंत्रसे छोडै । तब अपने देश या कुलरीतिके अनुसार इस खंभेके साथ हरित पत्तोंकी टेहनी

वान्युतवंसादिकं मेलयित्वा सर्वान् स्तम्भादिकानेकदैव जलेनाभ्युक्ष्य पञ्चभिः सप्तभिर्वा मनुष्यैः सह गर्ते आरोपयेत् । तत्र मंत्रः—ॐ सुप्रतिष्ठितस्त्वं भव विवाहावधिकालं स्थिरो भव विवाह्यस्यायुर्वर्द्धनस्त्वं सर्वसौख्यप्रदो भव । इति ॥ ततः मृद्भिर्गर्तमापूर्य्य दण्डेन स्तम्भं दृढीकृत्य तन्मूलं किञ्चिज्जलेनाभिषिंच्य, स्तम्भं कुंकुमाक्तं कृत्वा ॐ स्तम्भाधिष्ठात्रिदेवाय नमः ॥ इति मन्त्रेण गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यपूगीफलदक्षिणाभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत—

ॐ त्वां प्रार्थये ह्यहं स्तम्भ लोकानां शान्तिदायक ।
देहि मेऽनुग्रहं स्तम्भ प्रसीद कुरु सुप्रभो ॥

ततः कुशजलदक्षिणाद्रव्यञ्चादाय ॐ अद्य पूर्वोच्चरितशुभदिने स्तम्भारोपणकर्मणः पूर्णताप्राप्तये अमुकगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय यथाशक्ति दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति दक्षिणां दत्त्वा, हस्तेऽक्षतानादाय गणेशं गौरीं कलशदेवांश्च विसृजेत् । यथा—ॐ भो गणेशगौरीकलशस्थदेवताः पूजां गृहीत्वा स्वस्थानङ्गच्छन्तु । इत्यक्षतान् प्रक्षिपेत् ॥ इति स्तम्भारोपणप्रयोगः ॥

लगाहुआ एक नया बडा लंबा बांस और भी चिस्या आदि सब मिलाय कुशद्वारा सबपर जल छिडक ५ या ७ पुरुष साथही थांभेहुये पूजित गडहेमें 'ॐ सुप्रतिष्ठित०' इस वाक्यद्वारा छोडे और गढेके मुखतक मट्टीसे भर डंडे खूब ठूंसकर खंभेको मजबूत गाढ, उस स्थानको जलसे सिञ्चित कर कुंकुम ऐपन और सिन्दूरादिसे खंभेको सुशोभित बनाय 'ॐ स्तंभाधि०' इस नाम मंत्रद्वारागंध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पान, सुपारी और दक्षिणासे पूजाकर हाथ जोड 'ॐ त्वां प्रार्थये०' इस श्लोकसे प्रार्थनाकर हाथमें कुश दक्षिणा ले 'ॐ अद्य' इत्यादि नाम गोत्र कहता हुआ संकल्प पूराकर दक्षिणा ब्राह्मणको दे गणेशादिकों पर 'ॐ भो गणेशादि०' इस वाक्यद्वारा अक्षत छोडता हुआ गणेश गौरी कलशके देवताको विसर्जन देवे ॥ इति स्तम्भारोपणप्रयोग ॥

अथ मण्डपाच्छादनप्रयोगः ।

तत्र स्तम्भारोपणानन्तरं वरगृहे वरहस्तेन कन्यागृहे च कन्याहस्तेन उत्तमं षोडशहस्तपरिमितम्, मध्यमं द्वादशहस्तमितम्, कनिष्ठं दशहस्तमितम् अथवा कनिष्ठात्कनिष्ठम् अष्टहस्तपरिमितम् । यद्वा यथावकाशं चतुरस्रं मण्डपं विधाय सर्वमण्डपं नारिकेलदलतृणपल्लवकटवंशादिभिर्वस्त्रादिना वा आच्छाद्य कदलीस्तम्भादिभिः शोभनञ्च कुर्य्यात् । तथा कन्यागृहे मण्डपदक्षिणदिशि पश्चिमां दिशमाश्रित्य मण्डपसंलग्नमुत्तराभिमुखं कौतुकागारम्, तथैव मण्डपाद्बहिरैशान्यां दिशि मृत्तिकामाङ्गल्यानीतमृत्स्नया मिश्रितमृत्तिकादिभिर्मण्डपसम्मिलितां जामातुश्चतुर्हस्तैः समन्ततः परिमितां हस्तैकमात्रोच्छ्रितां चतुरस्रां तुषकेशशर्करादिरहितां वधूवरोपवेशनार्थं तथा तत्कर्त्तव्यहवनादिकर्मनिमित्तां रम्यां वेदिकां कदलीस्तम्भादिभिरुपशोभितां सिकतादिपरिष्कृतां

अब मण्डपाच्छादन प्रयोग लिखते हैं—खंभा गाडनेके पश्चात् वरके गृहमें वरके हाथसे और कन्याके गृहमें कन्याके हाथसे, उत्तम मण्डप सोलह हाथ लंबा, चौडा चौकोना, या बारह हाथका चौकोना मध्यम, या दश हाथका कनिष्ठ या आठ हाथका कनिष्ठसे कनिष्ठ, अथवा जितना मण्डपके योग्य स्थान प्राप्त हो उतनाही चौकोना मण्डप बनाय उसको नारियलके पत्ते या खर तथा चटाई या बांस आदि अथवा कपडेकी चांदनीसे छायकर केलोंके खंभे वंदनवार आदिसे सुन्दर शोभित बनाना और कन्याके गृहमें विशेष यह है कि, मण्डपसे मिलाहुआ नैर्ऋत्यकोणमें उत्तरद्वारका कौतुकागार (कोहवर) बनाना चाहिये । और मण्डपसे बाहर ईशानकोणमें मृत्तिका माङ्गल्यकी लाई हुई मृत्तिकासे मिलीहुई मट्टी आदिद्वारा मण्डपसम्मिलित स्थानमें वरके हाथकी नापकी चार हाथ लंबी चौडी, एक हाथकी ऊंची चौकोनी, भूसी बाल और कंकडी आदि नहीं हों जिसमें ऐसी वरवधूके बैठने तथा दोनोंके कर्त्तव्य हवनादिकर्म्मोंके निमित्त रमणीक वेदिका, कदलीस्तंभादिसे शोभित, और

हरिद्राचूर्णादिमिश्च सुसज्जितां कारयेत् । एवं चुल्हिकादीनामपिनिर्माणं कारयेदिति । अतोऽग्रे प्रधानकलशस्थापनादिकं भवति ॥

इति मण्डपाच्छादनप्रयोगः ॥

अथ प्रधानकलशस्थापनप्रयोगः ।

(संस्कार्ययोः वरकन्ययोर्वक्ष्यमाणं कृत्यं समानम्)

तत्र मण्डपाच्छादने जाते मण्डपमध्यस्तम्भसमीप एव लिखिताष्टदलोपरि गोमयादिना विचित्रितं मृण्मयं धातुजं वा सुशोभितमव्रणं प्रधानकलशं तत्समीप एव महागणपतिगौर्यौ च स्थापयेत् । तद्यथा—तैलादिलापनमुहूर्त्तं विचार्य तस्मिन् दिने स्वस्वगृहे कन्यापिता सपत्नीकःकन्यया सहितः वरपितापि सपत्नीकः पुत्रसहितः सुस्नातः अहते वाससी परिधाय मण्डपे शुभासनोपरि पूर्वाऽभिमुख उपविश्य स्वदक्षिणे ग्रन्थिबन्धनयुतां

बैठनेके स्थानमें कोयल रहनेके लिये वालूआदि विछी, तथा हरिद्राचूर्ण आदिसे सुन्दर सजाईहुई बनाना, और चूल्हाआदिका भी बनाना आरम्भ करना चाहिये ॥ इसके पश्चात् प्रधान कलशस्थापनादि कर्म होता है ॥ यह मण्डपाच्छादन प्रयोग पूराहुआ ॥

अब प्रधान मङ्गलकलश और गणेशादिका स्थापनका प्रयोग लिखते हैं—(आगे कहे प्रयोग वर और कन्याके यहां समानहीं होते हैं) मण्डपाच्छादनके पश्चात् तैलादि लगानेका शुभमुहूर्त्त देख मण्डपके बीचवाले खम्भासे मिले पश्चिमस्थानमें हरिद्रा चूर्णादिद्वारा बनाये अष्टदलके ऊपर गोमय या किसी रङ्गआदिसे विचित्र मृत्तिका या ताम्रादि धातुका बनाहुआ एक प्रधान मङ्गलकलश और इसीके समीप महागणपति तथा गौरीका स्थापन करे ॥ कन्या और वरके शरीरमें तैलादि लगानेका मुहूर्त्त विचार, उसी दिन कन्यापिता अपने घरमें पत्नी और कन्या सहित, तथा वरपिता भी अपने गृहमें स्त्री और पुत्रसहित सुन्दर स्नानादि कर अहतवस्त्रोंके जोड़े पहिन, मण्डपमें शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठ, अपने दहिने गांठ बन्धीहुई

पत्नीं तद्दक्षिणतः हरिद्रारञ्जितनवीनकाष्ठासने कन्यापिता कन्याम् वरपिता च पुत्रमुपवेश्य आचम्य ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॥ इत्यात्मानं पत्नीपुत्रादिसहितं पूजासंभारांश्च संप्रोक्ष्य प्राणानायम्य द्रव्याक्षतान् गृहीत्वा "सुमुखश्चैकदन्तश्च" इत्यादि "ब्रह्मेशानजनार्दनाः" इत्यन्तं पूर्वोक्तश्लोकान् पठित्वा श्रीमहागणाधिपतये नमः । महागणपतिं ध्यायामि । इति गणपतिस्मरणं कुर्यात् ॥ ततः कुशादीन्यादाय संकल्पः—ॐ विष्णुरित्यादि देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्मा अस्य अमुकशर्मणो मम पुत्रस्य (इति वरपिता) अस्या अमुकनाम्न्या देव्या मम कन्यायाः (एवं कन्यापिता) उच्चार्य करिष्यमाणविवाहाङ्गभूततैलादिलापनकर्मणि शुभता सिद्ध्यर्थं मङ्गलकलशगणेशगौरीसूर्यादिग्रहाणां स्थापनकर्माहङ्करिष्ये ॥ इति ॥ ततो मध्यस्तम्भसंलग्नकलशस्थापनार्थलिखिताष्टदलभूमि—ॐ भूम्यै नमः । इति मन्त्रेण गन्धाद्युपचारैस्संपूज्य ॐ

स्त्री और उसके दहिने हल्दी आदिसे रंगे हुए नवीन पीढ़ेपर कन्यापिता कन्याको और वरपिता अपने पुत्रको पूर्वाभिमुख बैठावे । तत्पश्चात् तीनवार जलका आचमन कुशोंसे जलको 'ॐअपवित्रः' मन्त्र कहता हुआ अपने तथा स्त्री पुत्र अथवा कन्या और संपूर्ण पूजन सामग्री आदिपर छिडकदेवे । फिर प्राणायाम कर हाथमें द्रव्याक्षत ले 'ॐ सुमुखश्चै०' इत्यादि श्लोकों द्वारा गणपत्यादि देवोंकी स्तुतिकर अक्षतादि छोड देवे । तब कुशजल हाथमें लेकर 'ॐ विष्णुः' इत्यादि संकल्पवाक्य संपूर्ण कहता हुआ अमुक शब्दोंके स्थानोंमें अपना अपना गोत्रादिका नाम, जो कन्या पिता और वर पित आदिका होवे कहकर 'करिष्यमाण' इत्यादि 'करिष्ये' पर्य्यन्त पूरा कह संकल्पका जल छोड देवे ॥ पुनः कलश रखनेके अष्टदलपर भूमिकी पूजा 'ॐ

१ इनका ध्यान ३६ पृष्टमें देखलेना ।

भूर॑सि भूमि॑रस्यदि॑तिरसि वि॒श्वधा॑या वि॒श्वस्य॒ भुव॑नस्य धर्त्री। पृ॒थि॒वीं य॑च्छ पृथि॒वीन्दृ॑ꣳह पृथि॒वीम्मा हि॑ꣳसीः ॥ (य० अ० १३ मं० १८) इति मन्त्रेण भूमिस्पर्शनं कृत्वा ततो गोमयनिर्मितां गौरीं स्पृशन्—ॐ मान॑स्तो॒के तन॑ये॒ मान॒ऽ आ॒यु॑षि॒ मानो॒ गोषु॒ मानो॒ऽ अश्वे॑षु रीरिषः। मानो॑ वी॒रान्रु॑द्र भामि॒नो॑ वधीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित्त्वा॑ हवामहे ॥ (य० अ० १६ मं० १६) इति पठित्वा अष्टदलोपरि सप्तधान्यं यवान् वा ॐ धा॒न्य॑मसि धि॒नु॒हि दे॒वान् प्रा॒णाय॑ त्वोदा॒नाय॑ त्वा व्या॒नाय॑ त्वा। दी॒र्घामनु॒ प्रसि॑ति॒मायु॑षे धान्दे॒वो वः॑ सवि॒ता हिर॑ण्यपाणिः॒ प्रति॑गृभ्णा॒त्वच्छि॑द्रेण पा॒णिना॒ चक्षु॑षे त्वा म॒हीना॒म्पयो॑ऽसि ॥ (य० अ० १ मं० २०) इति मन्त्रेण निक्षिप्य धान्योपरि ॐ आजि॑घ्र क॒लश॑म्म॒ह्या त्वा॑ वि॒शन्त्विन्द॑वः। पुन॑रू॒र्ज्जा निव॑र्त्तस्व सा नः॑ स॒हस्र॑न्धुक्ष्वो॒रुधा॑रा॒ पय॑स्वती॒ पुन॒र्म्मा वि॑शताद्र॒यिः ॥ (य० अ० ८ मन्त्र ४२) ॥ इति कलशं संस्थाप्य ॐ वरु॑णस्यो॒त्तम्भ॑नमसि॒ वरु॑णस्य स्कम्भ॒सर्ज्ज॑नीस्थो॒ वरु॑णस्य ऽऋत॒सद॑न्यसि॒ वरु॑णस्य ऽऋत॒सद॑नमसि॒ वरु॑णस्य ऽऋत॒स—

भूम्यै नमः' इस मन्त्रसे गन्धादि द्रव्यों द्वारा कर 'ॐ भूरसि०' मन्त्रसे पूजित भूमिको अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे स्पर्शकर, तब गोमयसे बनी गौरीको 'ॐ मानस्तोके०' मन्त्रसे स्पर्श करे। 'सर्वत्र अनामिकाग्रहीसे स्पर्श करना चाहिये' अष्टदलपर 'ॐ धान्यमसि०' मन्त्रसे सप्तधान्य या यव अथवा चावलोंकी ढेरी करे ॥ और ढेरीपर सोने चांदी पीतल आदि या मिट्टीका विचित्रित कलश 'ॐ आजिघ्र०' मन्त्रसे रख उसमें 'ॐ वरुणस्योत्त०' मन्त्रसे पवित्र जल

दनमासीद ॥ (य० अ० ४ मं० ३६) इति मन्त्रेण आकण्ठं जलं पूरयित्वा । ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ इति गन्धम् । ॐ याऽओषधीः पूर्व्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा । मनैनुबभ्रूणामहꣳ शतन्धामानि सप्त च ॥ (य० अ० १२ मं० ७५) इति सर्वौषधीः । ॐ काण्डात् काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ (य० अ० १३ मं० २०) इति दूर्वाङ्कुराणि । ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मानयति कश्चन स्वसस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ इति पञ्चपल्लवान् आम्रपल्लवं वा । ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसव ऽ उत्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम् ॥ (य० अ० १ मं० १२ अ० १० मं० ६) इति कुशान् । ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानः शर्म्म सप्रथाः (य० अ० ३६ मं० १३) इति सप्तमृदः । ॐ याः फलिनीर्य्याऽ अफला ऽ अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳ हसः ॥ (य० अ० १२ मंत्र ८९) इति पूगीफलम् । ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे (य० अ० ११ मंत्र २५) इति पञ्चरत्नानि ।

गलेतक भरदेवे । फिर कलशमें ' ॐ गन्धद्वा० ' मन्त्रसे खस, आदि सुगन्धित वस्तु छोड कलशपर चन्दनादि आलेपन छिडक देवे । कलशमें सर्वौषधी ' ॐ या ओषधी० ' मन्त्रसे, तथा दूर्वा ' ॐ काण्डात्काण्डात्० ' मन्त्रसे, और पञ्चपल्लव या आमकी टेरी ' ॐ अम्बिकेऽअम्बिके० ' मन्त्रसे, और कुश ' ॐ पवित्रेस्थो० ' मन्त्रसे, सप्तमृत्तिका ' ॐ स्योनापृथिवी० ' मन्त्रसे, पूगी-

ॐ हिरण्यगर्ब्भः॑समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः॑ पतिरेकऽ आसीत्।
सदाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्म्मै देवाय हविषा व्विधेम॥
(य० अ० १३ मंत्र ४) इति हिरण्यं च निक्षिप्य ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः। इति मंत्रेण कलशं रक्तवस्त्रेण सूत्रेण वा वेष्टयेत्। ततः ॐ पूर्णा दर्व्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत। व्वस्नेव व्विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्जꣳ शतक्रतो॥
(य० अ० ३ मंत्र ४९) इति मंत्रेण कलशोपरि तण्डुलपूर्णपात्रम्।
ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः॑ स्वाहा सूर्य्यो ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा। ज्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा॥ (य० अ० ३ मंत्र ९) इति तदुपरि घृतद्वीपं च निधाय ततोऽक्षतान् गृहीत्वा ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्त-दाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो व्वरुणो ह बोध्युरुश-ꣳस मा न आयुः प्रमोषीः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारमावाहयामि प्रतिष्ठापयामि॥ इति वरुणमावाह्य। ततः कलशसमीप एव पर्णपुटकादिस्थरक्ताक्षतपुञ्जोपरि पूगी फल 'ॐ याः फलिनीर्य्या०' मन्त्रसे, पञ्चरत्न 'ॐ परिवाजपतिः' मन्त्रसे, सुवर्ण 'ॐ हिरण्यगर्भः०' मन्त्रसे छोडदेवे, (यदि सोनेका घडा हो तो सुवर्ण नहीं डाले)। रक्त या पीत वस्त्र अथवा रंगाहुआ सूत 'ॐ युवा सुवासा०' मन्त्रसे कलशमें लपटे। फिर चावलोंसे भराहुआ कलशके मुखपर ढकना 'ॐ पूर्णादर्वि०' मन्त्रसे धरकर, उसी चावलभरे पूर्णपात्रपर जलता हुआ घृत दीपक 'ॐ अग्निज्योति०' मन्त्रसे रखदेना। फिर हाथमें अक्षत ले 'ॐ तत्त्वायामि०' से 'प्रतिष्ठापयामि' पर्यन्त कह अक्षतोंको कलशपर छोड वरुण देवताका आवाहन करना। तत्पश्चात् कलशके समीप किसी पात्रमें रक्ताक्षत पुञ्जपर लाल या पीले सूतसे चारोंतरफ लपेटाहुआ एक छोटा

फलं निधाय तस्योपरि महागणपतिमावाहयेत् । तत्रादौ ध्यानम्—

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरतरुविमले रत्नसिंहासनस्थम् ।
दोर्भिः पाशाङ्कुशेष्टाभयधृतिविशदं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतिं ध्यायामि ॥

इति ध्यात्वा हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वावाहयेत्—

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज ।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुःपितः ॥
नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज ।
भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः ॥
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः ।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां रक्ष च मे क्रतुम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः महागणपतये नमः, महागणपतिमावाहयामि ॥ पुनरक्षतान् गृहीत्वा गोमयनिर्मितायां गौर्याम्—ॐ श्रीश्चं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ व्वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मं ऽ इषाण सर्वलोकम्मं ऽ इषाण (य० अ० ३१ मन्त्र २२) ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः गोमयपिण्डे गौरीं साङ्गां सपरिवारां आवाहयामि ॥ इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य पुनरक्षतान् गृहीत्वा ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य

ढेला मट्टीका अथवा एक सुपारी धर, उसीपर महागणपतिका पूजन करे । सो इस प्रकार कि, पुष्पादि लिये हाथ जोड 'श्वेताङ्गं०' से 'ध्यायामि' पर्य्यन्त कह ध्यान करना और पुष्पादि छोड पुनः अक्षत ले 'हे हेरम्ब०' से 'आवाहयामि' पर्य्यन्त कह अक्षत छोड गणपतिका आवाहन करना । फिर अक्षत ले गोमयकी बनी हुई गौरीपर 'ॐ श्रीश्च ते०' से 'आवाहयामि' पर्य्यन्त कह

बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमन्दधातु । विश्वेदेवास ऽ इह मादयन्तामो ३ म्प्रतिष्ठ । (य० अ० २ मंत्र० १३) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । ॐ गौर्यै नमः । ॐ अपांपतये वरुणाय नमः । प्रतिष्ठापयामि पूजयामि ॥ इति प्रतिष्ठाप्य सर्वान् गणेशादिकान् पृथक् पृथक् एकतन्त्रेण वा सर्वोपचारैः पूजयेत् ॥ (वरुणस्य स्नानरहितं सर्वं पूजनं भवति ।) तत्र पूजने मन्त्रो यथा— ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः अपांपतये वरुणाय नमः ॥ आसनार्थेऽक्षतान् समर्पयामि । पाद्यम् अर्घ्यम् आचमनीयम् जलम् समर्पयामि । पञ्चामृतं स्नानीयं समर्पयामि । शुद्धोदकं स्नानीयम् समर्पयामि । वस्त्राणि समर्पयामि । यज्ञोपवीतं समर्पयामि । गणपतये नमः । वरुणाय नमः । चन्दनम् अनुलेपनम् समर्पयामि । गौर्यै नमः । सिन्दूराभरणं समर्पयामि । अक्षतान् समर्पयामि । पुष्पाणि माल्यञ्च समर्पयामि । महागणपतये नमः । दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि । नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि । धूपं आघ्रापयामि । दीपं दर्शयामि । हस्तौ प्रक्षाल्य नैवेद्यं यथाभागं समर्पयामि । मध्ये पानीयम् उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनम् मुखप्रक्षालनम् जलं समर्पयामि । चन्दनेन करोद्वर्त्तनं समर्पयामि । ताम्बूलानि पूगीफलानि समर्पयामि । यथाभागं दक्षिणां समर्पयामि ।

अक्षत छोड गौरीका आवाहन कर । पुनः अक्षत ले 'ॐ मनो जूति०' से 'पूजयामि' पर्यन्त कह कलश गणेश और गौरीपर अक्षत छोड सबकी प्रतिष्ठा करे । फिर मूलमें लिखे अनुसार 'आसन' से ''पुष्पाञ्जलि'' पर्यन्त श्रद्धापूर्वक 'ॐ भूर्भुवः स्वः इत्यादि तीन नाममन्त्रोंद्वारा गणेश गौरी और वरुण इन तीनों देवताकी अलगअलग अथवा एक साथ ही पूजा करे । (वरुणको

नारिकेलादिफलं समर्पयामि । कर्पूरनीराजनं समर्पयामि । पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि । श्रीमन्महागणपतये विशेषार्घ्यम्---ताम्रपात्रे गन्धाक्षतपुष्पफलद्रव्यजलान्यादाय--

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक ।
भक्तानामभयं कर्त्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो ।
वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ॥
अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहित श्रीमन्महागणपतये नमः। विशेषार्घ्यं समर्पयामि ॥ ततः प्रार्थना—

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय
भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः ॥
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥

पूजनमें स्नान नहीं करना चाहिये ।) तदुपरि गणेशजीको विशेषार्घ्य देना । ताम्रपात्रमें गन्ध, अक्षत, पुष्प, फल, द्रव्य और जल एकत्रितकर दोनों हाथमें लिये हुए 'ॐ रक्षरक्ष' से समर्पयामि' पर्य्यन्त कह गणेशके आगे छोड देवे

लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

ततोऽनामिकाग्रेण कलशं स्पृशन् गङ्गाद्यानामभिमन्त्रणं कुर्यात् ।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥
कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशन्तु समाश्रिताः ॥

ततः कलशप्रार्थना—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्त्तुमीहे जलोद्भव ॥
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ इति ॥

और हाथजोड 'विघ्नेश्वराय' से 'सर्वदा' पर्य्यन्त कह प्रार्थना करे ॥ फिर दहिने हाथकी अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे कलश स्पर्श कर 'ॐ गंगे' से 'समाश्रिताः' तक कहे । फिर हाथ जोड़कर "देवदानव" से 'सर्वदा' पर्य्यन्त

१ स्पृशंस्त्वनामिकाग्रेण क्वचिदालोकयन्नपि । अनुमन्त्रणं तु सर्वत्र सदैवमनुमन्त्रयेत् । इतिदेवयाज्ञिकः ॥

ततो हस्ते जलमादाय ओं अनया पूजया सिद्धिबुद्धिसहितः श्रीमहागणपतिः प्रीयताम् । तथा गौरीवरुणौ च प्रीयेतान्न मम । इति जलमुत्सृजेत् । (केप्यत्र सूर्य्यादिग्रहाणां स्थापनमपि कुर्वन्ति ।) ततस्तम्भारोपणकर्मणि याः सर्षपादिभिर्निर्मिताः पञ्चपोटलिकास्तासां मध्ये चतस्रोऽवशेषितास्तां क्रमेणैकैकां मङ्गलकलशे १, देवपूजनार्थजलाधारकरकपात्रे च २, संस्कार्योपवेशनार्थहरिद्रादिरञ्जितकाष्ठासने च ३, कन्यागृहे कन्यायाः वामकरे वरगृहे वरस्य दक्षिणकरे च ४ इति चतुर्षु स्थानेषु ओं यदाबध्नन्दाक्षायणाहिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः तन्मऽआबध्नामिशतशारदायायुष्मांजरदष्टिर्य्यथासम् ॥ (य० अ० ३४ मंत्र० ५२) इति मन्त्रेण बध्वा ततस्तैलादिलेपनविधानं कुर्य्यात् ॥

कह प्रार्थना करे ॥ इसके उपरान्त हाथमें जल ले 'ॐ अनया' से 'न मम' पर्य्यन्त कह जल छोड देना चाहिये (इसी अवसरमें सूर्य्यादि ग्रहोंका भी कोई स्थापन करते हैं जैसा टिप्पणिमें लिखा है) तत्पश्चात् सरसों आदिसे बनी चार पोटलीं जो स्तभारोपण समयमें पांच बनाई गईं थीं जिनमें से १-खम्भे बांधकर बाकी ४ धरी हैं, उन्हींमेंसे १ मंगलकलशके गलेमें, दूसरी (पूजनका जलपात्र) करवाके गलेमें, तीसरी संस्कार्यके बैठनेके रङ्गीन पीढामें, और चौथी कन्याके गृह कन्याके बायें हाथकी कलाईमें, तथा वरके घर, वरके दहिने हाथकी कलाईमें 'ॐ यदाबध्नं०' मन्त्रसे बांध देना । तत्पश्चाद् नीचे लिखी विधिसे कन्या तथा वरके शरीरमें तैलादि लगाना चाहिये ॥

---

१ ग्रहाणां स्थापनं यथा—कलशसमीप एव कलशस्येशान्यां दिशि नव कोष्ठात्मके काष्ठासने पर्णपुटकादौ वा "ओं अधिप्रत्यधिदेवसहितेभ्यः सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः" ओं भूर्भुवः स्वः अधिप्रत्यधिदेवसहितान् सूर्यादिनवग्रहान् आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि" । इत्येकतन्त्रेण पृथक्पृथक् नामभिर्वा आवाहनादिदक्षिणान्तं पूजनं विधाय हस्ते जलमादाय ओं अनया पूजया अधिप्रत्यधिदेवसहिताः सूर्या-

अथ तैलादिलापनविधिः प्रयोगश्च ।

वरस्य कन्यायाश्च मेषादिराशिषु यस्मिन् यस्मिन् राशौ जन्म भवेत् तस्मिन् तस्मिन् राशौ तैलादिलापने या या पूर्वं लिखिता तां तां संख्यामनुचिन्त्य तया तया संख्यया वरकन्ययोर्विवाहसमयात्प्रागेव तैलादिलापनं पूर्णं भवेदिति विधिर्विधेयः ॥ इति ॥ कुत्रचित् कन्यापितैव वरगृहेऽपि दूर्वाहरिद्राद्रव्यसहितं यथाशक्ति तैलं पात्रे धृत्वा प्रेषयति तेनैव तैलादिना वरशरीरस्यालेपनादिकं भवतीति ॥ प्रयोगः- गणपत्यादिपूजने जाते कन्यागृहे कन्यापिता वरगृहे वरपिता कश्चिद्ब्राह्मणो वा दूर्वाङ्कुरैर्गणेशगौरीकलशानामुपरि हरिद्रायुतं किञ्चित्तैलं सिञ्चेत् । तत मन्त्रः-ॐ काण्डात् काण्डात्प्ररोहन्ती परुषःपरुषस्परि । एवानो दूर्वे प्रतनुसहस्रेण शतेन (य०अ०१३मंत्र२०)ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।गौर्यै नमः।कलशाधिष्ठितेभ्यो देवेभ्यो नमः।इति।ततःस्वासने

तैललगानेका विधि व प्रयोग—इस प्रकार है कि, मेषादिराशियोंमें वर तथा कन्याकी जो जन्मराशि हो उस राशिके लिये जो संख्या तैलादि लगानेकी पहिले लिख आये हैं, वही संख्याकी पूर्ति, वर तथा कन्याके विवाह होनेसे पहिले ही हो जावे, ऐसे हिसाबसे विधान करना चाहिये ॥ कहीं कहीं तो कन्याहीके गृहसे वरके शरीरमें लगानेके लिये भी, दूर्वा, हरिद्रा और द्रव्यसहित यथाशक्ति तैल धातुपात्रादिमें धरके भेजा जाता है और उसी तैलका प्रयोग वरके शरीरमें किया जाता है॥प्र—गणपत्यादि पूजन हो जानेपर कन्याके यहां कन्या पिता, तथा वरके घर वरका पिता, अथवा और कोई पुरोहितादि ब्राह्मण दूबकी पिञ्जुलीसे हरिद्रासंयुक्त किञ्चित्तैलको गणेश और कलशपर

-दिग्रहमण्डलदेवताः प्रीयन्ताम्न मम ॥ इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत् ॥ ओं ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च । गुरुश्च शुक्रश्शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥ इति सर्वेषां पूजनं पूरयेत् ॥

स्थित एव वरः कन्या वा गुडादिसहिततण्डुलैः स्वाञ्जलिं पूरयेत्। ततो वरस्य कन्यायाः वा पुरतः स्थिता काचिदेका कुमारिका कन्या दूर्वाङ्कुरपुञ्जौ स्वदक्षिणवामकराभ्यांपृथक्पृथक् गृहीत्वा हरिद्रायुत तैलेन अभिघारितौ कृत्वा स्वदक्षिणहस्तगृहीतपुञ्जेन वरस्य कन्यायाः वा दक्षिणं तथा स्ववामहस्तगृहीतपुञ्जेन वरस्य कन्यायाः वा वामं पादं गुल्फं स्कन्धं तथा द्वाभ्यां हस्तगृहीतपुञ्जाभ्यां सहैव ललाटं हरिद्रायुतपुञ्जस्थतैलेन त्रिवारं पञ्चवारं सप्तवारं वा सिक्त्वा पुञ्जचुम्बनङ्कुर्यात्। ततो वरस्य कन्यायाः वा अञ्जलौ धृतं गुडतण्डुलादिकं गृहीत्वा गच्छेत्। एवमेव यथाकुलदेशाचारं पञ्च सप्त वा कुमारिकाः कन्यास्तैलाभिषेचनं कुर्युः। इत्येवं वरकन्ययोस्तैलादिलापनविधानं स्वस्वगृहे कर्त्तव्यम्॥ ततः कर्त्ता हस्ते कुशजलदक्षिण द्रव्यञ्चादाय-- ॐ अथ पूर्व्वोच्चरितविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ मम (वरपिता) अमुकपुत्रस्य (कन्यापिता) अमुकीकन्यायाः विवाहकर्माङ्गभूतमङ्गल-

‘ ॐकाण्डात्) मन्त्र और वाक्यसे छिडकदेवे॥ तत्पश्चात् कन्या या वर अपने आसन परही ‘ उकुरु मुकुरु ’ बैठ अंजुलीमें गुड और चावल भरलेवे। तब एक कुमारी कन्या संस्कार्यके तरफ मुखकिये समीपमें बैठीहुई अपने दोनों हाथोंसे दूर्वोंकी दो पिञ्जुली ले हरदी सहित तेलमें दोनों वोर वोर दहिने हाथकी पिञ्जुलीसे कन्या या वरके दहिने और वाम हाथकी पिञ्जुलीसे बांयें, ‘ पांव घुटुना और कन्धोंपर तथा पिञ्जुलीसहित दोनों हाथों द्वारा माथेमें लगाकर दोनों पिञ्जुलियोंको चूमलेवे। इसीप्रकार तीन, पांच, अथवा सातवार तैल चढायकर, संस्कार्यसे उसके अंजुलीमें भरेहुये गुड चावलोंको तेल चढानेवाली कन्या लेकर उठ जावै॥ इस प्रकार कुलदेशाचारके अनुसार तीन या पांच अथवा सात कुमारी कन्या तैल चढाती हैं॥ तत्पश्चात् कुश और दक्षिणा हाथमें ले ‘ ॐ अद्य० ’ से ‘ मम ’ पर्य्यन्त कह वरपिता

कलशगणेशादिस्थापनपूर्वकतैलादिलापनकर्मणः पूर्णतासिद्ध्यर्थं यथाशक्ति दक्षिणां अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय अहं संप्रददे ॥ इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दत्त्वा प्रणमेत् ॥ ॐ अनेन मङ्गलकलशगणेशादिस्थापनपूर्वकविवाहाङ्गभूततैलादिलापनकर्मणा कर्माङ्गदेवता प्रजापतिः प्रीयतान्न मम ॥ इति । ततो नापितादीनपि द्रव्यादिभिः सन्तोषयेत् । ततो वरगृहे वरस्य कन्यागृहे कन्यायाश्च सर्वशरीरे सर्षपादिभिरुद्वर्त्तनं तथा हरिद्रायुततैलेनाभ्यञ्जनञ्च जन्मराश्यनुसारसंख्यया विवाहदिनपर्यन्तं यथा पूर्येत तथा प्रतिदिनं कर्तव्यम् । अतोऽग्रे कूपपूजनं दृषत्पेषणं च भवति ॥

इति तैलादिलापनप्रयोगः ॥

'अमुकपुत्रस्य' कन्यापिता 'अमुकीकन्यायाः' इत्यादि अमुकस्थानोंमें नामोंको कहताहुआ 'संप्रददे' पर्यन्त पूरा संकल्प कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे प्रणाम करे । फिर हाथमें जल ले 'ॐ अनेन' से 'न मम' पर्य्यन्त कह जल छोडदेना चाहिये । और नापितादिकोभी द्रव्य दे प्रसन्न करे । इसके पश्चात् अपने अपने घरमें वर तथा कन्याके शरीरमें हरिद्रा सर्षपादिका सुगन्धित उवटन और तैल नित्य इस संख्यासे लगाना प्रारम्भ करै कि, जिसमें विवाहदिन पर्य्यन्तमें राशिके अनुसार गणना पूरी हो जावे ॥ इस कर्मके वाद कूपपूजन और सिलपोहना कर्म होता है ॥

इति तेलादिलेपनप्रयोग ॥

आवश्यकसूचना ।

अथैतत्कालमारभ्य विचारशीलैर्विज्ञैरिदमवश्यमेवावसन्धेयम् । यद्य येषां महागणपत्यादिदेवानामावाहनं सञ्जातं तथा चाग्रेऽपि विवाहाङ्गनिखिलकार्येषु येषां येषां देवादीनां यदा यदा आवाहनं भविष्यति तेषां तेषां महागणपत्यादिसकलदेवानाम् आवाहनदिनादारभ्य मण्डपोद्वासनसमये विसर्जनदिनपर्यन्तं प्रातरहरहः यथोपस्थितोपचारैः स्वयं द्विजद्वारा वा धर्मज्ञैरर्चनं विधेयम् । इति तु समुचितं सुष्ठुतरं कर्म भविष्यति ॥

यहां विचारवान् विद्वानोंको अवसे यह अवश्यही ध्यान रखना चाहिये कि, जो आज महागणपत्यादि देवोंका आवाहन हुआ और आगे भी विवाहाङ्ग सभी कर्मोंमें जहां जिन देवादिकोंका आवाहन होगा, सो इन महागण पति आदि सभी आवाहित देवताओंका आवाहन कालसे आरम्भ कर मंडवा उखाडनेके लिये सब देवादिकोंके विसर्जन होनेके समयपर्य्यन्त रोजही प्रातः काल विचारवान् धर्मज्ञ जन स्वयम् अथवा ब्राह्मणद्वारा यथोपस्थित साम्रग्रीसे श्रद्धापूर्वक पूजन किया करे ॥ इस प्रकार नित्यपूजन कर्मका करना उचित और अति उत्तम होगा. क्योंकि. सनातनधर्मके नियमानुसार एक दिन अथवा अनेक दिनोंमेंभी पूर्ण होनेवाले सभीकर्मोंके करनेमें जिनजिन देवताओंका आवाहनपूर्वक पूजन होता है उन सभी देवताओंका नित्य ही प्रातः पूजन उतने दिनों पर्यन्त बराबर कियाकरतेहैं कि, जितने दिनतक वह कर्म पूर्ण होकर देवताओंका विसर्जन नहीं होजाता । बस, ऐसेही विवाहके कर्मोंमें भी आवाहन कियेहुये उपस्थित देवताओंका विसर्ज्जन समय पर्य्यन्त प्रातः नित्य ही पूजन करना परमावश्यक है; ऐसा नहीं करनेसे यजमान प्रायश्चित्तका भागी हो जाता है ॥ इति ॥

---

१ अग्रेलिखितमण्डपोद्वासनप्रयोगे-महागणपत्यारभ्याखिल विवाहाङ्गकर्मसु आवाहितानां समग्रदेवानां नामानि संगृह्य या नामावली लिखिताऽस्ति सा नित्यार्चनकार्येऽपि कार्यसाधिकाऽस्ति ॥ इति ॥

नित्य पूजन करनेके प्रयोगसाधनमें एक नामावली जो आगे मण्डपोद्वासन प्रयोगमें लिखी है, उसके देखनेसे विना विसर्जित महागणपत्यादि देवताओंका क्रमसे नाम मालूम हो जावेगा जिससे नित्य पूजन प्रयोग सुकर होजायगा ॥

अथ कूपपूजनप्रयोगः ।

कस्मिंश्चित्कुले विवाहदिवसाद्द्वित्रिदिनप्रागेव अथवा विवाहदिने वस्त्राभरणैः स्वलंकृता कन्यामाता, वरमातापि च स्वस्वगृहे मङ्गलगानं गायन्तीभिः सौभाग्यवत्यादिस्त्रीभिः समेता कूपं तडागतटं वा गत्वा, तत्रालेपनसिन्दूरादिपूजनद्रव्यैर्यथाकुलाचारं कूपं तडागं वा पूजयित्वा पुनस्तथैव गृहमागत्य स्वस्वगृहे शिलापेषणादि कर्मारम्भं करोति ॥ इति तु यथाकुलाचारं भवति ॥

अथ दृषत्पेषणप्रयोगः ।

(सिलपोहना इति लोके प्रसिद्धः)

तत्र विवाहदिवसाद्द्वित्रिदिनप्रागेव यथावकाशैकदिनप्रागेव वा कन्यापिता स्वगृहे, वरपिता च स्वगृहे सुस्नातः शुद्धे अहते वाससी परिधाय कृतनित्यक्रियः धृतकुङ्कुमादिमङ्गलतिलकः स्वस्तिवाचनपूर्वकं मण्डपमागत्य तत्र शुभासने प्राङ्मुख उपविश्य स्वस्य दक्षिणतः वस्त्राभरणैः

कूपपूजनका प्रयोग—किसी किसी कुलमें इस प्रकार होता है कि, विवाह होनेसे दो तीन दिन पहिलेही अथवा विवाहके ही दिन वस्त्राभरणोंसे अलंकृता कन्याकी माता अपने गृहमें, एवं वरकी माताभी अपने गृहमें मङ्गलगानोंको गातीहुई सौभाग्यवत्यादि स्त्रियोंको साथमें लिये कूप या तालावके किनारे जाकर वहां ऐपन सिन्दूरादि पूजनकी सामग्रियोंसे कूप या तालावकी पूजा करके फिर वैसेही गाती बजाती अपने गृहमें आती हैं और अपने अपने गृहमें शिलापेषण आदि कर्मोंको आरम्भ करती हैं । यह कर्म अपने अपने कुलाचारके अनुसार होता है ॥

दृषत्पेषणप्रयोग—जिसे लोकमें सिलपोहना कहते हैं, यह विवाहदिनसे दो तीन दिन पहिले अथवा जैसा अवकाश हो एक दिनही पहिले कन्यापिता वर पिता अपने अपने गृहमें मङ्गलस्नान कर शुद्ध दो वस्त्रोंको धारण किये, सन्ध्यादि नित्य कृत्योंसे निवृत्त हो कुंकुमादिका मङ्गलतिलक लगाय 'स्वस्तिवाचन

स्वलंकृतां ग्रन्थिबन्धनयुतां पत्नीं चोपवेश्य—ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः इति त्रिराचम्य। कुशत्रयानीतजलैः—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरःशुचिः॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु॥ इति सर्ववस्तूनि आत्मानं च सिञ्चेत्। ततः प्राणानायम्य हस्ते द्रव्याक्षतपुष्पाण्यादाय—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः॥

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ इति ध्यात्वा पूर्वस्थापितगणेशाग्रे द्रव्यपुष्पादिकं धृत्वा पुनः हस्ते कुशजलान्यादाय संकल्पं कुर्यात्। ॐ अद्यामुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकवासरे

पूर्वोक्त मण्डपमें शुभासनपर पूर्वाभिमुख बैठकर, सुन्दर वस्त्र और आभरणोंको पहिनी हुई अपनी स्त्रीकोभी अपने दाहिने भागमें बैठाय और अपनेउपवस्त्रके साथ फूल द्रव्य सहित उसके अंचलका ग्रन्थिबन्धन करा लेवे। तब 'केशवाय नमः' इत्यादिसे तीन आचमन कर जलमें कुशा बोर 'ॐअपवित्रः०' इत्यादिसे अपने ऊपर तथा सर्व वस्तुओंपर छिडक देवे। फिर प्राणायाम करके द्रव्याक्षत और पुष्पोंको लिये हुए हाथ जोड 'सुमुखश्चैक०' इत्यादिसे ध्यानकर पूर्वस्थापित गणेशजीके समीप पुष्पादि छोड देवे। तब हाथोंमें कुश जल लेकर 'ॐ अद्य०' इत्यादि देशकाल और वर्तमान मास, पक्ष, तिथि, वार

अमुकगोत्रः अमुकशर्मा मम अमुकनामपुत्रस्य अमुकीनाम्नीकन्यायाः वा कर्तव्यविवाहाङ्गभूतदृषत्पेषणादिकर्मणि शुभतासिद्ध्यर्थं पूर्वावाहितानां गणेशगौरीकलशाधिष्ठितानां देवानां नवग्रहादीनाञ्च यथोपस्थितोपचारैः पूजनमहं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः महागणपतये नमः। ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः। ॐ भूर्भुवः स्वः कलशाधिष्ठितेभ्यो वरुणादिदेवेभ्यो नमः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अधिप्रत्यधिदेवसहितसूर्यादिनवग्रहदेवताभ्यो नमः। (इति पृथक्पृथक् नामभिः अथवा) ॐ भूर्भुवः स्वः गणपत्याद्यत्रावाहितेभ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। इत्येकतन्त्रेण स्नानीयं जलं गन्धम् अक्षतान् पुष्पाणि धूपं दीपं (हस्तौ प्रक्षाल्य) नैवेद्यं नैवेद्यान्ते जलं तांबूलं पूगीफलम् समर्पयामि। इति संपूज्य हस्ते जलमादाय—ॐ अनया पूजया गणेशाद्यत्रावाहिता देवाः प्रीयन्तान्न मम। इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—भो गणपत्याद्यत्र पूजिता देवाः मम सकुटुंबस्यायुष्कर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारस्तुष्टिकर्तारो वरदातारो भवत ॥ इति गणेशादिपूजनं विधाय दृषत्पेषण-

तथा अपना गोत्र, नाम और कन्या वा पुत्रका नाम आदि मूलसंकल्पमें लिखे अनुसार कहकर जल छोड देवे। फिर गणपति, गौरी, कलशाधिष्ठित देवता और नवग्रहोंका 'ॐ भूर्भुवः स्वः०' इत्यादि चार मन्त्रों द्वारा अलग अथवा 'ॐ भूर्भुवः स्वः गणपत्याद्यत्रा०' इस एक मन्त्रसे सर्वोंकी पूजा एक साथही करे। और समस्त द्रव्योंके चढानेमें 'ॐ भूर्भुवः स्वः' आदिमें और 'समर्पयामि' अन्तमें मिलाते हुये 'स्नानीयं जलम्' इत्यादि दक्षिणापर्य्यन्त वाक्योंको कहे। फिर हाथमें जल ले 'ॐ अनया०' इत्यादि 'न मम' पर्य्यन्त कह जल छोड, फिर हाथ जोडे हुए 'भो गणपत्यादि०' यहांसे 'भवत' पर्यन्त कह प्रार्थना कर देवे। इस प्रकार गणेशादिका पूजन कर फिर

१ दृषद—शिला उपला—लोढा इति लोके।

कर्मकुर्यात्। तद्यथा- मण्डप एव कलशस्योत्तरभूभागे उपला (लोढा) सहितौ द्वौ दृषदौ क्रमेण सम्मिलितशिरस्कौ पूर्वपश्चिमासादितौ द्वयोर्दक्षिणोत्तरयोर्दिशि यथादेशकुलाचारानुसारैः गुडम् आमचणकद्विदलतण्डुलकृसरान्नादिकं शष्कुल्यादिकं वा यथावकाशं पञ्च सप्त वा पत्रावल्यादिपात्रेषु कृत्वाऽऽस्तीर्यदृषदोरुपरि जलाक्तानि चणकद्विदलानि माषद्विदलानि वा किञ्चित् किञ्चिन्निधाय पूर्वपश्चिममुखाभ्यां दम्पतीभ्यामेकैके दृषदि उपलया द्विदलपेषणं किञ्चित्कृत्वा पुनः पुरुषदृषदि पत्नी, पत्नीदृषदि पुरुषश्च दृषद्दक्षिणेन गत्वा किञ्चित् पेषणङ्कुर्या-

दृषद्पेषणकर्म (सिलपोहना) करे। सो इस प्रकार होता है कि, मण्डपहीमें प्रधान कलशसे उत्तर भूमिपर लोढासहित एक शिलाका पूर्व शिर करके और दूसरी भी लोढासहित शिल पहिलेके शिरसे मिली हुई पश्चिम शिर करके बिछा देवे और ऐपन सिन्दूरसे सुरंजित पूर्व पश्चिम लम्बी बिछी हुई इन दोनों शिलोंके उत्तर और दक्षिण शिलोंसे मिलते हुए सात या पांच पत्तलोंको बिछाय उन सबोंपर यथाभाग बाँट गुडकी भेलियां और चनेकी दाल मिली हुई चावलोंकी कच्ची खिचडी या पूडी पुआ आदि अपने देश कुलाचारके अनुसार धर देवे। और उर्द या चनेकी कच्ची दाल जलमें भिगोकर फुलाई हुई दोनोंही शिलोंपर थोडी थोडी रख देवे, फिर ग्रंथिबन्धन किये हुए ही पूर्व मुख पति और पश्चिममुख करके पत्नी क्रमसे एक एक शिलके पीछे बैठ, एक रङ्गी न वस्त्र दोनों ही अपने ऊपर शिरसे पीठतक ओढ लेवे। और अपने अपने शिलोंपरकी दालोंको दोनों हाथ लगाकर लोढासे कुछ थोडा थोडा पीस फिर पत्नी एक हाथसे अपने शिलपरके लोढेको पकडे हुए, दूसरे हाथसे पतिके शिलपर धरे हुए लोढेको पकड लेवे और ऐसे ही पति भी अपने लोढेको एक हाथसे छोड पत्नीके शिलपर धरे हुए लोढेको पकड लेवे। ऐसे ही एक दूसरेका लोढा पकड लेनेपर अपना पहिला हाथ भी हटा लेवे और वस्त्र ओढे हुए ही दोनों दक्षिणावर्त बैठे ही बैठे घूमकर पत्नी पतिके और पति पत्नीके

ताम्। एवं क्रमेण पञ्चवारं सप्तवारं वा कृत्वा द्वयोरुपरि स्थितानि पिष्टा ऽपिष्टानि द्विदलान्येकस्मिन् दृषदि कृत्वैकाकिनी पत्नी पेषयेत्। ततः पिष्टमुत्थाप्यान्यस्मिन्पात्रे सुरक्षितं धृत्वा दृषदोः पृष्ठे अनुलेपनेन प्रसारितपञ्चाङ्गुलिसहितं करतलचिह्नं त्रयं पञ्च वा कृत्वा सिन्दूरेणाङ्कितञ्च कृत्वा स्तम्भसमीपे स्थापयेत् ॥ गुडकृसरान्नादिकस्य स्वस्वगोत्रेषु वितरणं भवति। दृषत्पेषणकर्मान्ते अथवा द्वितीयदिने केषुचित्कुलेषु कन्यागृहे कन्यामाता तथा वरगृहे वरमाता च अन्या वा काचित्सुवासिनी स्त्री मण्डपे चुल्लिकां निधाय तत्राग्निं प्रज्वाल्य तदुपरि कटाहं धृत्वा तस्मिन् किञ्चिद्घृतं गुडखण्डं च प्रक्षिप्य दर्व्या इतस्ततः प्रचालनपूर्वकं भृष्ट्वा निस्सार्य मातृकानैवेद्यार्थं पात्रे स्थापयति। केषुचित् कुलेष्वत्रैव विशेषरूपेण बृहदपूपवटकादीनां च निर्माणं

शिलोंपर आकर दोनों हाथसे पूर्ववत् दालोंको पीसे, ऐसेही पति और पत्नी एक दूसरेके सिलपर सात या पाँच वार हेरा फेरी करके दालोंको पीस, फिर पति अपने शिरपरका ओढना पत्नीके ऊपर कर और अपना गांठ बंधा उपरना भी पत्नीके ऊपरही धर आप शिलसे अलग होजावे। तब पत्नीको चाहिये कि पतिके शिलपरकी पिसीहुई पिट्ठी और बिना पिसीहुई दालोंकोभी अपनी शिलपर धर अकेलेही सब पिट्ठी पीस किसी पात्रमें रख लेवे। और दोनों लोढा तथा सिलोंको उठाकर मण्डपस्तंभमें ओठकाय दोनोंके पीठपर सात या पांच छापा ऐपनका अपने हाथसे देकर सिन्दूरसे टीपदेवे। इस "सिलपोहना" की गुड खिचडी अपने कुलवालोंमें बाँटी जाती है और सिलपोहनके अंतमें इसीदिन अथवा दूसरे दिन किसी किसी कुलमें अपने अपने गृहकन्याकी माता और वरकी माता या औरही कोई सोहागिन स्त्री मण्डपमें चूल्हापर उसमें अग्नि जलाय, उसपर कढाई चढाय कुछ घृत और गुडके टुकडोंको कढाईमें छोड कलछीसे इधर उधर चलातेहुये भूँज, किसी पात्रमें निकालकर आगे मातृका पूजनमें नैवेद्यादिके लिये रखलेती है। और किसी कुलमें तो विशेषरूपसे बडे

भवति । विवाहकर्मान्ते खण्डशस्तेषां वितरणमपीष्टमित्रादिगृहेषु भवति । इत्यादिकं कर्म यथास्वकुलदेशानुरूपमेव कृत्वा अद्यैव द्वितीयदिने वा स्वस्तिपुण्याहवाचनादिकर्म कुर्यात् ॥

इति हवत्पेपणप्रयोगः ॥

अथ स्वस्तिपुण्याहवाचनविधिः ।

पुण्याहवाचनविधिं वक्ष्यामोऽथ यथाविधि ।
प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयसिद्धये ॥

पुण्याहवाचनमृद्धौ पूर्तौ च । कात्यायनः—

ऋद्धिश्चैव तु संस्कारा विवाहान्ताः प्रकीर्तिताः ।
प्रतिष्ठोद्यापनादीनि पूर्तकर्म यथोदितम् ॥ इति ॥

तच्च कारिकायाम्—

स्वस्तिवाचनमन्त्रेष्टं गृह्यकर्मादिकेषु च ।
आचार्येणापि शास्त्रेऽस्मिन्मङ्गलार्थमुदीर्यते ॥
क्रमेण कलशं स्थाप्य पूर्णपात्रान्तसर्वशः ।

बडे पुआ (मॉंय) या गुलगुला आदि बनाये जाते हैं, जो विवाहके किसी अवसरमें इष्ट मित्र और कुटुम्बवालोंके यहां यथासम्भव टुकडे टुकडे कर बांटे जाते हैं । यह सब कर्म जिसके कुल या देशमें जैसा होता है वैसाही करके तब इसी सिलपोहनाके दिन या दूसरे दिन "स्वस्तिपुण्याहवाचन" आदि कर्म करते हैं ॥ इति हवत्पेषणप्रयोग ॥

अब स्वस्तिपुण्याहवाचनकी विधि इस प्रकार कहते हैं कि, विवाहान्त संस्कारोंमें और देवादि प्रतिष्ठा, एवं व्रतोद्यापनादि कर्म करनेवालोंको कात्यायनका कथन है कि इन सभी कर्मोंके प्रथम पुण्याहवाचन विधि कारिकामें कहे अनुसार करना चाहिये । कारिका इस प्रकार है कि समस्त गृह्यकर्मादिकोंमें मङ्गलप्राप्तिके लिये आचार्य द्वारा प्रथम स्वस्तिवाचन परमावश्यक है

वरुणं तत्र संपूज्य गङ्गाद्यावाहनादिकम् ॥
अर्चिता ब्राह्मणाः सम्यग्गन्धताम्बूलदक्षिणाः ।
तिष्ठयुर्ब्राह्मणा युग्मा वक्तारो दर्भपाणयः ॥
तिष्ठेद्वाचयिता तेषां दक्षिणस्थ उदङ्मुखः ।
अवनीगतजानुभ्यां ततो मुकुलपद्मवत् ॥

इत्यादिप्रामाण्यसत्त्वात् सर्वशुभकर्मण आदौ विशेषेणोपनयनविवाहावसथ्याधानारंभे सोमयागादियज्ञारंभे च महत्कर्मसुपूर्वदिनेऽल्पकर्मसु च तस्मिन्नेव दिने "पञ्चाङ्गानुष्ठानम्" अर्थात् शान्तिपाठं समग्रम्, स्वस्तिवाचनमन्त्रपाठमात्रं वा १ गणपतिपूजनम् २, स्वस्तिपुण्याहवाचनम् ३, मातृकापूजनमायुष्यमन्त्रजपसहितम् ४, नान्दीश्राद्धम् ५ इति पञ्चाङ्गानुष्ठानम् । अथ च यथाप्राप्तमन्यदपि तत्तदुपयोगिकं कलशस्थापनादिकं कर्म कुर्यात् । इति ॥

और क्रमसे पूर्णपात्र पर्य्यन्त कलशस्थापन, उसपर वरुण पूजन और गङ्गादिका आवाहन तथा गन्ध ताम्बूल दक्षिणादिसे पूजित हाथमें कुशा लिये हुये दोदोकी जुट्टी ब्राह्मणोंकी बैठैं । यदि पूर्वमुख ब्राह्मण बैठैं हों तो उनसे दक्षिण यजमान उत्तरमुख हो बैठे । और उत्तम प्रकार यह है कि, पत्नीसहित यजमान पूर्वमुख और उनके दक्षिणमें उत्तरमुख करके ब्राह्मण लोग बैठें । यजमान दोनों घोंटू भूमिमें गिराके खिलेहुये कमलवत् दोनों हाथ शिर पर करलेवे । ऊपर कहे अनुसार यह निश्चित् है कि, सभी शुभकर्मोंके आदिमें और विशेषकर उपनयन, विवाह, अवसथ्याधान और सोमयागादि महत्कर्म्मोंके प्रारम्भमें पहिलेही दिन, और छोटे कर्मोंमें उसीदिन "पञ्चाङ्गानुष्ठान" अर्थात समग्र शान्तिपाठ वा स्वस्तिवाचन मन्त्र पाठमात्रही १, गणपतिपूजन २, स्वस्तिपुण्याहवाचन ३, मातृकापूजनपूर्वक आयुष्यमन्त्रजप ४, नान्दीश्राद्ध ५ एवं औरभी जो आवश्यक कर्मोपयोगी कलशस्थापनादि कर्म हो उनको भी करे ॥

अथ स्वस्तिपुण्याहवाचनप्रयोगः ।

तत्र विवाहदिवसात् द्विदिनात्प्रागेव पूर्वदिने वा स्वे स्वे गृहे कन्यापिता वरपिता च सपत्नीकः संस्कार्यकन्यया पुत्रेण वा सहितः कृतमङ्गलस्नानः अहते शुद्धे वस्त्रे परिधाय धृतकुङ्कुमादि मङ्गलतिलकः यथायोग्यालंकृतः कृताचमनः स्वस्तिवाचनपूर्वकं मण्डपे समागच्छेत् ॥ स्वस्तिवाचनं ब्राह्मणाः कुर्य्युः । यथा— ॐ स्वस्ति न ऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु (य० अ० २५ मं० १९) ॥ १ ॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।

अथ पुण्याहवाचन प्रयोग-विवाह दिनसे दो दिन या एक दिन पहिलेही कन्यापिता और वरपिता अपने अपने गृहमें अपनी पत्नी और संस्कार्यपुत्र या कन्यासहित मङ्गलस्नान कर अहतवस्त्र और उपरना धारण किये कुंकुमादिका मंगल तिलक लगाय आचमन कर और स्त्री तथा संस्कार्य भीत यथायोग्य समलंकृतको साथमें लिये स्वस्तिवाचनपूर्वक मण्डपमें आवे । और आचार्यादि ब्राह्मण 'ओं स्वस्तिन इन्द्रो०' इत्यादि पाठ करें । मण्डपमें

---

१ दृषत्पेषणं कृत्वा तस्मिन्नेव दिने यदि पुण्याहवाचनं भवेत्, तदा तस्मिन् पुण्याहवाचनप्रयोगारम्भे यत् स्वस्तिवाचनं तथा गणेशादिस्थापनं पूजनञ्च लिखितम्, तस्य शिलापेषणारम्भ एव जातत्वात्पुनरकृत्वैवाऽग्रेलिखितपुण्याहवाचनार्थकलशस्थापनादारभ्यैव कर्म कुर्यात् । यदि शिलापेषणदिने न कृतश्चेत्तदा तु द्वितीयदिने स्वस्तिवाचनपूर्वकगणेशादिस्थापनपूजनादिकं विधाय सर्वं कर्म कुर्यादिति ॥

शिलपोहनाके दिनही यदि पुण्याहवाचन किया जाय तो पुण्याहवाचन प्रयोगके आरम्भमें यहां जो स्वास्तिवाचन तथा गणेशादिका स्थापन और पूजन लिखागया है, वोह शिलपोहनाकर्मके आरम्भमें आजही होचुका है; अतः यहाँ कर जो और आगे प्रयोगमें पुण्याहवाचनका कलशस्थापन लिखा है वहांसेही कर्मका आरम्भ करना चाहिये । और यदि किसी दूसरे दिन पुण्याहवाचनका कर्म आरम्भ हो तो स्वस्तिवाचनादि समस्तप्रयोगानुसार कर्म करना चाहिये ॥

अग्निर्जिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा ऽ अवसागमन्निह (य० अ० २५ मं० २०) ॥ २ ॥ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः (य० अ० २५ मं० २१) ॥ ३ ॥ शतमिन्नु शरदो ऽ अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मद्ध्या रीरिषतायुर्गन्तोः (य० अ० २५ मंत्र २२) ॥ ४ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा ऽ अदितिः पञ्चजना ऽ अदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् (य० अ० २५ मन्त्र २३) ॥ ५ ॥ दीर्घायुत्त्वाय बलाय वर्च्चसे । सुप्रजायत्वाय सहसा ऽ अथो जीव शरदः शतम् ॥ ६ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि (य० अ० ३६ मं० १७) ॥ ७ ॥ यतो यतः समीहसे ततो नो ऽ अभयङ्कुरु । शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः ॥ ८ ॥ (य० अ० ३६ मंत्र २२) ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ॥ इति ॥ तत्र मण्डपे —

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इति पठित्वा शुभासने प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणतः पत्नी

आसनके समीप आकर 'ॐ पृथ्वि त्वया०' मन्त्र पढ शुभासनपर पूर्वमुख बैठे और अपने उपरनाके कोणमें फल द्रव्याक्षतसहित स्त्रीके अञ्चलका

ग्रन्थिबन्धनयुतां तद्दक्षिणतः कन्यां पुत्रं वा उपवेश्य करद्वये पवित्रोपग्रहः । ॐ केशवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ माधवाय नमः इति आचम्य प्राणानायम्य कुशानीतजलैः- ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः । ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॥ इति मन्त्रेण कन्यया पुत्रेण वा सहितं पत्नीयुतमात्मानं पूजासंभारांश्च संप्रोक्ष्य हस्ते पुष्पाक्षतद्रव्याण्यादाय " ॐ सुमुखश्च " इत्यादि " जनार्दनाः " इत्यन्तं पठित्वा गणपतिस्मरणं कुर्यात् ॥ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । कुलदेवेभ्यो नमः । इष्टदेवेभ्यो नमः । ग्रामदेवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः । इति ॥ ततः कुशजलान्यादाय सङ्कल्पः—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भारतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे आर्यावर्तैकदेशे बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथं

ग्रन्थिबन्धन करायेहुये पत्नीको अपने दहिने और उसके दहिने संस्कार्यको आसन पर बैठाल अपने दोनों हाथमें पवित्रक धारण करलेवे । तव ' ॐ केशवाय० ' इत्यादिसे तीन आचमन करके हाथ धोय, प्राणायाम कर ' ॐ अपवित्रः० ' इत्यादि मन्त्रसे अपने और कन्या या पुत्रसहित पत्नी तथा संपूर्ण सामग्री पर कुशोंसे जल छिडकदेवे । फिर हाथमें द्रव्याक्षत पुष्प ले ' सुमुखश्चैक० ' इत्यादि–ब्राह्मणेभ्यो नमः पर्यंत कहकर पुनः हाथमें कुश जल ले ' ॐ विष्णु० ' इत्यादि संकल्पवाक्य पढ अमुकशब्दोंमें वर्त्तमान संवत्सरादिका

राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवंग्रहगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा (कन्यापिता) अस्या अमुकनाम्न्या देव्या मम कन्याया भर्त्रा सह धर्मप्रजोत्पादनगृह्यपरिग्रहधर्माचरणेष्वधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं परश्वः श्वः अद्य वा करिष्यमाणविवाहाख्यसंस्कारकर्म (इति कन्यापक्षे) (वरपिता तु) अस्य अमुकशर्म्मणो मम पुत्रस्य देवपितृऋणापाकरणधर्मप्रजोत्पादनसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं परश्वः श्वः अद्य वा करिष्यमाणविवाहाख्यकर्म (इति वरपक्षे) तथा तदङ्गतया विहितमादौ गणपतिपूजनस्वस्तिपुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धादिकञ्च कर्म यथायथाकालेऽहं करिष्ये ॥ इति । ततः पुण्य हवाचनाङ्गभूतं गणेशावाहनादिपूजनं कुर्यात् ।

यद्यपि गणपतिपूजनं गदाधरादिभिर्नोक्तं तथापि " आदौ विनायकः पूज्यः अन्ते तु कुलदेवता " इति संस्कारमयूखादौ गृह्यपरिशिष्टादिवचनाच्च तत्कर्त्तव्यमेवास्तिआस्तिकैः इति ॥

अथ षोडशोपचारैःपुण्याहवाचनाङ्गमहागणपतिपूजनम् ।

तत्रादौ दीपपूजनम्—यजमानः अक्षतपुञ्जोपरि प्रज्वलितघृत—

नाम और अपना गोत्र नाम पर्य्यन्त कह कन्यापिता 'अस्या मम कन्यायाः०' इत्यादि 'विवाह संस्कारकर्म०' पर्यन्त और वरपिता 'अस्य मम पुत्रस्य०' इत्यादि 'विवाहाख्यकर्म' पर्यन्त और दोनोंही 'तथा तदङ्गतया०' इत्यादि 'करिष्ये' पर्यन्त कह जल छोडदेवे। फिर पुण्याहवाचनाङ्गभूत महागणपतिका आवाहन पूजनादि करे। यद्यपि गदाधरादिने गणपतिपूजन नहीं कहा. तथापि सभी शुभकर्मोंमें पहिले विनायककी, पीछे कुलदेवताकी पूजा करना चाहिये। ऐसा संस्कारमयूखादि और गृह्यपरिशिष्टादिके वचनोंसे प्रमाणित है; अतः आस्तिकोंको अवश्यही करना चाहिये। इति ॥

पुण्याहवाचनाङ्ग महागणपतिपूजन—इस प्रकार करना कि, यजमान

१ गृह्यपरिग्रहं नाम अग्न्याधानम् गृहोपकरणादीनि वा ।

दीपं निधाय ॐ दीपाधिष्ठातृदेवाय नमः । इति गंधाक्षतपुष्पैः संपूज्य—

भो दीप त्वं ब्रह्मरूप अन्धकारनिवारक ।
इमां मया कृतां पूजां गृह्णन् तेजः प्रवर्द्धय ॥ इति प्रार्थयेत् ॥

ततः पर्णपुटकादावक्षतपुञ्जोपरि पूगीफलं निधाय तदुपरि महागणपतिं पूजयेत् ॥ हस्ते रक्ताक्षतपुष्पाण्यादाय ध्यानं कुर्यात्—

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरतरुविमले रत्नसिंहासनस्थम् ।
दोर्भिः पाशाङ्कुशेष्टाभयधृतिविशदं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहित श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । महागणपतिं ध्यायामि ॥ इति पुष्पादिकं समर्प्य पुनरक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत्—

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अम्बिकात्र्यम्बकात्मज ।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुःपितः ॥
नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज ।
भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थञ्च मम क्रतोः ।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां रक्ष च मे क्रतुम् ॥

अपने सामनेकी भूमिमें रक्ताक्षत पुंजपर जलता हुआ घृतदीप स्थापनकर 'ॐ दीपाधिष्ठातृ०' इस मूलके नाममन्त्रसे गन्ध, अक्षत और पुष्पसे दीपपूजन कर 'भो दीप०' इत्यादिसे प्रार्थना करदेवे । फिर किसी पात्र या पत्तोंके दोनेमें रक्ताक्षत पुञ्जपर एक बडी सुपारी रख उसपर महागणपतिका आवाहन करे । हाथमें रक्ताक्षत और पुष्पोंको ले 'श्वेताङ्गं०' इत्यादि 'ध्यायामि' पर्यन्त कह गणेशकी सुपारीपर पुष्पादि छोड देवे । फिर मूलके

ॐगणानान्त्वेति गृत्समद ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप् छन्दः। गणपत्यावाहने विनियोगः ॥ ॐ गणानान्त्वा गणपतिᳪ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिᳪ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिᳪ हवामहे व्वसो मम। आहमजानि गर्ब्भधमात्वमजासि गर्ब्भधम् ॥ (य० अ०२३ मं १९) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धि सहितमहागणपतये नमः महागणपतिमावाहयामि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः। इति मन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूजयेत्। यथा––

आसनम्–रम्य सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम्।
आसनञ्च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः। आसनं समर्पयामि ॥

पाद्यम्–उष्णोदकं निर्मलञ्च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम्।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः। पादयोः पाद्यं समर्पयामि ॥

अर्घ्यम्––ताम्रपात्रे स्थितं तोयं गन्धपुष्पफलान्वितम्।
सहिरण्यं ददाम्यर्घं गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः अर्घ्यं समर्पयामि ॥

आचमनीयम्––सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धि निर्म्मलं जलं।
आचम्यतां मया दत्तं प्रसीद परमेश्वर ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः आचमनीयं समर्पयामि ॥

पञ्चामृतस्नानम्—स्नानं पञ्चामृतैर्देव गृहाण परमेश्वर ।
अनाथनाथ सर्वज्ञ गीर्वाणप्रणत प्रभो ॥

ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपियन्तिसस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधासो देशेभवत्सरित् ॥ (य० अ० ३४ मंत्र ११) ॐ भूर्भुवः स्व सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ॥

शुद्धोदकस्नानम्—कावेरी नर्मदा वेणी तुङ्गभद्रा सरस्वती ।
गङ्गा च यमुनातोयं मया स्नानार्थमर्पितम् ॥

ॐ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽ आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्ण्णायामा ऽ अवलिप्तारौद्रानभोरूपाः पार्ज्जन्याः ॥ (य० अ० २४ मंत्र० ३) ॐ भूर्भुवः स्वः ॥ सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । स्नानान्ते आचमनं समर्पयामि ॥

वस्त्रे—सर्वभूषादिमे सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ युवा सुवासाः परिवीतऽ आगातसऽ उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवयऽ उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसादेवयन्तः ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः वस्त्रे समर्पयामि॥

यज्ञोपवीतम्—नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ यज्ञोपवीतम्परमम्पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजम्पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतम्बलमस्तु तेजः ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । यज्ञोपवीतं

समर्पयामि ॥ यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

चन्दनम्--श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं केशरादिसमन्वितम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टाङ्करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥
ॐ भूर्भुवः स्वःसिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः। गन्धं समर्पयामि॥

अक्षतान्--अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रिया ऽ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रानविष्ठयामतीयोजान्विन्द्र ते हरी ॥ (य० अ० ३ मंत्र ५१) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । अक्षतान् समर्पयामि ॥

पुष्पमाल्यादीनि--सुमाल्यानि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । पुष्पाणि पुष्पमालाश्च समर्पयामि ।

दूर्वाङ्कुरान्--दूर्वाङ्कुरान्सुहरितानमृतान्मंगलप्रदाम् ।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक ॥

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषःपरुषस्प्परि । एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ (य० अ० १३ मंत्र २०) ॐ भूर्भुवः

संस्कृतमें लिखे अनुसार श्रद्धासे विधिपूर्वक महागणपतिका षोडशोपचार पूजन अर्थात् आवाहन, आसन, पाद्य अर्घ्य, आचमनीय, पञ्चामृतस्नान, शुद्धोदक-स्नान, स्नानान्तआचमन, वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन, अक्षत, पुष्पमाला, दूर्वा,

स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । दूर्वाङ्कुरान्समर्पयामि।
नानापरिमलद्रव्याणि—हरिद्रा कुङ्कुमञ्चैव सिन्दूरादिसमन्वितम्।
सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि ॥

धूपम्—वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ धूरसि धूर्व्व धूर्व्वन्तन्धूर्व्वतं य्योस्मान्धूर्व्वति तन्धूर्व्वयं व्वयन्धूर्व्वामः। देवानामसि व्वह्नितमᳬ सस्निंतमम्पप्रितमञ्जुष्टतमन्देवहूतमम् ॥ (य० अ० १ मंत्र ८) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः धूपमाघ्रापयामि ॥

दीपम्—साज्यञ्च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥

ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥ अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा ॥ (य० अ० ३ मंत्र ९) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः। दीपं दर्शयामि ॥ हस्तौ प्रक्षाल्य—

नैवेद्यम्—शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम्।
उपहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षᳬ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत । पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन् ॥ (य० अ० ३१ मंत्र १३) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः नैवेद्यं नानापरिमल, (अंतर, गुलाब, आदि) द्रव्य, धूप, आरती करनेका हाथ धोकर

निवेदयामि । मध्ये पानीयं समर्पयामि । उत्तरापोशनं समर्पयामि । हस्तप्रक्षालनं समर्पयामि । मुखप्रक्षालनं समर्पयामि ।

करोद्वर्तनचन्दनादिद्रव्यम्- ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । चन्दनादिना करोद्वर्तनं समर्पयामि ।

ताम्बूलं पूगीफलञ्च-पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
खदिरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । ताम्बूलं पूगीफ ञ्च समर्पयामि ॥

दक्षिणाम्—हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं ऽआसीत् । सदाधारपृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मैदेवायहविषाविधेम ॥ (य० अ० १३ मंत्र ४ । अ० २३ मंत्र १ । अ० २५ मंत्र १०) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः दक्षिणां समर्पयामि ॥

नारिकेलादिफलम्—इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

ॐ याः फलिनीर्याऽ अफलाऽ अपुष्पायाश्चपुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्तानोमुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ (य० अ० १२ मंत्र ८९)

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः फलं समर्पयामि ।

कर्पूरनीराजनम्—कदलीगर्भसंभूतकर्पूरञ्च प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥

नैवेद्य, पानीय, उत्तरापोशन, हस्तप्रक्षालन, मुखप्रक्षालन, चन्दनसे करोद्वर्तन,

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ॥

पुष्पाञ्जलिम्-नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्म्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् । ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥ (य० अ० ३१ मंत्र १६) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥

विशेषार्घ्यम्--ताम्रपात्रे गन्धाक्षतपुष्पफलद्रव्यजलान्यादाय--

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक ।
भक्तानामभयङ्कर्त्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो ।
वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ।
अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । विशेषार्घ्यं समर्पयामि । ततः प्रार्थना---

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥ १ ॥
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।

ताम्बूल, पूगीफल दक्षिणा नारिकेलादि फल, कर्पूरनीराजन, पुष्पाञ्जलि और

विद्याधराय विकटाय च वामनाय
भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥ २ ॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ॥ ३ ॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥ ४ ॥
लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ ५ ॥

इति प्रार्थ्य हस्ते जलं गृहीत्वा--अनया पूजया सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतिः साङ्गः सपरिवारः प्रीयतां न मम । इति जलमुत्सृजेत् । इति गणेशपूजनं विधाय ततः पुण्याहवाचनकलशस्थापनं कुर्यात् ॥ पुण्याहवाचने यथावकाशः सुवर्णरजतताम्रधातुमय एव तदभावे मृण्मयो वाऽव्रणः शुद्धः कलशो ग्राह्यः । पूर्वाभिमुखस्तथैवोपविष्टो यजमानः स्वपुरतः शुद्धायां भूमौ पञ्चवर्णैस्तण्डुलैर्वाऽष्टदलकरणम् । तदुपरि गन्धाक्षतपुष्पाणि गृहीत्वा ॐ भूम्यै नमः भूमिं पूजयामि । इति गन्धादिकं प्रक्षिप्य भूमिस्पर्शनं कुर्यात् । तत्रमन्त्रः--ॐ महीद्यौः पृथिवीचनऽइमं यज्ञम्मिमिक्षताम् पिपृतान्नोभरीमभिः(य.अ.८.मं३२.अ. १३

विशेषार्घ्य पर्यन्त समर्पण कर तब 'विघ्नेश्वराय०' आदि ५ श्लोकोंसे प्रार्थना कर हाथमें जल ले'अनया०'इत्यादि कह जल छोड देवै।इस प्रकार महागणपतिका पूजन कर पुण्याहवाचनका कलश स्थापन करे ॥ यह कलश सोना, चांदि या तांबा यथाशक्ति धातुकाही होना चाहिये । धातुके नहीं होनेसे मृत्तिकाहीका हो किन्तु शुद्ध होना चाहिये, टूटा फूटा नहीं ग्रहण करना । पूर्वमुख बैठाहुआ यजमान अपने सामने भूमिपर कलश रखनेके लिये अनेक रङ्गोंसे बनेहुये अष्टदलपर 'ॐभूम्यै०' इस मन्त्रद्वारा गन्धादिसे पूजन कर उसी पृथ्वीको दहिने हाथके अनामिका अंगुलीसे स्पर्शकर 'ॐ महीद्यौ०'

मं. ३२) तत्रैव धान्यमसीति सप्तधान्यम् यवान् वा स्थापयेत्-ॐ धान्न्यमसि धिनुहिदेवान्प्राणायत्वोदानायत्वाव्व्यानायत्वा। दीर्घामनुप्प्रसितिमायुषेधान्देवोवःसविताहिरण्यपाणिः प्रतिगृब्भ्णात्वाच्छिद्रेण पाणिनाचक्षुषेत्वामहीनाम्पयोसि ॥ (य० अ० १ मंत्र २०) धान्योपरि आजिघ्रकलशमिति पूर्वोक्तधातुजं मृण्मयं वा कलशं स्थापयेत्। ॐ आजिग्घ्रकलशम्मह्यात्वाविशन्त्विन्दवः। पुनरूर्ज्जानिवर्तस्वसानःसहस्रन्धुक्ष्वोरुधारापयस्वतीपुनम्र्माविशताद्द्रयिः ॥ (य० अ० ८ मंत्र ४२) कलशे वरुणस्योत्तम्भनमिति पवित्रजलं पूरयेत्। ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसिव्वरुणस्यस्कम्भसर्ज्जनीस्त्थोव्वरुणस्यऽऋतसदन्न्यसिव्वरुणस्यऽऋतसदनमसिव्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥ (य० अ० ४ मं० ३६) गन्धद्वारेति कलशे गन्धप्रक्षेपणमुपरि लेपनञ्च कुर्यात्। ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ या ओषधीरिति सर्वौषधीः क्षिपेत्। ॐ याऽओषधीः

मन्त्र पढे। उसी स्थानपर सप्तधान्य या चावलोंकी ढेरी करे 'ॐधान्यमसि०' मन्त्रसे अन्नपर कलश धरे 'ॐ आजिघ्र कलशं०' मन्त्रसे कलशमें पवित्र जल छोडे 'ॐ वरुणस्योत्तं०' मन्त्रसे कलशपर कुंकुमादिका लेपन और कलशके भीतर गन्ध छोडे। 'ॐ गन्धद्वारां०' मन्त्रसे औरभी आगे कही

---

१ यवगोधूमधान्यानि तिलाः कंगुश्च मुद्गकाः। श्यामाकाश्चणकाश्चैव सप्त धान्यमुदाहृतम् ॥ भावार्थ-जौ, गेहूं, तिल, ककुनी, मूंग, श्यामाक सांवा और चना ये सप्तधान्य कहते हैं ॥ २ कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुराशैलेयचन्दनम्। वचा चम्पकमुस्ता च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ॥ भावार्थ-कूठ, जटामांसी, हरदी, दारुहरदी-मुर्रा शिलाजीत, चन्दन, वच, चम्पक और नागरमोथा ये दश सर्वौषधी कहाती हैं ॥

पूर्व्वाजातादेवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा। मनैनुबभ्रूणामहꣳशतन्धामानिसप्तचं॥ (य० अ० १२ मं० ७५) काण्डात्काण्डादिति दूर्वाः क्षिपेत्। ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती। परुषःपरुषस्परि। एवानोदूर्वेप्प्रतनुसहस्रेणशतेनच॥ (य० अ० १३ मंत्र २०) अश्वत्थेव इति पञ्चपल्लवानाम्रपल्लवं वा। ॐ अश्वत्थेवोनिषदनम्पर्णेवोव्वसतिष्कृता। गोभाजऽइत्किलासथयत्सनवथपूरुषम्॥ (य० अ० १२ मं० ७९) पवित्रेस्थ इति कलशे कुशान् क्षिपेत्। ॐ पवित्रेस्थोव्वैष्णव्व्यौसवितुर्व्वःप्प्रसवऽउत्पुनाम्म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्यरश्मिभिः॥ तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्ययत्कामःपुनेतच्छकेयम्॥ (य० अ० १ मंत्र १२) स्योनापृथिवीति सप्तमृदः क्षिपेत्॥ ॐ स्योनापृथिविनोभवानृक्षरानिवेशनी। यच्छानःशर्म्मसप्प्रथाः॥ (य० अ० ३५मं०२१।अ०३६ मं०१३) याः फलिनीरिति फलं क्षिपेत्। ॐ याःफलिनीर्य्याऽअफलाऽअपुष्पायाश्चपुष्पिणीः॥ बृहस्पतिप्प्रसूतास्तानोमुञ्चन्त्वꣳहसः॥ (य० अ०

हुई वस्तुओंको कलशमें छोडे जैसे सर्वौषधी ' ॐ या औषधीः० ' मन्त्रसे, दूर्वा ' ॐ काण्डात्काण्डात् ' मन्त्रसे, पञ्चपल्लव या आम्रपल्लव ' ॐ अश्वत्थेव० ' मन्त्रसे, कुशा ' ॐ पवित्रेस्थो० ' मन्त्रसे, सप्तमृत्तिका ' ॐ स्योनापृथिवि० ' मन्त्रसे, सुपारी या और कोई फल ' ॐ फलिनी० '

१ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः। पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः। भावार्थ-पीपल, गूलर, पाकर, आम और वट इन पांचोंके पत्ते पञ्चपलव कहाते है॥

२ अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात्। राजद्वाराद्गोकुलाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्॥ भावार्थ–अश्वस्थान, गजस्थान, विमडर (बिल) नदीका सङ्गम या चतुष्पथ, गहिरा जलाशय, राजद्वार गोशाला इन ७ स्थानोंकी ग्रहण की हुई मट्टी सप्तमृत्तिका कहाती है।

१२ मंत्र० ८९) परिवाजपतिरिति पञ्चरत्नानि ॥ ॐ परिवाजपतिᳪकविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानिदाशुषे ॥ (य० अ० ११ मंत्र० २२) हिरण्यगर्भेति हिरण्यम् । ॐ हिरण्यगर्भᳪसमवर्त्तताग्रेभूतस्यजातᳪपतिरेकऽआसीत् । सदाधारपृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मैदेवायहविषाविधेम ॥ (य० अ० १३ मंत्र० ४) युवा सुवासा इति कलशे रक्तवस्त्रं कण्ठे रक्तसूत्रञ्च वेष्टयेत् । ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः । तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ पूर्णादर्वीति तण्डुलपूर्णपात्रमुपरि न्यसेत् । ॐ पूर्णादर्विपरापतसुपूर्ण्णापुनरापत । वस्नेवविक्रीणावहाऽइषमूर्ज्जᳪशतक्रतो ॥ (य० अ० ३ मन्त्र० ४९) श्रीश्च इति पूर्णपात्रोपरि नारिकेलफलं पूगीफलं वा न्यसेत् । ॐ श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रेपार्श्वेनक्षत्राणिरूपमश्विनौव्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाणसर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥ (य० अ० ३१ मंत्र २२) अग्निर्ज्योतिरिति कलश समीपोत्तरभूभागेऽक्षतपुञ्जोपरि घृतदीपं स्थापयेत् ॥ ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निᳪस्वाहा-

मन्त्रसे, पञ्चरत्न 'ओंपरिवाजपतिः०' मन्त्रसे, सुवर्ण 'ओंहिरण्यगर्भ०' मन्त्रसे डाले, यदि सोनेका कलश हो तो सुवर्ण नहीं डालै । कलशके गलेमें लाल या पीला वस्त्र अथवा सूत्र लपेटै 'आयुवासुवासा०' मन्त्रसे । फिर श्वेतचावलोंसे भरा पात्र कलशके मुखपर रखै 'ओं पूर्णा दर्वि०' मन्त्रसे । पूर्ण पात्रपर नारिकेल फल या सुपारी धरे 'श्रीश्चते' मन्त्रसे । और कलशके

---

१ कनकं कुलिशं नील पद्मरागञ्च मौक्तिकम् । एतानि पञ्चरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदु ॥ अथवा–वज्रमाणिक्यवैदूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम् पञ्चरत्नमति ख्यातं नारदेन महर्षिणा ॥ भाषार्थ सुवर्ण, हीरा, नील, पद्मराग और मोती ये पञ्चरत्न कहाते हैं ॥ अथवा–हीरा, मणिक्य, मूंगा, पोखराज, और नीलम् ये पञ्चरत्न नारदके मतसे कहाते हैं ॥

सूर्य्योज्ज्योतिज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चोज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्योव्वर्च्चोज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा। ज्ज्योति ः सूर्य्यः सूर्य्योज्ज्योतिः स्वाहा॥ (य० अ० ३ मंत्र० ९) तत्त्वायामीति कलशे वरुणमावाहयेत्। ॐ तत्त्वायामिब्ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्तेयजमानोहविर्भिः। अहेडमानोव्वरुणेहबोद्ध्युरुशꣳसमानऽआयुः प्रमोषीः॥ (य० अ० १८ मं० ४९। अ० २१ मन्त्र २) ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टंय्यज्ञꣳसमिमन्दधातु। विश्श्वेदेवासऽइहमादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥ (य० अ० २ मन्त्र० १३) ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणं साङ्गं सपरिवारं आवाहयामि कलशे प्रतिष्ठापयामि॥ ततः ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय साङ्गाय सपरिवाराय अपांपतये नमः॥ इति मन्त्रेण गन्धादिसर्वोपचारैः संपूज्य अनामिकाग्रेण कलशं संस्पृश्याऽभिमन्त्रयेत्—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥
कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥

समीपही उत्तर भूमिपर अक्षत पुञ्ज धरके उसी पर जलताहुआ घृतदीप रखे 'ओं अग्निज्योतिः०' मन्त्रसे। फिर हाथमें अक्षत ले 'ओं तत्त्वायामि०' से प्रतिष्ठापयामि' पर्य्यन्त मन्त्र और वाक्य पढ कलशपर अक्षत छोड वरुणका आवाहन करे। फिर 'भूर्भुवः०' आदि मन्त्रसे गन्धादि सामग्रियों द्वारा वरुणका पूजन कर, दहिने हाथकी अनामिका अंगुलीसे कलशको स्पर्श किये

अङ्गैश्च सहिताः सर्व्वे कलशन्तु समाश्रिताः ।
गायत्री चैव सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥ इति ॥

ततः कलशं प्रार्थयेत्—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमं कर्म कर्त्तुमीहे जलोद्भव ।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्व्वदा ॥
नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥
पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनीजीवनायक ।
पुण्याहवाचनं यावत्तावत्त्वं संन्निधौ भव ॥ इति ॥

ततः पुण्याहवाचकब्राह्मणानां पूजनम् । तत्र यजमानः प्रशस्तान् प्रतिवचनसमर्थान् शुचीन् दर्भपवित्रपाणीन् ब्राह्मणान् आसनेषु हुये 'ओं गङ्गे च०' इत्यादि 'दुरितक्षयकारकाः' पर्य्यन्त पढ गङ्गादिका अभिमन्त्रण करे और कलशकी प्रार्थना 'ओं देवदानव०' इत्यादिसे 'सन्निधौ भव' पर्यन्त कहकर पूरा करे ऐसा कलश स्थापन कर फिर पुण्या हवाचक ब्राह्मणोंकी पूजा इस प्रकार करे कि—यजमानके दहिने तरफ आसनोंपर उत्तरमुख बैठे और हाथोंमें कुशा और पवित्री धारण किये, यजमानके

उपवेश्य तान् गन्धपुष्पादिभिः ॐ ब्राह्मणेभ्यो नमः । इति मन्त्रेणाभ्यर्च्य पुण्याहं वाचयेत् । तद्यथा—यजमानः अवनिकृतजानुमण्डलः कमलमुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधाय पुरोहितः दक्षिणेन पाणिना स्वर्णपूर्णकलशं यजमानाञ्जलौ निदध्यात् । ततो यजमानः—ॐ दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च । ॐ त्रीणिंपदाविचंक्रमेविष्णुर्गोपाऽअदाभ्यः । अतोधर्म्माणि धारयन् ॥ (य०अ० ३४ मं०४३)

तेनायुः प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ ब्राह्मणाः ॐ पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु । इति ब्रूयुः । ततः कलशं भूमौ निधाय पुनरप्येवम् अवनिकृतेत्यादि दीर्घमायुरस्त्विति ब्राह्मणप्रतिवचनपर्यन्तं द्विवारं कृत्वा कलशं यथास्थाने विदध्यात् ॥ पुनर्यजमानः ब्राह्मणानां हस्ते सुप्रोक्षितमस्तु । इति जलं सिक्त्वा ॐ

वचनोंका उत्तर देनेमें समर्थ पवित्र ब्राह्मणोंका गन्ध और पुष्पमालादिसे ' ॐ ब्राह्मणाय नमः ' मन्त्र द्वारा पूजन करके ' यजमान पुण्याहवाचन करे । सो इस प्रकार कि, यजमान अपने दोनों घोंटू पृथ्वीपर रख वीरासन बैठ दोनों हाथकी अंजली खिले कमलके समान बनाय अपने शिरपर लगा लेवें, तब इस अञ्जलीपर आचार्य या पुरोहित सुवर्णयुक्त पुण्याहवाचनकलशको अपने दहिने हाथसे रखदेवे, यजमान अपने अंजलीपर कलशधारण कियेहुये ' ॐ दीर्घानागा० ' से ' भवन्तो ब्रुवन्तु ' पर्यन्त कह भाषामेंभी ब्राह्मणोंसे कहे कि वहुत पुण्यका दिन और दीर्घायु होवे ऐसा आपलोग कहें । तब ब्राह्मणलोग भी उत्तरमें ' ॐ पुण्याहं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु वहुत पुण्यका दिन और दीर्घायु होवे ऐसा कह देवे । फिर अंजलीसे कलशको भूमिपर धर और पूर्ववत्‌ही बैठेहुये यजमानके शिरसे लगी अंजलीमें कलश रखनसे आरम्भकर ब्राह्मणके प्रतिवचन पर्यन्त कर्मको दो वार और करदेना अर्थात् कुल तीनबार कर कलशको पूजा स्थानमें रखदेवे । पुनः यजमान ब्राह्मणोंके हाथमें सुप्रो०'

शिवा आपः सन्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । इति ब्रूयात् ॥ ततः ब्राह्मणाः-- सन्तु शिवा आपः । इति ब्रूयुः (एवं यजमानवचनोत्तरप्रतिवचनं सर्वत्र ब्राह्मणाः दद्युः ।) पुनर्यजमानः ब्राह्मणानां हस्ते पुष्पाणि दत्त्वा ॐ सौमनस्यमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः--अस्तु सौमनस्यम् ॥ यजमानः अक्षतान् दत्त्वा अक्षतञ्चास्तु मे पुण्यं दीर्घमायुर्यशोबलम् । यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम ॥ अक्षतं चारिष्टञ्चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः--अस्त्वक्षतमरिष्टं च ॥ यजमानः गन्धं दत्त्वा ॐ गन्धाः पान्तु सौमङ्गल्यं चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः-ॐ त्र्यम्बकं यजामहे । सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् (य० अ० ३ मं ६०) ॐ पान्तु गन्धाः अस्तु

वाक्य कह जलसेचन करे, और 'शिवा०' से 'ब्रुवन्तु' पर्यन्त कहै, और इसका प्रतिवचन ब्राह्मण लोग भी 'सन्तु०' आदि वाक्य कह देवें । ऐसेही आगेभी सर्वत्र 'ब्रुवन्तु०' पर्यन्त यजमानके कहनेपर, यजमानके तुल्य प्रतिवचनोंको ब्राह्मण कहदियाकरें । सर्वसाधारणोंको जाननेके लिये संस्कृतमें कहे वचन एवम् प्रतिवचनोंका भाषार्थ भी टिप्पणीमें लिखदियाहै । यजमान ब्राह्मणोंके हाथमें पुष्पोंको छोड 'ॐ सौमनस्य०' आदि कहै, ब्राह्मण 'अस्तु' आदि कहैं अक्षतोंको छोड यज० 'अक्षतञ्चास्तु मे०' आदि कहै, ब्राह्मण 'अस्त्वक्षत०' आदि कह देवें । गन्ध छोड यज० 'ॐ गन्धाः' आदि कहै, ब्राह्मण 'ॐ त्र्यम्बकं०' आदि आशीर्वादका मन्त्र और 'ॐ पान्तु०'

---

१ यज–जल मङ्गलकारी हों, ब्राह्मण–होवे मङ्गलकारी जल । २ यज–मन प्रसन्न हो, ब्राह्मण–होवें मन प्रसन्न ३ यज–मेरा पुण्य अक्षय हो, आयु और बल बढै, लोकमें जो जो कल्याणकारी कर्म वे सब मेरे घरमें सदा होते रहें और अक्षय पुण्य हो, हानि नहीं हो, ब्राह्मण–होता रहै सदा ऐसाही । ४ यज–सुगन्ध मेरी रक्षा करैं, मृत्युसे बचावें, सुन्दर मङ्गल हो, ब्राह्मण 'त्र्यम्बकं०' आदि मन्त्र पडके कहैं, सुगन्ध तुम्हारी रक्षा करैं, सुन्दर मङ्गलहों ।

सौमङ्गल्यं च ॥ यजमानः पुनरक्षतान्दत्त्वा ॐ अक्षताः पान्तु आयुष्य-मस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः--ॐ पान्तु अक्षताःअस्तु आयु-ष्यम् ॥ यजमानः पुनः पुष्पाणि दत्त्वा ॐ पुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः--ॐ पान्तु पुष्पाणि अस्तु सौश्रियम् ॥ यजमानः ताम्बूलानि दत्त्वा ॐ ताम्बूलानि पान्तु ऐश्वर्यमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः--ॐ पान्तु ताम्बूलानि अस्तु ऐश्वर्यम् ॥ यजमानः दक्षिणां दत्त्वा ॐ दक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः -ॐ पान्तु दक्षिणाः अस्तु बहुदेयम् ॥ इति ॥ ततो यजमानः ब्राह्मणान्प्रणम्य ब्रूयात् । ॐ श्रेयश्शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं चायुष्यञ्चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । ततो ब्राह्मणाःअस्तु श्रेयश्शान्तिःपुष्टिस्तुष्टिःश्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं चायुष्यञ्चाइतिवदेयुः॥पुनर्यजमानो ब्रूयात्।यं कृत्वासर्ववेदयज्ञक्रियाकरण आदि कह देवें । फिर दो वारा अक्षतोंको देकर यज० 'ॐ अक्षता०' आदि कहै । ब्राह्म० 'ओंपान्तु०' आदि कह देवै । दुबारा पुष्पोंको भी देकर यज० 'ॐ पुष्पाणि पा०' आदि कहै । ब्राह्म० 'ॐ पान्तुपु०' आदि कहदेवें । ताम्बू-लोंको देकर यज० 'ॐ ताम्बूला०' आदि कहै ब्राह्म० 'पान्तुतां' आदि कह-देवें । दक्षिणा हाथोंमें देकर यजमा० 'ॐ दक्षिणा०' आदि कहै, ब्राह्म० 'ॐ पान्तुद०' आदि कहदेवें ॥ फिर यजमान ब्राह्मणोंको हाथ जोडे हुये 'ॐश्रेयं:०' आदि कहै, ब्राह्म० 'श्रेयश्शान्तिः०' आदिकहदेवें । यजमान 'यं कृत्वा०' से

१ यज-'अक्षताः' अर्थात् कुछभी त्रुटि नहीं हो, जिनमें साङ्गोपाङ्ग विद्यमान ऐसे जो समस्त प्राणधारी अथवा विना प्राणवाले वे सभी रक्षा करैं आयु बडी हो । ब्राह्म० यह सत्यही हो । २ यज-पुष्प रक्षा करै अच्छी शोभा हो । ब्रा०ऐसाही हो । ३ यज-ताम्बूल रक्षा करैं, ऐश्वर्य हो, ब्रा० ऐसाही हो । ४ यज-दक्षिणा रक्षा करैं, दान देनेके लिये धनादि बहुत हों । ब्रा० दक्षिणा तुम्हारी रक्षा करै, और दान देनेके लिये धनादि होवै । ५ कल्याण, शान्ति, पुष्टि, सन्तोष, शोभा कीर्ति विद्या, नम्रता, धन बहुत पुत्र और बहुत आयु हो । ब्रा० श्रेय आदि यह सते सत्य हों । ६ यज-जिसको लेकर सबवेद, सब यज्ञ,और सर्वकर्मोके आरम्भ सुन्दर शुभकर्म निर्विघ्न होते हैं मैं उस आकारको आदि मानकर ऋग् यजुः, साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी बहुत ऋषियोंके सम्मत प्रसिद्ध पुण्याहको आपलोगोंकी आज्ञासे कहलाऊंगा । ब्रा० कहलाइये ।

कर्मारंभाः शुभाः शोभनाः प्रवर्त्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुः सामाथर्वाशीर्वचनं बहुऋषिसंमतं स्थिरैः समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये। विप्राः—ॐ वाच्यताम् इति वदेयुः। ततो यजमानो ब्राह्मणानां हस्तेऽक्षतान् दद्यात्। ते चाक्षतान् प्रतिमन्त्रान्ते सपत्नीकयजमानोपरि क्षिपन्तः भद्रमित्याद्याशिषो मन्त्रान् वदेयुः। तत्र मन्त्राः ॐ—भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयामदेवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितंयदायुः (य० अ० २५ मं० २१) ॥ १ ॥ देवानाम्भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवानाᳬंरातिरभिनो निवर्त्तताम्। देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयन्देवान ऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे (य० अ० २५ मं० १५) ॥ २ ॥ नतद्रक्षाᳬंसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजᳬं ह्येतत्। यो बिभर्त्ति दाक्षायणᳬं हिरण्यᳬं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः (य० अ० ३४ मंत्र ५१) ॥ ३ ॥ दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्। अथो त्वन्दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् (य० अ० १२ मंत्र १००) ॥ ४ ॥ ॐ द्रविणोदाद्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्रयᳬं सत्। द्रविणोदा वीरवतीमिषन्नो द्रविणोदा रसते दीर्घमायुः ॥ ५ ॥ ॐ सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतु

'वाचयिष्ये' पर्यन्त कहै, और ब्रा० 'ॐ वाच्यताम्' कहदेवे॥ पुनः यजमान ब्राह्मणोंके हाथमें अक्षत या धानका लावा अथवा विनाकुटे जौ दे देवे, और ब्राह्मणलोग 'ॐ भद्रं०' इत्यादि आशीर्वादके मन्त्र तक कहते हुये हर एक मन्त्रके अन्तमें सपत्नीक यजमानपर अक्षत या लावा आदि जो उनके

सर्व्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥ ६ ॥ नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे । भागं देवेभ्यो विदधात्यायं प्रचन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः ॥ ७ ॥ ॐ उच्चादिवि दक्षिणावन्तोऽअस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण । हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोमप्रतिरन्त आयुः ॥ ८ ॥ आप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चसे । यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानो मर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ॥ ९ ॥ जातवेदो यशोऽअस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याः । यस्मै त्व सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ॥ १० ॥ अश्विनं सपुत्रिणं वीरवन्तं रयिन्नुशते स्वस्ति ॥ ११ ॥ इत्याशीर्वादः ॥ ततो यजमानो ब्रूयात्—व्रतजपनियमतपःस्वाध्यायक्रतुशमदमदयादानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम् ॥ विप्राः समाहितमनसः स्मः । यजमानः—प्रसीदन्तु भवन्तः । विप्र :—प्रसन्नाः स्मः इति ब्रूयुः । पुनर्यजमानो ब्रूयात् मम गृहे ॐ शान्तिरस्तु । अस्तु इति प्रतिवचनं सर्वत्र विप्राः दद्युः । अथवाऽन्ते एकैव । ॐ पुष्टिरस्तु २ । ॐ तुष्टिरस्तु ३ । ॐ वृद्धिरस्तु । ४ ॐ अविघ्नमस्तु ५ । ॐ आयुष्यमस्तु ६ । हाथमें दिया हो छिडक देवें । फिर यजमान ' व्रत० ' इत्यादि 'समाधीयतां' पर्यन्त कहै । ब्रा० ' समा० ' से ' स्मः ' तक कहदेवें ॥ यजमान 'प्रसीदन्तु०' आदि कहै । ब्रा० 'प्र ' से ' स्म ' पर्यन्त कह देवैं । फिर यजमान 'मम गृहे' एकवार कहकर फिर 'ॐ' आदिमें और 'अस्तु' अन्तमें ऐसेही 'ॐशान्तिस्तु' आदि १से१६ पर्य्यन्त कहै और ब्रा० हरएक अस्तुके अन्तमें 'अस्तु' ऐसाही

१ य०—व्रत, जप, नियम, तप, यज्ञ, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह, दया, दान करनेवाले, वेदाध्यायी, आप सब ब्राह्मणोंके मन एकाग्र हों । ब्रा० " हमारा मन सावधान है ॥ ऐसा सब कहें ॥ २—यज—आपलोग मुझपर प्रसन्न हो । ब्रा० प्रसन्न हैं—ऐसा सब कहें । ३यज० मेरे घरमें शान्ति हो १, पुष्टि हो २, सन्तोष हो वृद्धि हो ४, विघ्न नहीं हो ५, दीर्घायु हो ६, नीरोगता हो ,मङ्गल हो ८, कल्याणकारी कर्म हो९, कर्म वेद शास्त्र, धन, और पुत्रपौत्रकी समृद्धि हो १०, इष्ट सम्पत्ति हो मं१ अरिष्टकी निवृत्ति हो १२, पाप, रोग, अशुभ और अकल्याण दूरही नष्ट हो ३, श्रेय प्राप्त हो—

ॐ आरोग्यमस्तु ७ । ॐ शिवमस्तु ८ । ॐ शिवं कर्मास्तु ९ । ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु १० । ॐ वेदसमृद्धिरस्तु । ॐ शास्त्रसमृद्धिरस्तु । ॐ धनधान्यसमृद्धिरस्तु । ॐ पुत्रपौत्रसमृद्धिरस्तु । ॐ इष्टसंपदस्तु ११ । ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु १२ । ॐ यत्पापंरोगं अशुभं अकल्याणं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु १३ । ॐ यच्छ्रेयस्तदस्तु १४ । ॐ उत्तरे कर्मणि निर्विघ्नमस्तु १५ । ॐ उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु १६ । विप्राः–इत्युक्ता आशिषः सन्तु । इति एकदैव वदेयुः । पुनर्यजमानो ब्रूयात् ॐ । उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः संपद्यन्ताम् । विप्राः–सम्पद्यन्ताम् इति वदेयुः । पुनर्यजमानो ब्रूयात्–ॐ तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रग्रहलग्नसंपदस्तु । विप्राः–अस्तु संपत् इति वदेयुः । इति ॥ अथोदकस्रावः–तं केचित् कलशजलेन अन्यजलेन वा कुर्वन्ति । कलशजलेनैवाऽत्रप्रयोगो लिखितः । तत्र यजमानः स्वपुरतः दक्षिणोत्तरे द्वे मृत्पात्रे भूमौ निधाय द्वाभ्यां कराभ्यां कलशमुत्थाप्य कलशेनैव किञ्चित्किञ्चित् जलम् उत्तर-

कहते जावें, अथवा १६ के अन्तमें ' इत्युक्ता आशिषः सन्तु ' ऐसा एकहीवार कहदेवें । फिर यजमान ' ॐ उत्तरोत्तरा ' से ' संपद्यन्ताम् ' पर्यन्त कहें । ब्राह्म० ' संपद्यन्ताम् ' कहदेवें । यजमान० ' ॐ तिथिकरण० ' से ' संपदस्तु ' पर्यन्त कहे । ब्राह्मण ' अस्तु संपत् ' कहदेवें । इसके बाद " उदकस्राव " करना चाहिये; इसको कोई पुण्याहवाचन कलशके जलको गिरातेहुये अथवा अन्य जलको गिराकर करते हैं । यहां कलश जलसेही प्रयोग लिखा है, जो इस प्रकार है कि, यजमान अपने आगेकी भूमिपर एक पात्र धर उसके कुछ दक्षिण हटाकर दूसरा मृत्पात्र धर देवे । तब दोनों हाथोंमें

–१४, भावीकर्ममें विघ्न नहीं हो १५, आगे २ दिन २ हर तरसे बढती हो १६ । ब्रा० हर एक " हो " के पीछे " हो " ऐसाही कहते जावें अथवा सबके अन्तमेंही " आपके कहे अनुसार सभी होवें " ऐसा कहदेवें ।

१ यज–आगेकी क्रिया उत्तरोत्तर मङ्गलरूपा सुन्दरी होवैं । ब्रा० सम्यक् होवै । २ यज–तिथि, करण, नक्षत्र, ग्रह और लग्नकी संपत्ति हो । ब्रा० संपत् होवै ।

पात्रे वक्ष्यमाणमन्त्रैः स्रावयेत्। मन्त्राः—ॐ तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रहलग्नाधिदेवताः प्रीयन्ताम्। ॐ तिथिकरणे समुहूर्त्ते सनक्षत्रे सग्रहे साधिदेवते प्रीयेताम्। ॐ दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेताम्। ॐ अग्निपुरोगा विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्। ॐ इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्ताम्। ॐ शचीपुरोगा देवपत्न्यः प्रीयन्ताम्। ॐ माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्रीयन्ताम्। ॐ वशिष्ठपुरोगाः ऋषिगणाः प्रीयन्ताम्। ॐ अरुन्धतीपुरोगाः पतिव्रताः प्रीयन्ताम्। ॐ विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम्। ॐ ब्रह्मपुरोगाः सर्वे वेदाः प्रीयन्ताम्। ॐ ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम्। ॐ श्रीसरस्वत्यौ प्रीयेताम्। ॐ श्रद्धामेधे प्रीयेताम् ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयताम्। ॐ भगवती माहेश्वरी प्रीयताम्। ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवती सिद्धिकारी प्रीयताम्। ॐ भगवती वृद्धिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम् ॐ भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम्। ॐ हरिहरहिरण्यगर्भाः प्रीयन्ताम्। ॐ सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्ताम्। ॐ सर्वाग्रामदेवताः प्रीयन्ताम्। ततो दक्षिणपात्रे जलं स्रावयेत्। अग्रे वक्ष्यमाणप्रतिवाक्योत्तरं ब्राह्मणास्तादृशमेव वदेयुः। ॐ हताश्च ब्रह्मविद्विषः १। ॐ हताश्च परिपन्थिनः २। ॐ हताश्च अस्य कर्मणो विघ्नकर्तारः ३। ॐ शत्रवः पराभवं यान्तु ४। ॐ शाम्यन्तु घोराणि ५। ॐ शाम्यन्तु पापानि ६। ॐ शाम्यन्त्वीतयः ७। पुनरुत्तरकलश उठाय उसमेंसे बहुतही थोडा २ जल उत्तरके पात्रमें गिराताहुआ 'ॐ तिथिकरण०' से 'ओं सर्वा ग्रामदेवताः प्रीयन्ताम्' पर्यन्त कहे। फिर दक्षिणवाले दूसरे पात्रमें गिराताहुआ 'ॐ हताश्च० से' ॐ शाम्यन्त्वीतयः' ७ पर्यन्त कहे. इस १ से आगे कहे हर एक यजमान वाक्योंका

१ यज–ब्रह्मद्वेषियोंका नाश हो १, (यहांसे आगे कहे सभी वाक्योंका उत्तर यजमान वाक्यसमान ब्राह्मण कहते जावें) लुटेरे डाकू नष्ट हों २। इस कर्ममें विघ्न करनेवाले नष्ट हों ३। शत्रुओंकी हार हो ४। घोर भयङ्कर कृत्य शान्त हो ५। पाप शान्त हो ६। मूषकादि सात ईतियां शान्त हों ७॥

स्थितप्रथमपात्रे--ॐ शुभानि वर्द्धन्ताम् १ । ॐ शिवा आपः सन्तु २ । ॐ शिवा ऋतवः सन्तु ३ । ॐ शिवा ओषधयः सन्तु ४ । ॐ शिवा नद्यः सन्तु ५ । ॐ शिवा गिरयः सन्तु ६ । ॐ शिवा अतिथयः सन्तु ७ । ॐ शिवा अग्नयः सन्तु ८ । ॐ शिवा आहुतयः सन्तु ९ । ॐ शिवा वनस्पतयः सन्तु १० । ॐ अहोरात्रे शिवे स्याताम् ११ । ॐ निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् । ॐ निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो वर्षत्विति निकामे निकामे वै तत्र पर्ज्जन्यो वर्षति यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते फलवत्यो नऽ ओषधयः पच्च्यन्तामिति फलवत्यो वै तत्रौषधयः पच्च्यन्ते यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते योगक्षेमो नः कल्पतामिति योगक्षेमो वै तत्र कल्पते यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते तस्माद्यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते क्लृप्तः प्रजानां योगक्षेमो भवति १२ । ॐ शुक्राङ्गारकबुधबृहस्पतिशनैश्चरराहुकेतुसोमसहिता आदित्यपुरोगा सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम् १३ ॥ ॐ भगवान्नारायणः प्रीयताम् १४ । ॐ भगवान् पर्जन्यः प्रीयताम् १५ । ॐ भगवान् स्वामी महासेनः प्रीयताम् ॥ १६ ॥ इति कृत्वा कलशं यथास्थाने भूमौ निदध्यात ॥ ततो यजमानो ब्राह्मणान् प्रति १७-पुण्याहकालान् वाच- उत्तर ब्राह्मणलोग तादृशही कहतेजावें । पुनः उत्तरके पात्रमें जल गिराता हुआ 'ॐशुभानि०' से 'महासेनः प्रीयताम्' कह कलशको यथास्थान भूमिपर

---

१ यज–शुभ कर्म बढैं १ । जल मङ्गलकारी हों २ । ऋतु कल्याण करनेवाले हों ३ । औषधियां सुखकारी हों ४ । नदियां सुखदेनेवाली हों ५ । पर्वत मङ्गलकर हों ६ । अतिथि कल्याणकारी हों ७ । गार्हपत्यादि तीनों अग्नि सुखप्रद हों ८ । आहुतियां सुखहेतु हों ९ । उदुम्बरादि वनस्पतियां सुखहेतु हों १० । दिनरात्रि सुखकारी हों ११ । सभी ग्राम ग्राम नगर नगरमें जल वर्षें, औषधियां फलावती हों, अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्ति हो, प्राप्तिकी रक्षा हो १२ । सूर्यादि नव ग्रह प्रसन्न हों १३ । भगवान् नारायण प्रसन्न हो १४ । भगवान् पर्जन्य प्रसन्न हो १५ । भगवान् स्वामी महासेन प्रसन्न हो १६ ॥

यिष्ये इति ब्रूयात्। विप्राः-ॐ वाच्यताम्। ॐ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि। वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद १८। अनया पुण्याह एव कुरुते इति ब्रूयुः। पुनर्यजमानः विनम्रतया ब्राह्मणान् प्रति ब्रूयात-

१९—ॐ ब्राह्मयं पुण्यं महद्यच्च सृष्ट्युत्पादनकारकम्
वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याहं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणाः मम गृहे करिष्यमाणविवाहाख्यस्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रूवन्तु इति स्वयं मन्दस्वरेणोक्त्वा ब्राह्मणैः-अस्तु पुण्याहम् २। इत्युक्ते पुनस्तदेव मध्यमस्वरेणोक्त्वा तैस्तथैवोक्ते पुनरुच्चस्वरेणोक्ते तथैव तैरुक्ते ३ पुनर्यजमानो ब्रूयात्- ॐ पुनन्तुमादेव जनाः पुनन्तुमनसाधिय ÷। पुनन्तुविश्वाभूतानिजातवेद ः पुनीघर। देवे फिर यजमान ब्राह्मणोंसे ॐ पुण्याह० आदि कहै, ब्राह्म० 'ओं वाच्यताम् ओंउद्गातेव०' से 'कुरुते' पर्यन्त कहदेवे। तब यजमान परम नम्रतापूर्वक हाथ जोड ब्राह्मणोंसे कहे 'ॐ ब्राह्मयं०' से 'कर्मणः' पर्यन्त कह 'पुण्याहम्' इस वाक्यको प्रथमवार मन्दस्वरसे कहकर 'भवन्तो ब्रुवन्तु' कहदेवे। ब्राह्मण लोगभी वैसाही मन्दस्वरसे 'अस्तुपुण्याहम्' कहदेवें। द्वितीयवार मध्यम स्वरसे यजमान 'पुण्याहं भवन्तोब्रुवन्तु' कहै। ब्राह्मणभी मध्यमस्वरसे 'अस्तु पुण्याहम्' कहदेवें और तृतीय वार उच्चस्वरसे यजमान 'पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु' कहै, तो ब्राह्मण लोगभी उच्चस्वरमें 'अस्तुपुण्याहम्'

१ यज-पुण्याहके समयोंको कहलाऊंगा, ब्रा० कहलाइये ऐसा कहकर 'ओं उद्गातेव०' मन्त्र पडे और इस ऋचासे पुण्यही होता है। ऐसा कहें! २ यज-ब्राह्मकल्परूप जो सृष्टि उत्पन्न करानेवाला पुण्यदिन है जो वेदरूप वृक्षसे प्रकट होता तथा नित्य है उस दिनको हमारे लिये पुण्य होना कहिये। ३ हे ब्राह्मणलोग। मेरे घरमें किया जायगा जो विवाह उस कर्मका "शुभसमय" आपलोग कहें। ऐसा मन्दस्वरसे यजमान कहै, ब्रा० भी मन्दस्वरसे "शुभ समय हों" ऐसा कहदेवे। फिर ऐसाही दोवारा मध्यमस्वरसे और तृतीयवार उच्चस्वरसे यजमान तथा ब्राह्मण भी कहें।

हिमा ॥ (य० अ० १९ मं० ३९) स यः कामयेतमहम्प्राप्नुयामित्यु-
दगयनऽआपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्व्रती भूत्वौदुम्बरे कᳪसे
च वा सर्वौषधं फलिनीति संन्हृत्य परिसमुह्य परिलिप्याग्निमुपसमाधा-
यावृताज्य ᳪ संस्कृत्य पुᳪसा नक्षत्रेण मन्थ ᳪ सन्नियहोजुहोजुहोति ॥

पृथिव्यामुद्धृतायां तु यत्कल्याणं पुरा कृतम् ।
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मम गृहे करिष्यमाणविवाहाख्यस्य कर्मणः कल्याण भवन्तो ब्रुवन्तु । द्विजाः अस्तु कल्याणं ३ एवं त्रिरुक्त्वा ॐ यथेमां व्वाचङ्कल्याणीमावदानिजनेब्भ्यः । ब्ब्रह्मराजन्न्याब्भ्याᳪशूद्रायचा-र्य्यायचस्वायचारणाय च । प्प्रियोदेवानान्दक्षिणायै दातुरिहभूयासमय-म्मेकामः समृद्ध्यतामुपमादोनमतु ॥ (अ० २६ मं० २) अथाध्वर्यो प्रतिगरोरात्सुरिमे यजमानाभद्रमेभ्यो यजमानेभ्योऽभूदिति कल्याणमेवै-तन्मानुष्यैर्वाचो वदति ॥ इति ब्रूयुः ।

यजमानः–सागरस्य यथावृद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता ।
संपूर्णा सुप्रभावा च तां ऋद्धिं प्रब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मम गृहे करिष्यमाणविवाहाख्यस्य कर्मणः ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु । द्विजाः–ॐ ऋध्यताम् ३ त्रिः उक्त्वा ॐ सत्रस्यऽ

कहदेवें । फिर यजमान ' ओंपुनन्तु० ' आदि मन्त्र और ' पृथिव्या० ' से ' कल्याणम् ३ इति भवन्तो ब्रुवन्तु ' पर्यन्त कहै । ब्राह्मणलोग ' अस्तुकल्या-णम् ' ऐसा तीनबार कह ' ओं यथेमां० इत्यादि मन्त्र पढदेवैं ॥ तब यजमान ' सागरस्य ' से ' ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्तु ' पर्यन्त कहैं । ब्राह्मण ' ओंऋद्ध्यताम् '

१ यज–पृथिवीका उद्धार करनेमें ऋषियों और सिद्ध तथा गन्धर्वोने जो कल्याण किया वोह कल्याण हम लोगोंके लिये कहिये । हे ब्राह्मणों मेरे घरमें विवाहकर्म कल्याणकारी हो, ऐसा कहिये, ब्रा० " कल्याण हो " ऐसा तीनवार कहदेवै ॥ २ यज–हे ब्राह्मणों ! मेरे घर विवाह कर्ममें ऋषि आप लोग कहै । ब्रा० ऋद्धि हो २ वार कह देवैं ।

ऋद्धिरस्यगन्ममज्ज्योतिरमृताऽअभूम । दिवम्पृथिव्याऽअद्ध्यारुहामाविदामदेवान्त्स्वज्ज्योतिः (य० अ० ८ मं० ५२) ॥ त उत्तरस्य हविर्द्धानस्यजघन्यायांकूपर्य्याᳩसामाभिगायन्ति सत्रस्य ऋद्धिरिति राद्धिमेवैतदभ्युत्तिष्ठत्त्युत्तरवेदेर्वोत्तरायाᳩश्रोणाविरन्तुकृततरम् । इति ब्रूयुः ॥

यजमानः—

स्वस्तिरस्तु या विनाशाख्या पुण्यकल्याणवृद्धिदा ।
विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मम गृहे करिष्यमाणविवाहाख्यस्य कर्मणः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ द्विजाः—आयुष्मते स्वस्ति ३ त्रिः उक्त्वा ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रोव्वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाव्विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्द्दधातु (य० अ० २५ मन्त्र १९) गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतय ऽइति गातुᳩ ह्येष यज्ञायेच्छति गातुं यज्ञपतये यो यज्ञस्य सᳩस्थाँ दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्य ऽ इति ध्वस्तितो देवत्रास्तु स्वस्तिर्मनुष्ये त्वेवैतदाहोर्ध्वं जिगातु भेषजमित्युर्वोयं यज्ञो देवलोकं जयत्वित्यैवैतदाह । शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पद इत्येतावद्वा इद ᳩसर्वं यावद्द्विपाच्चैव चतुष्पाच्चैतस्मा एवैतद्यज्ञस्य सᳩस्थां गत्वा शं करोति तस्मादाह शन्नोऽअस्तुद्विपदे शं चतुष्पदे ॥ इति ब्रूयुः ।

यजमानः—समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका ।
हरिप्रिया च माङ्गल्या तां श्रियं प्रब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मम गृहे करिष्यमाणविवाहाख्यस्य कर्मणः श्रीरस्तु ३ बार कह 'ओं सत्रस्य' आदि मन्त्र पढ देवें ॥ यजमान, इति० स्वस्तिं' से 'स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु' पर्यन्त कहैं । ब्रा० 'आयुष्मते स्वस्ति' ३ बार कह 'ॐ स्वस्ति न०' आदि मन्त्रोंको पढ देवें । यजमान 'समुद्र०' से 'श्रीरस्तु भवन्तो ब्रुवन्तु' पर्यन्त कहें । 'अस्तु श्रीः' ३ बार कह

१ यज—हे ब्राह्मणों मेरे घर विवाहकर्ममें विनाश नहीं होनेवाली मेरी स्वस्ति आप लोग कहैं । ब्रा० आयुष्मान् तुम्हारे स्वस्ति हो ३ तीन वार कहैं । २ यज—हे ब्राह्मणों मेरे घर विवाहकर्ममें श्री होना आपलोग कहैं । ब्रा० होवै श्री ३ बार कहै ॥

इति भवन्तो ब्रुवन्तु । द्विजाः—अस्तु श्रीः३ त्रिः उक्त्वा ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥ (य० अ० ३१ मन्त्र २२)

तेनोहततइजेदाक्षीपार्वतिस्तइमेप्येतर्हि दाक्षायणाराज्यमिमैव प्राप्ताराज्यमिवहवैहं प्राप्नोति य एवं विद्वाननेन यज्ञेन यजन्ते तस्माद्वाऽएतेन यज्ञेन स वा एकैक एवारवूचीनाहं पुरोडाशोभवत्येतेनोहास्था सपत्नानुपबाधा श्रीर्भवति ॥

प्रजापतिर्लोकपालो धाता ब्रह्मा च देवराट् ।
भगवान् शाश्वतो नित्यः स वो रक्षतु सर्वतः ॥ इति ब्रूयुः ॥

यजमानः—अस्मिन्पुण्याहवाचने न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनात् श्रीमहागणपतिप्रसादाच्च सर्वःपरिपूर्णोऽस्तु । द्विजाः—ॐ अस्तु परिपूर्णः । मङ्गलानि भवन्तु । वर्षशतं पूर्णमस्तु । गोत्राभिवृद्धिरस्तु । इति वदेयुः इति ॥ ततो कलशस्रावितजलयुतपात्रद्वयोर्मध्ये स्रावितजलयुतं द्वितीयपात्रं कश्चित् नापितादिभृत्यः गृहाद्बहिः कुत्राप्यसञ्चरे देशे विक्षिप्य हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य गृहमागच्छेत् ॥ इति ॥

'ॐ श्रीश्चते०' आदि मन्त्र और 'प्रजापतिर्लोक०' आदि श्लोक कहकर आशीर्वाद दे देवें । फिर यजमान 'अस्मिन्पुण्याह०' से 'परिपूर्णोस्तु०' पर्यन्त कहे । ब्रा० 'अस्तु' से 'वृद्धिरस्तु' पर्यन्त कह देवें । तब कलशस्रावित जलयुक्त दो पात्रोंमेंसे दक्षिणके जलसहित दूसरे पात्रको नापितादि कोई कृत्य घरसे बाहर कहीं जहां लांघना नहीं पडे ऐसी जगह फेंकदेवे और हाथ पांव धोकर घरमें जावे ॥

---

१ लोकोंका रक्षक प्रजा पति सूर्य और देवोंका राजा. धारण करनेवाला ब्रह्मा, तथा नित्य सनातन, भगवान् परमात्मा तुम सभोंकी रक्षा सर्व प्रकारसे करें । २ यज—इस पुण्याहवाचनमें जो कम या बिगडी विधि हो, यह सब उपस्तित ब्राह्मणोंके वचन और महागणपतिके प्रसादसे सभी पूर्ण होवैं । ब्रा० पूर्णहो, मङ्गलहों, वर्षशतकी आयु हो और गोत्रकी वृद्धि होवै ।

ततोऽमृताभिषेकः—तत्र कलशस्त्रावितोदकयुतं प्रथमपात्रं गृहीत्वा चत्वारो ब्राह्मणा अविधुरा दूर्वाम्रपल्लवैर्वामतः पत्न्या दक्षिणतः पुत्रेण कन्यया वा सहोपविष्टं यजमानमभिषिञ्चेयुः । तत्र मन्त्राः- ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषुपयोदिव्यन्तरिक्षेपयोधाः । पयस्वतीःप्प्रदिशः सन्तुमह्यम् ॥ १ ॥ (य० अ० १८ मंत्र ३६) ॐ पंचनद्यः सरस्वतीमपियंतिसस्त्रोतसः । सरस्वतीतुपंचधासो देशेभवत्सरित् ॥ २ ॥ (य० अ० ३४ मन्त्र ११) ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसिवरुणस्यस्कंभसर्ज्जनीस्थोव्वरुणस्यऋतसदन्यसिव्वरुणस्यऋतसदनमसिव्वरुणस्यऋतसदनमासीद ॥ ३ ॥ (य० अ० ४ मन्त्र ३६) ॐ पुनन्तुमादवजनोः पुनन्तुमनसाधियः । पुनन्तुविश्वाभूतानिजातवेदःपुनीहि मा (य० अ० १९ मन्त्र ३९) ॥ ॥ ४ ॥ ॐ देवस्यत्त्वासवितुःप्प्रसवेश्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यैव्वाचोयन्तुर्यन्त्रियैदधामिबृहस्पतेष्ट्वासाम्म्राज्ज्येनाभिषिञ्चामि (असौ) ॥ ५ ॥ (य० अ० ९ मन्त्र ३०) ॐ देवस्यत्त्वासवितुःप्प्रसवेश्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यैवाचोयन्तुर्य्यन्त्रेणाग्ग्नेःसाम्राज्ज्येनाभिषिञ्चामि(असौ)॥६॥ॐदेवस्यत्वास वितुःप्रसवेश्विनोर्ब्बाहुब्भ्यां पूष्णोहस्ताब्भ्याम्।अश्विनोर्ब्भैषज्ज्येनतेजसेब्ब्रह्मवर्च्च-

अमृताऽभिषेक- इस प्रकार करना कि, संस्कार्य पुत्र या कन्या सहित सपत्नीक यजमानपर, चार वेदपाठी ब्राह्मण या जो हों दूर्वा और आमके पत्तोंको प्रथम पात्रके कलश स्रावित जलमें भिगो २ कर आगे लिखे प्रत्येक 'ॐ पयःपृथिव्याम्०' आदि १७ मन्त्रोंसे अभिषेक कर, अन्तमें 'अमृता०' आदि 'सुशान्तिर्भवतु' पर्यन्त कहदेवें ॥ तथा इन मन्त्रोंमें पांच जगह 'अभिषिञ्चामि असौ' ऐसा पद जहां आता है वहां "अभिषिञ्चामि" से आगे "असौ" पद निकालकर इसके स्थानमें यजमानका नाम शर्म्मादिस-

सायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्ज्येन वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्ये न्द्रियेण बलाय श्रिय्यै यशसेभिषिञ्चामि । (य० अ० २० मन्त्र ३) ७॥ ॐ विश्वानिदेवसवितर्दुरितानिपरासुव । यद्भद्रन्तन्नऽआसुव ॥ ८ ॥ (य० अ० ३० मं० ३) ॐ धामच्छदग्निरिन्द्रोब्ब्रह्मादेवोबृहस्पतिः । सचेतसोव्विश्वेदेवायज्ञम्प्रावन्तुनः शुभे (य० अ० १८ मं० ७६) ॥ ९ ॥ ॐ त्वंयविष्ठदाशुषोनॄँ॒पाहिशृणुधी गिरः । रक्षातोकमुत-त्त्मना , य० अ० १३ मं० ५२) ॥ १० ॥ ॐ अन्नपतेन्नस्यनोदेह्य-नमीवस्यशुष्मिणः । प्रप्प्रदातारन्तारिषऽऊर्ज्जन्नोधेहिद्विपदेचतुष्पदे ॥ ११ ॥ (य० अ० ११ मंत्र ८३) ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ᳯ शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । व्वनस्प्पतयः शान्तिर्व्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व्वᳯ शान्तिः शान्तिरेवशान्तिः सामाशान्तिरेधि(य० अ० ३६ मं १७) ॥ १२ ॥ ॐ यतोयतः समीहसेततोनोऽअभयङ्कुरु । शन्नः कुरुप्प्रजाभ्योभयन्नः पशुब्भ्यः ॥ १३ ॥ (य० अ० ३६ मं० २२) ॐ पालाशं भवति तेन ब्राह्मणोभिषिञ्चति ब्रह्म वै पलाशो ब्रह्मणे वैनमेतदभिषिञ्चति । औदुम्बरं भवति तेन स्वोभिषिञ्चत्यन्नवां ऊर्गदुम्बर ऊर्ग्वै स्वं यावद्वै पुरुषस्य स्वं भवति नैवता वेदशनायेतितेनो कवितस्मादौदुम्बरे स्वोभिषिञ्चति ॥ १४ ॥ नैयग्रोधपादं भवति तेन मित्र्योराजन्योभिषिञ्चति । यद्विन्यग्रोधः प्रतिष्ठितो मित्रेण वै राजन्याः प्रतिष्ठितास्तस्मान्नैयग्रोधपादेन मित्र्यो राजन्योभिषिञ्चति॥ १५॥ आश्वत्थम्भवति तेन वैश्योभिषिञ्चति । स यदेवादोश्वत्थे तिष्ठत इन्द्रो

मरुत उपमन्त्रयते तस्मादाश्वत्थेन वैश्योभिषिञ्चति यद्देवकल्पां जुहोति प्राणा वै कल्पा अमृतमु वै प्राणा अमृतेनैवैनमेतदभिषिञ्चति ॥ १६ ॥ सर्वेषां वा देवा (वेदा) ७ रसो यत्साम सर्वेषामेवैनदद्वेदाना ७ रसेनाभिषिञ्चति ॥ १७ ॥ अमृताऽभिषेकोऽस्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ॥ इत्यमृताऽभिषेकः ॥ ततो यजमानः पत्नीं स्वस्य दक्षिणतः पुनरुपवेश्य हस्ते दक्षिणादिकमादाय--ॐ अद्य अभिषेककर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दक्षिणां यथाभागं विभज्याहं सम्प्रददे । इति ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य ब्रूयात्-भो ब्राह्मणाः पुण्याहवाचनफलसमृद्धिरस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु । द्विजाः—ॐ पुण्याहवाचनफल समृद्धिरस्तु । इति ब्रूयुः ॥

अथ नीराजनकर्म--तत्र पतिपुत्रवतीभिः सुवासिनीभिर्ब्राह्मणोक्तमन्त्रैर्नीराजनं कार्यम् । मन्त्राः— ॐ अनाधृष्टापुरस्तादग्नेराधिपत्यऽआयुर्म्मेदाः पुत्रवतीदक्षिणत ऽ इन्द्रस्याधिपत्येप्रजाम्मेदाः । सुखदापश्चाद्देवस्यसवितुराधिपत्येचक्षुर्म्मेदाऽआ-

हित सम्बोधनान्त, जैसे वेदमणिशर्म्मन्, शत्रुघ्नवर्मन्, लक्ष्मीधर गुप्तआदि जो हों ब्राह्मणलोग कहते जावें ॥ ओर अभिषेकके समय पत्नीको यजमान अपने वामभागमें बैठावे । यह अमृताभिषेक पूरा हुआ ॥ यजमान अपने पत्नीको फिर अपने दहिने बैठाल, अभिषेक करनेवाले ब्राह्मणोंको देनेके लिये कुश और दक्षिणा हाथमें ले ' ॐ अद्य० ' से ' संप्रददे ' पर्यन्त कह यथाभाग सबको बाट देवे ॥ और हाथ जोड ब्राह्मणोंसे ' ॐ भो ब्राह्मणाः०' से ' समृद्धिरस्तु ' पर्यन्त कहे, ब्राह्मणलोगभी ' ॐ पुण्याह० ' से ' समृद्धिरस्तु पर्यन्त कहदेवें ॥

तदनन्तर **नीराजनकर्म**—इस प्रकार करे कि, पतिपुत्रवाली सौभाग्यवती ब्राह्मणकी चार स्त्रियां संस्कार्यसहित सपत्नीक यजमानकी आरती करें । और

श्श्रुतिरुत्तरतोधातुर् ऽधिपत्यऽोयस्प्पोपस्मेदा ६ । विधृतिरुपरिष्टाद्बृह-स्पतेराधिपत्यऽओजोमेदा विश्वेभ्यो मानाष्ठाभ्यस्प्पाहिमनोर-श्वासि ॥ (य० अ० ३७ मं० १२) ततः पुण्याहवाचनं आवाहितान् गणपत्यादिसर्वान् देवान् विसृजेत् । हस्ते अक्षतानादाय–ॐ अत्र पुण्याहवाचनकर्मण्यावाहिताः सर्वे देवाः पूजां गृहीत्वा सन्तुष्टाः सन्तः स्वस्थानं गच्छन्तु । इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य, पुनर्हस्ते जलमादाय–ॐ अनेन विवाहाङ्गभूतपुण्याहवाचनेन कर्मणा कर्माङ्गदेवता प्रजापतिः प्रीयतां न मम ॥ इति ॥ ततोऽद्यैव द्वितीयदिने वा मातॄणां पूजनं कुर्यात् ॥

इति श्रीचिकित्सकचूडामणिपं० ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठि-
विरचितविवाहसोपाङ्गविधौ पुण्याहवाचनप्रयोगः ॥

अथ मातृकापूजनम् ।

तत्रादौ मातृकापूजने किञ्चिद्विचारो लिख्यते—

तत्र शातातपः—अकृत्वा मातृकायागं यः श्राद्धं परिवेषयेत् ।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः ॥

अपरार्के—ब्रह्माण्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान् ।
वृद्ध्यादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दीमुखान् पितॄन् ॥

'अनाधृष्टा०' आदि मन्त्र ब्राह्मण पढदेवे । तब यजमान हाथमें अक्षतोंको ले जिन गणपत्यादि देवताओंका आवाहन पुण्याहवाचनकर्महीके लिये किया हो 'ॐ अत्र पुण्याह०' से 'गच्छन्तु' पर्यन्त कह उन सभोंपर अक्षत छोड विसर्जन करदेवे । यह कर्म करके आजही अथवा दूसरे दिन मातृका पूजन करै ॥ इति पुण्याहवाचनकर्मप्रयोगः ॥

प्रथम यहां मातृकापूजनका कुछ विचार लिखते हैं । इस विषयमें शातातपने कहा है कि, मातृकाओंका पूजन विना किये जो आभ्युदयिक श्राद्ध करता है, तो मातृकायें क्रोधित हों उस कर्मकर्ताको मारना चाहती हैं ॥ और अपरार्कमें कहा है कि, वृद्धिकर्मोंमें ब्रह्माणी आदि सप्त मातृका

ब्रह्मपुराण उक्तम्–गणेशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत् ।
सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥ १ ॥
कुड्यलग्ना वसोर्धाराः पञ्चधारा घृतेन तु ।
कारयेत्सप्त वा धारा नातिनीचा न चोच्छ्रिताः ॥
गौरी १ पद्मा २ शची ३ मेधा ४ सावित्री ५ विजया ६ जया ७ ।
देवसेना ८ स्वधा ९ स्वाहा १० मातरो लोकमातरः ॥
धृतिः ११ पुष्टि १२ स्तथा तुष्टि १३ रात्मनः कुलदेवता १४ ।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्चतुर्दश ॥

इत्युक्तविधानमनुसृत्य मातरो लोकमातर इत्येते द्वे पदे गौर्यादीनां विशेषणस्वरूपे मत्वा क्वचित्प्रयोगे गणेशेनाधिकानां गौर्यादिचतुर्दशमातृकाणामेव पूजनं लिखितमस्ति ; किन्तु प्रयोगरत्नाद्यनेकग्रन्थेषु तथैव सर्वदेशप्रचलितेष्वखिलकर्मकाण्डप्रयोगेष्वपि तथा दुर्गा, क्षेत्रपाल और गणाधिपोंका पूजन पहिले करके, तत्पश्चात् नान्दी मुख पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये ॥ ब्रह्मपुराणमें इस प्रकार कहा है कि, कई संस्कार एक साथ करनेकी दशामें गणेशपूजन, स्वस्तिपुण्याहवाचन, शान्तिपाठ तथा मातृकापूजन नान्दीश्राद्धादि कर्म सबके आदिमें एक ही वार करे, हर एकके आदिमें पृथक् २ नहीं करे । शुद्ध लिपीहुई भित्तिपर पांच वा सात धारा घृतकी करे, जो बहुत ऊंची या बहुत नीची नहीं हों, किन्तु मझोली और बीचमें हों । गौरी १, पद्मा २, शची ३, मेधा ४, सावित्री ५, विजया ६, जया ७, देवसेना ८, स्वधा ९, स्वाहा १०, धृति ११, पुष्टि १२, तुष्टि १३ और आत्मकुल देवता १४ गणेश करके सहित इन चौदह मातृकाओंका पूजन सभी वृद्धिकर्मोंमें करना चाहिये । इस ऊपर कहे विधानके अनुसार 'मातरः" "लोकमातरः" इन दोनों पदोंको गौर्यादिका विशेषण मानकर किसी किसी प्रयोगमें गणेशको अधिक करके गौर्यादिकी संख्या चौदह कहकर मातृकाओंकी पूजा लिखी है । किन्तु प्रयोग रत्न आदि अनेक ग्रन्थोंमें, और सभी देशोंके प्रचलित समस्त कार्मकाण्ड प्रयोगोंमेंभी

१ गणेशः क्रियमाणानां कोऽर्थः ? अनेकसंस्कारकर्मणामेकदेव क्रियमाणानामित्यर्थः । मातृभ्य इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ।

गौर्यादिमातृकापूजने "गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश" इति गौर्यादिमातृकाः षोडशसंख्याका लिखिताः सन्ति । अत्र मातरो लोकमातर इति द्वे पदे गौर्यादिविशेषणरूपे न स्तः । वस्तुतस्तु गौर्यादिषोडशसंख्यापूरणाय मातरो लोकमातर इत्यनयोः पृथगङ्गीकारः कृतः, स एव समुचितश्च । यतः गौर्यादिषोडशमातृकानाम एव सर्वत्र प्रसिद्धम् । तथा एताभिस्सहैवाऽन्यासामपि घृततृणतोरणमण्डपादिबहुविधमातृकाणामेवं नवग्रहादीनाञ्च पूजनं सर्वत्रैव लिखितमस्ति । एवं मातृकापूजने द्वौ प्रकारौ दृश्येते । तत्र द्वितीयः प्रकारः बहुसंमतत्वात् विशेषप्रतिष्ठितो भाति इति निश्चित्य बहुसंमतः सर्वत्र प्रचलितप्रसिद्धविधानानुसारेण स एवात्र प्रयोगो लिखितः ॥ इति मातृकापूजने विचारः॥

अथ मातृकापूजनप्रयोगः—तत्र यजमानः स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य स्वस्य दक्षिणतः पत्नीं संस्कार्यपुत्रं कन्यां वा क्रमेण चोपवेश्य आचम्य

गौर्यादि मातृकाओंके पूजन विषयमें 'वृद्धौ पूज्याश्चषोडश' इत्यादि वाक्य अर्थात् वृद्धिकर्मोंमें गौर्यादि षोडश मातृकाओंका पूजन करना चाहिये, ऐसा लिखा है । यहां "मातरः" और "लोकमातरः" ये दोनों पद गौर्यादिके विशेषण नहीं मानो बल्कि अलग अलग ये दो प्रकारकी मातृकायें हैं कि, जिनसे गौर्यादि मातृकाओंकी संख्या सोलह पूरी होती है । और ऐसा ही मानना उचित भी है । क्योंकि गौर्यादिका "षोडशमातृका" ऐसा ही नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है, तथा इनही षोडशमातृकाओंके साथ और भी घृत, तृण, तोरण, मण्डपादि बहुविधि मातृकाओंके, एवं नवग्रहादिकोंके पूजन भी सर्वत्र लिखे हैं । मातृकापूजनमें ऊपर लिखे चौदह गौर्यादिकी संख्या और सोलह, दो प्रकार देखा जाता है, इनमें षोडशका प्रकार बहुसंमत होनेसे विशेष प्रतिष्ठित मालूम होता है । ऐसा ही निश्चित कर जो बहुसंमत और सर्वत्र प्रचलित तथा प्रसिद्ध विधान है, उसीके अनुसार यहां प्रयोग लिखा है ॥ इति मातृकापूजने विचारः ॥

कुशयवजलान्यादाय¹–ॐ अद्य पूर्वोच्चरितशुभपुण्यतिथौ मम कन्यायाः पुत्रस्य वा श्वःअद्य वा कर्तव्यविवाहङ्गतया समस्तमातृकाणां यथास्थाने पूजनमहं करिष्ये। इति जलं भूमौ प्रक्षिप्य पुनर्हस्तेनाक्षतान्प्रक्षिपन् स्थलमातृकादीनामावाहनं कुर्यात् यथामूलेऽत्र सप्तानामप्येकतन्त्रेण ब्राह्म्यादिस्थलमातृकाणामावाहनादि लिखितम्, तथैव बहवो जनाः कुर्वन्ति । केचिद्विशेषश्रद्धावन्तः टिप्पण्यां लिखितप्रकारेण सर्वासां पृथक् नामभिरावाहनादिकं कुर्वन्ति । एवमेवाऽग्रेऽपि

मातृका पूजन प्रयोग यजमान पूर्वाऽभिमुख अपने दाहिने पत्नी और संस्कार्य पुत्र वा कन्याको क्रमसे बैठालकर, आचमन तथा प्राणायाम करके हाथमें कुश जलादि ले 'ॐअद्य०' इत्यादि कहताहुआ कन्याका पिता कन्याका नाम, या पुत्रका पिता हो तो पुत्रका नाम, एवं जिस दिन विवाह होनेवाला हो, जैसे दूसरे दिन या आजही इत्यादि जो हो मूलमें कहे वाक्योंके अनुसार कह संकल्प पूरा करके जल छोडदेवे। फिर जिस स्थानपर जिसका नाम आगे कहेंगे उसी स्थानपर हाथसे अक्षत छिडकता हुआ स्थलमातृका आदि सभों का आवाहन करे। ब्राह्म्यादि सातों स्थल मातृकाका आवाहन, यहां मूलमें एक तन्त्रही करके जैसा लिखा है, बहुधा ऐसा ही संक्षेपमें बहुत लोग आवाहनादि करते हैं। और जो कोई विशेष श्रद्धावान् हर एक नामोंसे अलग २ पूजन करना चाहें, वे टिप्पणीमें लिखे अनुसार सभोंका पृथक्

१–यदि पूर्वदिन एव पुण्याहवाचनान्तं कर्म कृतं चेत्तदा द्वितीयदिने मातृकापूजनारम्भात् प्रागेव मण्डपे पूर्वस्थापितानां गणेशादिदेवानां यथोपस्थितोपचारैः–ओं अत्र पूर्वस्थापितेभ्यो गणेशादिसर्वदेवेभ्योनमः। इति मंत्रेण पूजनं कृत्वा ततो मातृकापूजनादि, देवपितृ निमंत्रणं तथा आभ्युदयिक श्राद्धं च कर्तव्यमिति ॥ यदि मातृकापूजन करनेके दिनसे पहिलेही किसी दिनोंमें गणेशादि पूजनपूर्वक पुण्याहवाचनान्त कर्म कर चुके हों, और उससे दूसरे दिन मातृकापूजनादि कर्म करना हो तो महागणपत्यादि जो पहिले हीसे मण्डपमें स्थापित देवता हैं, उन सभोंका टिप्पणीमें लिखे 'ओं अत्र०' इत्यादि नाम मन्त्र कह सर्व उपचारोंसे पूजन करके फिर मातृकापूजन तथा देव' पितृ निमन्त्रण और आभ्युदयिकश्राद्ध करना चाहिये ॥

वक्ष्यमाणासु समस्तमातृकासु मूलोक्तरीत्या टिप्पण्युक्तप्रकारेण वा आवाहनादिव्यवस्था विज्ञेया ॥ इति ॥ मण्डपस्थले ब्राह्म्यादिस्थलमातृकाः सप्त आवाहयेत् । ॐ ब्राह्म्यादिसप्तस्थलमातृकाभ्यो नमः । ब्राह्म्यादिसप्तस्थलमातृकाः मण्डपस्थले आवाहयामि स्थापयामि । एवं मण्डपे-नन्दिन्यादिमण्डपमातृकाः पञ्च । मण्डपस्याग्निकोणे ॐ नन्दिन्यै नमः नन्दिनीं आवा० स्था० १ । मण्डपस्य निर्ऋतिकोणे ॐ नलिन्यै नमः नलिनीम् आवा० स्थाप० २ । मण्डपस्य वायव्यकोणे ॐ मैत्रायै नमः मैत्राम् आवा० स्थाप० ३ । मण्डपस्यैशानकोणे ॐ उमायै नमः उमाम् आवा० स्थाप० ४ । मण्डपस्य मध्यमभूमौ ॐ पशुवर्द्धिन्यै नमः पशुवर्द्धिनीम् आवा० स्थाप० ५ । ततस्तृणनिर्मितासु मृत्प्रलेपितमध्यप्रदेशासु पञ्चपिञ्जुलिकासु मध्ये द्वयोः पिञ्जुलिकयोर्मृत्प्र-

नामोंसे आवाहनादि करें । ऐसेही आगेभी कही हुई समस्त मातृकाओंके पूजनादिकी व्यवस्था, मूल या टिप्पणीमें कहे अनुसार जानना ॥ मण्डपस्थलपर ब्राह्म्यादि सात स्थलमातृकाको एकतन्त्रमें 'ॐ ब्राह्म्यादि०' से 'स्थापयामि' पर्यन्त कह अक्षत छोड आवाहन करे । आगे ऐसेही अक्षत छोडकर सर्वत्र आवाहन करना । मण्डपके अग्निकोणसे चारों कोण और मध्यस्तम्भके समीपही 'ॐ नन्दिन्यै०' आदि पांच मण्डपमातृकाके नाम कह पांचों स्थानोंमें क्रमसे आवाहन कर देवे । तृणमातृका सातोंका पूजन इस

१ स्थलमातृकाः सप्त-ओं ब्राह्म्यै नम ब्राह्मीम् आवाहयामि स्थापयामि १ । (एवं सर्वत्र) ओं माहेश्वर्यै नम माहेश्वरीम् आ० स्था० २ । ओं कौमार्यै नमः कौमारीम् आ० स्था० ३ । ओं वैष्णव्यै नम वैष्णवीम् आवाहयामि स्था० ४ । वाराह्यै नमः वाराहीम् आ० स्था० ५ । ओं माहेन्द्र्यै नमः माहेन्द्रीम् आ० स्था० ६ । ओं चामुण्डायै नमः चामुण्डाम् आ० स्था० ७ ॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डाः स्थलमातरः ॥ १ ॥

२ मण्डपमातृकाः पञ्च-नन्दिनी नलिनी मैत्रा उमा च पशुवर्द्धिनी ।
आग्नेयादिक्रमेणैताः पञ्च मण्डपमातरः ॥ २ ॥

लेपितस्थले गोमयेन द्वे द्वे पिण्डिके त्रयाणाञ्च मृत्प्रलेपितस्थले एकैका इति सप्तपिण्डिकाः निर्माय एकैकस्यां पिण्डिकायाम् एकामेकाम् इति। तृणमातृकाः सप्त आवाहयेत्—यथा प्रथमपिञ्जुलिकायाम् ॐ वासिष्ठ्यै नमः वासिष्ठीम् आ० स्था० १। ॐ नन्दिन्यै नमः नन्दिनीम् आवा० स्थाप० २। द्वितीयपिञ्जुलिकायाम् ॐ नन्दायै नमः नन्दाम् आवा० स्था० ३। ॐ वसुदेवायै नमः वसुदेवाम् आ० स्था० ४। तृतीयपिञ्जुलिकायाम्—ॐ भार्गव्यै नमः भार्गवीम् आवा० स्थाप ५। चतुर्थपिञ्जुलिकायाम्—ॐ जयायै नमः जयाम् आवा० स्थाप० ६। पञ्चमपिञ्जुलिकायाम्—ॐ विजयायै नमः विजयाम् आवा० स्था० ॥ ७॥ आम्रादिपल्लवनिर्मिततोरणेषु तोरणमातृके द्वे आवाहयेत्—ॐ धात्र्यै नमः, धात्रीम् आ० स्था० १। ॐ विधात्र्यै नमः विधात्रीम आ० स्था० ॥ २॥ इत्यावाह्य। पुनरक्षतान् गृहीत्वा ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमन्दधातु। विश्वेदेवासऽइहमादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

प्रकार करना कि, तृणोंकी पिंजुलीसे तिकोनी तिपखी (Λ) पांच बनावे, उन पांचोंके बीच बीचमें जलसे सनी हुई मट्टीका प्रलेपन कर उस मट्टी लिपे स्थानपर गोमयकी बनाई पिण्डिका (❋) इस क्रमसे चिपकावे कि पहिली और दूसरी दो दो और बाकी तीनपर एक एक, ऐसी कुल सात पिण्डिकाओंको पांच तिपखियोंपर लगाय, हर एक पिण्डिकापर क्रमसे 'ॐ वासिष्ठ्यै' आदि सात नामोंसे आवाहन करे। दोका आम्रपल्लवादिसे बने वन्धनवारोंपर 'ॐ धात्र्यै०' आदिसे दो नामोंसे आवाहन करके फिर अक्षत ले 'ॐ मनोजूति' से 'सुप्रतिष्ठिता भवत' पर्यन्त कह ब्राह्म्यादि

(१) तृणमातृकाः सप्त—वासिष्ठी नन्दिनी नन्दा वसुदेवा च भार्गवी।
जया च विजया चैव सप्तैतास्तृणमातरः॥

(२) तोरणमातृके द्वे-धात्रीविधात्र्यौ द्वे चैव पूज्ये तोरणमातृके॥

(य० अ० २ मं० १३) ॥ ब्राह्म्यादिसमस्तावाहिता मातरः सुप्रतिष्ठिता भवत ॥ इति प्रतिष्ठाप्य ॐ ब्राह्म्यादिसमस्थलमातृकाभ्यो नमः १ । ॐ नन्दिन्यादिपञ्चमण्डपमातृकाभ्यो नमः २ । ॐ वासिष्ठ्यादिसप्ततृणमातृकाभ्यो नमः ३ । ॐ धातृविधातृतोरणमातृकाभ्यां नमः ४॥ एतैश्चतुर्थ्यन्तनाममन्त्रैः पृथक् पृथक् एकतन्त्रेण वा सर्वोपचारैः सर्वाः पूजयेत् । (समस्तमातृकानैवेद्यार्थं यदपूपादिकं मण्डपे कृत्वा पूर्वत एव सुरक्षितम्, तस्मादेव किञ्चिदेताभ्योऽपि निवेदयेत) ततो हस्ते जलमादाय ॐ अनया पूजया अत्रावाहिताः ब्राह्म्यादिसमस्तमातरः प्रीयन्तां न मम । इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—भो अत्रावाहिताः ब्राह्म्यादिसमस्तमातरः मम सकुटुंबस्य आयुष्कर्त्र्यः क्षेमकर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्यः तुष्टिकर्त्र्यः शुभदात्र्यः वरदात्र्यो भवत ॥ एवं पूजयित्वा तृणमातृकायाः पञ्चपिंजुलीः पञ्चसु मण्डपस्तम्भेषु पृथक् पृथक् बध्नीयात् । तथा पल्लवनिर्मितानि तोरणान्यपि मण्डपे गृहद्वारादौ च बध्नीयात् ॥ अथ द्वारमातृकाणां सप्तानां पञ्चानां वा पूजनं कुर्यात् ।

स्थलमातृकासे तोरणमातृ पर्यन्त चारों स्थानोंपर अक्षत छोड देवे । और इन चारों प्रकारकी मातृकाओंका ' ॐ ब्राह्म्या० ' इत्यादिमूलमें लिखे चतुर्थ्यन्त चार नाममन्त्रोंसे अलग २ अथवा एकतन्त्रहीमें सर्वोपचारसे सबोंकी पूजा करे । और समस्त मातृओंके नैवेद्यार्थ जो पुआ आदि मण्डपमें बनाकर पहिलेहीसे सुरक्षित किया है, उसीमेंसे कुछ नैवेद्य इन सभोंको निवेदन करे । फिर हाथमें जल ले 'ॐ अनया०' से 'न मम' पर्यन्त कह जल छोडकर, फिर हाथ जोड 'भो अत्रावाहिता०' से 'वरदात्र्यो भवत' पर्यन्त कर प्रार्थना कर देवे । इस प्रकार इन सभोंकी पूजा कर, तृणमातृकाओंकी पांचों पिंजुलियोंमेंसे एक एकको मण्डपके हरएक खंभोंमें अग्निकोण क्रमसे पांचोंको बांधदेना और मण्डपके चारों तरफ तथा गृहद्वारादि स्थानोंमें बन्धनवारोंको

तद्यथा–विवाहगृहद्वारस्योभयतः पार्श्वे भित्तौ रक्तपीतादिरागैर्विचित्रितपीठमध्ये दक्षिणे तिस्रः वामे चतस्रः इति सप्त, अथवा दक्षिणे द्वे, वामे तिस्रः इति पञ्चैव गोमयपिण्डकाः धृत्वा तासां सप्तानां पञ्चानां वा मध्ये एकैकस्याम् एकामेकां वक्ष्यमाणनाममन्त्रैरावाहयेत् ॥ द्वारमातृकाः सप्तपक्षे, पञ्च पक्षे तु टिप्पण्यां नामानि द्रष्टव्यानि । संस्कार्यसन्तानेन सहितः सपत्नीको यजमानः पूजनसामग्री गृहीत्वा निर्मितद्वारमातृकासमीपं गत्वा तत्र आचम्य हस्ते कुशजलान्यादाय ॐ अद्य शुभपुण्यतिथौ मम कन्यायाःपुत्रस्य वा विवाहाङ्गभूतद्वारमातृकाणां पूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य जलं भूमौ क्षिपेत्।ततोऽक्षतान् प्रक्षिपन्

बांध देना । तब द्वारमातृका सात अथवा पांचके पूजनार्थ, जिस गृहमें विवाह कृत्य हो उस गृहद्वारके दाहिने और बायें दोनों बगलकी भित्तीपर रक्त पीतादि रङ्गोंसे छोटा तथा चौखूँटा एक एक विचित्र पीठ बनाय उसके बीच में दक्षिणतरफ तीन और बाँयेंतरफ चार, ऐसी सात गोमयकी बनी हुई पिण्डिकायें चिपका देवे । अथवा दक्षिणमें दो और बांयेंमें तीन ऐसी पांच ही पिण्डिका लगा देवे और इन सातों या पांचों पिण्डिकाओंमेंसे एक एक पर क्रमसे एक ही एक मातृकाका आवाहन आगे लिखे नाम मन्त्रोंसे करे । द्वारमातृका सात होनेसे मूलमें लिखे अनुसार और पांच होनेसे टिप्पणीमें नाम लिख देखना । संस्कार्य संतानके साथ सपत्नीक यजमान, पूजनसामग्रीसहित ऊपर कहे अनुसार बनीहुई द्वारमातृकाके समीप जाय आचमन कर हाथमें कुशजल ले 'ॐ अद्य०' इत्यादिमें कन्या या पुत्र जो हो उसीका नाम कहते हुये संकल्पमें कहे सभी शब्दोंको 'करिष्ये' पर्यन्त पूरा कह जल छोड देवे । फिर हर एक नामसे अक्षत छोडताहुआ द्वारके दक्षिण पीठपर

१ सप्तद्वारमातृकाः–लक्ष्मी सरस्वती चैव गङ्गा च यमुना तथा। काली कपालिनी रौद्री सप्तैता द्वारमातरः ॥ २ पंचद्वारमातृकाः–जयन्ती विजया नामा शोभना पिङ्गला तथा । भद्रकाली प्रपूज्या वै पञ्चैता द्वारमातरः ॥

द्वारदक्षिणे (३)–ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीम् आवा० स्थाप० १ । ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीम् आवा० स्थाप० २ । ॐ गङ्गायै नमः गङ्गाम् आवा० स्थाप० ३ ॥ द्वारवामे (४) ॐ यमुनायै नमः यमुनाम् आ० स्था० ४ । ॐ काल्यै नमः कालीम् आवा० स्थाप० ५ । ॐ कपाल्यै नमः कपालिनीम् आवा० स्थाप० ६ । ॐ रौद्र्यै नमः रौद्रीम् आवा० स्थाप० ७ ॥ पुनरक्षतान् गृहीत्वा ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्यबृहस्प्पतिर्र्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टंय्यज्ञꣳसमिमन्दधातु । व्विश्वेदेवासऽइहमादयन्तामों ३ प्रतिष्ठ । (य० अ० २ मंत्र० १३) ॐ लक्ष्म्यादिसप्तद्वारमातृकाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यक्षतान् क्षिप्त्वा प्रतिष्ठाप्य सर्वोपचारैः संपूजयेत् । अत्रापि नैवेद्यं पूर्ववत् । ततः स्वाचारतो यजमानपत्नी पतिशिखासंमिलितेन स्वकुन्तलेन तासामुपरिभित्तौ संलग्ना घृतेन दक्षिणे द्वे वामे तिस्रः नातिलम्बा नातिह्रस्वाः धाराः पत्या ब्राह्मणेन वा पठितेन वसोः पवित्रेति मन्त्रेण पातयेत् । ॐ व्वसोः पवित्रमसि शतधारंव्वसोः पवित्रमसिसहस्रधारम् । देवस्त्वासविता पुनातुव्वसोः पवित्रेणशतधारेणसुप्वाकामधुक्षः । (य० अ० १ मं० ३) ततो यजमानः

'ॐ लक्ष्म्यै०' इत्यादि ३ बायें पीठपर 'ॐ यमुनायै०' इत्यादि ४ का आवाहन करके फिर अक्षत ले 'ॐ मनो' से 'तिष्ठत' पर्यन्त अक्षत छोड सभोंकी प्रतिष्ठा करे और सर्वोपचारसे सभोंकी पूजा करे । यहांभी नैवेद्य पूर्वमातृकावत् रखना । और अपने कुलाचारके अनुसार यजमान पत्नी, अपने केशोंकी एक चोटीके अग्रभागमें, अपने पतिके शिखाका अग्रभाग मिलाकर, इन मिले हुये दोनोंके नोकोंको द्वारमातृकाकी पिण्डिकाओंसे ऊपर दीवारमें लगाती है और उसी चोटीके अग्रभाग परसे दीवारमें स्पर्शित कर 'ॐ वसोः०' इत्यादि मन्त्र पढता हुआ, पति अथवा ब्राह्मण घृतकी धारा ऐसा ढारता है कि' जिससे दीवारपर घृतकी रेखा मझोली बन जावे । ऐसी घृत

हस्ते जलमादाय–अनया पूजया लक्ष्म्यादिसप्त मातरः प्रीयन्तां न मम । इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्–भो द्वारमातरः मम सकुटुम्बस्यायुष्कर्त्र्यः क्षेमकर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्यस्तुष्टिकर्त्र्यः शुभदात्र्यो भवत । इति ॥

अथ विवाहकर्मणि षोडशमातृकादीनां स्थाननिर्माणविधिः–पूजनावसरे सम्मुखशुक्रादिदोषरहिते कुत्रापि गृहाऽऽभ्यन्तरशुभस्थाने भित्तिकायां गोमयेन गैरिकादिना वा यथोचितचतुरस्रप्रलिप्तायां रक्तपीतादिरागैर्विचित्रितायां मध्यस्थाने सप्तदशसंख्यका गोमयनिर्मिताः पिण्डिकाः कार्याः । तत्र प्रथमपिण्डिकायां गणपतिं तदवशिष्टषोडशपिण्डिकासु क्रमेण गौर्यादिषोडशमातृकाश्चावाहयेत् ॥

अथ गौर्यादिमातृकापूजनप्रयोगः—यजमानः द्वारमातृकापूजनं विधायानन्तरं पूर्वनिर्मितषोडशमातृकास्थानं गतः तत्रासधारा द्वारके दक्षिण बगलकी मातृकापीठ पर दो और बायें बगलकी मातृका पीठपर तीन, हर एक रेखा करनेमें मन्त्र पढना चाहिये । फिर यजमान हाथमें जल ले ' अनया० ' से ' न मम ' पर्यन्त कह जल छोडे और हाथ जोड और ' भो द्वारमातरः ' इत्यादि ' भवत ' पर्यन्त कह देवे ॥

विवाहकर्ममें षोडशमातृकादि पूजनार्थ स्थान–पहिलेहीसे इस प्रकार बनाय रखना कि, गृहके किसी स्थानके ऐसी दीवारमें जहां पूजन करते समय सम्मुख शुक्रादिका दोष नहीं हो, आवश्यकतानुसार गोमय अथवा गेरू आदिसे दीवारको चौकोना लीप, उसपर लाल पीले आदि माङ्गलिक रंगोंसे विचित्र स्थान बनाय उसीपर द्वारमातृकाके समान बनाईहुई सत्रह गोमय पिण्डिकाओंको क्रमसे चिपका देवे । और इन दीवारमें लगीहुई सत्रह पिण्डिकाओंमेंसे पहिलीपर गणेश और बाकी सोलहोंपर क्रमसे गौर्यादि सोलह मातृकाओंका आवाहन करे । इति ॥

गौर्यादिमातृकापूजनप्रयोग–यजमान द्वारमातृकापूजन करके तब षोडश

नोपरि स्वयमुपविश्य दक्षिणतः ग्रन्थिबन्धनयुतां पत्नीम् तथा संस्कार्य-पुत्रं कन्यां वा उपवेश्य आचम्य कुशजलान्यादाय ॐ अद्य पूर्वोच्चारितशुभपुण्यतिथौ मम कन्यायाः पुत्रस्य वा विवाहाङ्गभूतगणपतिसहितानां गौर्यादिषोडशमातृकादीनामावाहनपूजनादिकर्माऽहं करिष्ये। इति संकल्प्य हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा आवाहयेत् ॥ तत्रादौ गणेशसहिताः षोडशमातृकाः ॐ गणेशाय नमः गणेशम् आवा० स्था० १। ॐ गौर्यै नमः गौरीम् आवा० स्थाप० २। ॐ पद्मायै नमः पद्माम् आवा० स्था० ३। ॐ शच्यै नमः शचीम् आवा० स्थाप० ४। ॐ मेधायै नमः मेधाम् आ० स्था० ५। ॐ सावित्र्यै नमः सावित्रीम् आ० स्था० ६। ॐ विजयायै नमः विजयाम् आ० स्था० ७। ॐ जयायै नमः जयाम् आवा० स्था० ८। ॐ देवसेनायै नमः देवसेनां आ० स्था० ९। ॐ स्वधायै नमः स्वधाम् आवा० स्था० १०। ॐ स्वाहायै नमः स्वाहाम् आ० स्था० ११। ॐ मातृभ्यो नमः मातॄः आवा० स्था० १२। ॐ लोकमातृभ्यो नमः लोकमातॄः आवा० स्था० १३। ॐ धृत्यै नमः धृतिम् आ० स्था० १४। ॐ पुष्ट्यै नमः पुष्टिम् आवा० स्थाप० १५। ॐ तुष्ट्यै नमः तुष्टिम् आवा० स्था० १६। ॐ कुलदेवतायै नमः कुलदेवताम् आवा० स्था० ॥ १७ ॥

मातृकाके स्थानपर जाकर वहां आसनपर बैठे। अपने दहिने ग्रन्थिबन्धन करीहुई पत्नी और उसके दाहिने संस्कार्य सन्तानको भी बैठाल आचमन करे, हाथमें कुशजल ले 'ॐ अद्य०' से अहं करिष्ये' पर्यन्त कहकर जल छोड देवे। तब आगे कहे हर एक नामोंसे अक्षत छोडते हुए १७ पिण्डिकाओंपर क्रमसे गणेशसहित षोडश मातृकाओंका 'ॐ गणेशाय नमः' यहांसे 'कुलदेवताम् आ० स्था०' पर्यन्त १७ का आवाहन करके फिर हाथमें

(१) गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः। धृति पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता। गणेशनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥

इत्यावाह्य पुनरक्षतान् गृहीत्वा ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्प-तिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टंय्यज्ञᳬसमिमन्दधातु । विश्वेदेवासऽइहमाद-यन्तामोम्प्रतिष्ठ (य० अ० २ मं० १३) ॐ गणपतिसहिताः षोडशमातरः इहागच्छत इह तिष्ठत। इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य ॐ गणपति-सहिताभ्यो गौर्यादिषोडशमातृकाभ्यो नमः। इति मंत्रेण सर्वोपचारैः पूजयेत्। अत्रापि नैवेद्यं पूर्ववत्। ततो हस्ते जलं गृहीत्वा अनया पूजया गणपतिसहिता गौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्तां न मम। इति भूमौ जलं प्रक्षिप्य प्रार्थयेत्—

कुर्वन्तु मातरस्सर्वा गौर्याद्या मम मङ्गलम्।
लक्ष्मीं तन्वन्तु मद्गेहे शुभकार्याणि सर्वदा॥ इति॥

ततः स्वाचारतो यजमानपत्नी पतिशिखासम्मिलितेन स्वकु-न्तलेन तासामुपरि भित्तौ संलग्ना घृतेनोत्तरोत्तरक्रमेण नातिनीचा न चोच्छ्रिताः सप्त पञ्च वा धाराः पत्या ब्राह्मणेन वा पठितेन वसोः पवित्रेति मंत्रेण पातयेत्। ॐ व्वसोः पवित्रमसिशतधारंव्वसोः पवित्रमसिसहस्रधारम्। देवस्त्वासवितापुनातुव्वसोः पवित्रेण

अक्षत ले 'ॐ मनो' से 'इह तिष्ठत' पर्यन्त कह सभोंपर अक्षत छोडकर 'ॐ गणपतिसहिताभ्यो०' इत्यादि नाममन्त्रसे सभोंका पूजन सर्वोपचारसे करदेवे। (मातृकाका नैवेद्य यहां भी पूर्ववत) फिर हाथमें जल ले 'अनया०' से 'न मम' पर्यन्त कह जल छोडे। फिर हाथ जोड 'कुर्वन्तु' श्लोकसे प्रार्थना करे। अपने कुलाचारके अनुसार यहां भी द्वारमातृकाके समान यजमान-पत्नी अपने केशोंकी एक चोटीके अग्रभागमें अपने पतिकी शिखाका अग्रभाग मिलाकर इन मिले हुये दोनोंके नोकोंको षोडशमातृकाकी पिण्डि-काओंसे ऊपर दीवारमें लगाती है और दीवारमें लगी हुई उसी चोटीके अग्रभाग पर पति अथवा कोई ब्राह्मण 'ॐवसोः०' इत्यादि मंत्रसे घृतकी धारा ऐसी ढारता है कि, जिससे दीवारपर घृतकी मझोली रेखा

शतधारेणसुप्वाकामधुक्षत् (य० अ० १ मं० ३) ॥ इति ॥ तथात्रैव सप्तदशपिण्डिकासमीपस्थाने अन्यासां घृतमातृकादीनामप्यावाहनं कृत्वा श्रद्धालवो जनाः पूजनं कुर्वन्ति । तथैवात्र प्रयोगः । अक्षतान् प्रक्षिपन् सर्वासामावाहनं कुर्यात् । तत्र वसोर्धाराधिष्ठातृकाः–घृतमातृकाः सप्त ॐ श्रियै नमः श्रियम् आवाहयामि स्थापयामि० १ । ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीम् आ० स्था० २ । ॐ धृत्यै नमः धृतिम् आ० स्था० ३ । ॐ मेधायै नमः मेधाम् आ० स्था० ४ । ॐ पुष्ट्यै नमः पुष्टिम् आ० स्था० ५ । ॐ श्रद्धायै नमः श्रद्धाम् आ० स्था० ६ । ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीम् आ० स्था० ७ । (तत्रैव) ॐ दुर्गायै नमः दुर्गाम् आ०स्था० १ । ॐ कीर्त्यादिचतुर्दशगृहमातृकाभ्यो[2] नमः कीर्त्यादिच०

उत्तरोत्तर क्रमसे सात या पांच बनजावें । हरएक ऐसी घृतधाराकी रेखा करनेमें मन्त्र पढना । इनही सत्रह पिण्डिकाओंके समीपही दीवालपर घृत-मातृका आदि और भी अनेक मातृकाओंका श्रद्धालुजन आवाहन पूजन करते हैं । अतः वैसाही प्रयोग यहां लिखते हैं । घृतधाराके समीपही दीवाल पर अक्षत छिडकता हुआ आगे लिखे नाममन्त्रोंसे सभी मातृओंका आवाहन करे । सात घृतमातृका 'ॐ श्रियै०' इत्यादि सातका आवाहनकर उसी स्थानपर और भी दुर्गा तथा मूलमें इकट्ठा करके लिखे अथवा टिप्पणीमें

१ श्रीर्लक्ष्मीश्च धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती
मांगल्येषु प्रपूज्यते सप्तैता घृतमातरः ॥

२ गृहमातृकाः–कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टि कान्तिस्तथैव च = गृहमातर एतास्तु शुभे पूज्याश्चतुर्दश ॥ ओं कीर्त्यै नमः कीर्तिम् आवाहयामि स्थापयामि १ । ओं लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीम आ० स्थाः २ । ओं धृत्यै नमः धृतिम अ.० स्था० ३ । ओं मेधायै नमः मेधाम् आ० स्था० ४ । ओं पुष्ट्यै नमः पुष्टिम् आ० स्था० ५ । ओं श्रद्धायै नमः श्रद्धाम् आ० स्था० ६ । क्रियायै नम क्रियाम् आ० स्था० ७ । मत्यै नमः मतिम् आ० स्था० ८ । ओं बुद्ध्यै नमः । बुद्धिम् आ० स्था० ९ । लज्जायै नमः

तुर्दशगृहमातृकाः आ० स्था० ॐ मोदादि षट्अविघ्नमातृकाभ्यो नमः मोदादि षट्अविघ्नमातृकाः आ०स्था० । ॐ मत्स्यादिसप्तजलमातृकाभ्योनमः मत्स्यायादि सप्तजलमातृकाः आ०स्था० । ॐ क्षमादिसप्तआभ्यन्तरमातृकाभ्यो नमः क्षमादिसप्तआभ्यन्तरमातृकाः आ० स्था० । इत्यावाह्य पुनरक्षतान् गृहीत्वा ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्यबृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टंयज्ञꣳसमिमन्दधातु । विश्वेदेवासऽइहमा-

पृथक् पृथक् नामोंसे चौदह गृहमातृका, अविघ्नमातृका छः, जलमातृका सात, आभ्यन्तरमातृका सात इन सभोंका आवाहन कर फिर हाथमें अक्षत

लज्जाम् आ० स्था० १० । ओं वपुर्मातृकायै नमः वपुर्मातृकाम् आ० स्था० ११ । ओं शान्त्यै नमः शान्तिम् आ० स्था० १२ । ओं तुष्ट्यै नमः तुष्टिम् आ० स्था० १३ । कान्त्यै नमः कान्तिम् आ० स्था० १४ ॥

१ षट् अविघ्नमातृकाः—मोदा चैव प्रमोदा च सुमुखा दुर्मुखा तथा ।
अविघ्ना विघ्नहर्त्री च षडेताऽविघ्नमातरः ॥

ओं मोदायै नमः मोदाम् आ० स्था० १ । ओं प्रमोदायै नमः प्रमोदा० आ० स्था० २ । ओं सुमुखायै नमः सुमुखाम् आ० स्था० ३ । ओं दुर्मुखायै नमः दुर्मुखाम् आ० स्था० ४ ! ओं अविघ्नायै नमः अविघ्नाम् आ स्था० ५ । ओं विघ्नहर्त्र्यै नमः विघ्नहर्त्रीम् आ० स्था० ६ ।

२ सप्त जलमातृकाः--मत्सी कूर्मी च वाराही माण्डुकी दर्दुरी तथा ।
जलौकी सोमपा चैव सप्तैता जलमातरः ॥

ओं मत्स्यै नमः मत्सीम आ० स्था० १ ! ओं कूर्म्यै नमः कूर्मीम् आ० स्था० २ । वाराह्यै नमः। वाराहीम् आ० स्था० ३ । माण्डुक्यै नमः माण्डुकीम्०आ० स्था० ४ । दर्दुर्यै नमः दर्दुरीम आ० स्था० ५ । जलौक्यै नमः जलौकीम् आ० स्था० ६ । सोमपायै नमः सोमपाम् आ० स्था० ७ ॥

३ सप्त आभ्यन्तरमातृकाः--क्षमा सत्या च सीता च पार्वती भुवनेश्वरी ।
पद्माक्षी पद्मवदना सप्तैता मध्यमातरः ॥

ओं क्षमायै नमः क्षमाम् आ० स्था० १ । सत्यायै नमः सत्याम् आ० स्था० २ । सीतायै नमः सीताम् आ० स्था० ३ । पार्वत्यै नमः पार्वतीम् आ० स्था० ४ । भुवनेश्वर्यै नमः भुवनेश्वरीम् आ० स्था० ५ । पद्माक्ष्यै नमः पद्माक्षीम् आ० स्था० ६ । पद्मवदनायै नमः पद्मवदनाम् आ० स्था० ७ ॥

दयन्तामो३म्प्रतिष्ठ । (य० अ० २ मंत्र १३) ॐ घृतमातृकाद्यत्राऽऽवाहिताः समस्तमातृकाः इहागच्छत इह तिष्ठत । इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य ॐ घृतमातृकाद्यत्रावाहिताभ्यः समस्तमातृकाभ्यो नमः । इति मन्त्रेण सर्वोपचारैः पूजयेत् । (अत्रापि नैवेद्यं पूर्ववदेव ।) ततो हस्ते पुष्पाण्यादाय पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ॐ समंकूख्ये देव्व्याधियासन्दाक्षिणयोरुचक्षसा । मामऽआयुत्प्रमोषीर्मोऽअहन्तवव्वीरंव्विदेयतवदेविसन्दृशि (य० अ० ४ मं० २३) ॥ १ ॥ ॐ गणपतिसहिताभ्यो गौर्य्याद्यत्रावाहिताभ्यः समस्तमातृकाभ्यो नमः । पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि । इति पुष्पाणि प्रक्षिप्य हस्ते जलं गृहीत्वा—अनया पूजयाऽत्रावाहिताः समस्तमातरः प्रीयन्तां न मम इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—भो गौर्यादिसमस्ताऽऽवाहिता मातरः मम सकुटुम्बस्यायुष्कर्त्र्यः क्षेमकर्त्र्यः शान्तिकर्त्र्यः पुष्टिकर्त्र्यस्तुष्टिकर्त्र्यः शुभदात्र्यो वरदात्र्यो भवत । इति ॥ ततः कुशजलदक्षिणाद्रव्याण्यादाय—ॐ अद्य पूर्वोच्चरितशुभपुण्यतिथौ अमुगोत्रः अमुकशर्मा विवाहकर्माङ्गभूतसमस्तमातृकापूजनसाङ्गतासिद्ध्यर्थं यथाशक्ति दक्षिणाद्रव्यं अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय अहं संप्रददे । इति दक्षिणां दत्त्वा आयुष्यमन्त्रजपं कुर्यात् ॥

ले 'ॐ मनोजूति०' से 'इह तिष्ठत' पर्यन्त कह सभोंपर अक्षत छोड प्रतिष्ठा कर देवे । तब 'ॐघृतमातृकाद्यत्रा०' नाम मन्त्र कहता हुआ सर्वोपचारसे सभोंकी पूजा करे । (यहां भी मातृका नैवेद्य पूर्ववत् ।) तदनन्तर अंजली में पुष्पोंको ले 'ॐ समख्ये०' से 'समर्पयामि' पर्यन्त कहकर सभोंपर पुष्पाञ्जलि छोड देवे । और हाथमें जल ले 'अनया०' से 'न मम' पर्यन्त कह जल छोडे, फिर हाथ जोड 'भो गौर्यादि०' से 'भवत' पर्यन्त वाक्य कह प्रार्थना करे । तब हाथमें कुश जल और दक्षिणाद्रव्य ले 'ॐ अद्य०' इत्यादि 'संप्रददे' पर्यन्त संकल्प पढ ब्राह्मणको दक्षिणा दे आयुष्य मन्त्र जपे ॥

अथायुष्यमन्त्रजपः।

ॐ आयुष्यं वर्च्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्। इदꣳ हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम्॥ १॥ ॐ नतद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥ २॥ ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥ ३॥ (य० अ० ३४ मंत्र ५०, ५१, ५२) ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ ४॥ ॐ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ ५॥ (य० अ० २४ मं० २१, २२.) इति मातृकापूजनं विधायाभ्युदयिकश्राद्धं कुर्यादिति विधानं सर्वत्र दृश्यते, किन्तु विवाहकर्मणि बहुदेशेषु कुलेषु च मातृकापूजनानन्तरं स्वकुलदेवपितॄणां तथा कल्याण्याद्यनेकदेवतानां च निमन्त्रणपूजने कृत्वाऽऽभ्युदयिकश्राद्धं कुर्वन्ति, अतोऽत्राग्रे तथैव प्रयोगो लिखितः॥ इति मातृकापूजनम्॥

आयुष्यमन्त्र—'ॐ आयुष्यं०' से 'गन्तोः' पर्यन्त ५ मन्त्रोंको पढे। इस प्रकार मातृकापूजन करके तब आभ्युदयिकश्राद्ध करना ऐसा विधान सर्वत्र देखा जाता है किन्तु विवाहकर्ममें बहुत देशों और बहुत कुलोंमें मातृकापूजनके बाद स्वकुलदेव पितरों और कल्याणी आदि अनेक देवताओं का निमन्त्रण पूजन करके आभ्युदयिक श्राद्ध करते हैं। अतः आगे ऐसाही योप्रग लिखते हैं। इति मातृकापूजन॥

अथ देवपितृनिमन्त्रणप्रयोगः ।

यजमानः मातृकापूजनं कृत्वा पुनर्मण्डपे समागत्य तत्रासने प्राङ्मुख उपविश्य स्वस्य दक्षिणतो ग्रन्थिबन्धनयुतां पत्नीं तद्दक्षिणतः संस्कार्यपुत्रं कन्यां वा उपवेश्याचम्य कुशजलान्यादाय ॐ अद्य पूर्व्वोच्चरितशुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा मम पुत्रस्य (कन्याया वा) कर्त्तव्यविवाहाङ्गतया विहितं स्वकुलदेवादीनां पितॄणां तथा कल्याण्यादिविविधदेवतादीनां चास्मिन् विवाहमङ्गलकर्मणि निमन्त्रणं पूजनञ्चाहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य स्वपुरत आलेपनेनालेपितं मुखपिधानसहितभाण्डचतुष्टयं निधाय तत्र प्रथमभाण्डस्य मुखपिधानं वामकरेण किञ्चिदुद्घाट्य तस्मिन् भाण्डे दक्षिणहस्तेनाक्षतान् प्रक्षिपन् प्रत्येकवक्ष्यमाणवाक्यैः स्वकुलदेवादीनां निमन्त्रणं कुर्यात्। ॐ स्वकुलदेवेभ्यो नमः स्वकुलदेवान्निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि २ । ॐ स्वेष्टदेवेभ्यो नमः स्वेष्टदेवान्निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि २ । ॐ स्ववास्तुदेवेभ्यो नमः स्ववास्तुदेवान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ३ । ॐ स्वग्रामदेवेभ्यो नमः स्वग्रामदेवान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि । ४ ॐ स्वक्षेत्रदेवेभ्यो नमः स्वक्षेत्रदेवान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि

अब देवपितृनिमन्त्रणप्रयोग—मातृकापूजन होजाने पर यजमान फिर मण्डपमें आकर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठ अपने दक्षिण ग्रन्थिबन्धन करीहुई पत्नी और उसके दाहिने संस्कार्य संतानको भी बैठाल, स्वयं आचमनकर हाथमें कुश जल ले 'ॐ अद्य०' से 'करिष्ये' पर्यन्त कह जल छोड देवे। फिर ढंकनेसे मुख ढंका और ऐपनसिन्दूरसे सुन्दर रंगाहुआ चार पात्र, अपने सामने रख एक पात्रके मुखपरका ढंकना बायें हाथसे कुछ खोलेहुये, उसी पात्रमें दक्षिणहाथसे आगे कहे हरएक वाक्योंसे अक्षतोंको छोडताहुआ स्वकुलदेवादि पांचका निमन्त्रण करके इनका पूजन 'ॐ स्वकुलेष्ट०' इन

॥ ९ ॥ इत्यावाह्य सर्वोपचारैः ॐ स्वकुलेष्टवास्तुग्रामक्षेत्रदेवादिभ्यो नमः। इति मन्त्रेण संपूज्य भाण्डमुखं पिधापयेत् ॥ ततो द्वितीयभाण्ड-मुखं पूर्ववत् किञ्चिदुद्घाटच कल्याण्यादिकाः निमन्त्रयेत्। ॐ कल्याण्यै नमः कल्याणीं निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि १। ॐ सर्वेभ्यः संवत्सर अयनऋतुमासपक्षतिथिवारनक्षत्रयोगकरणराशिलग्नमुहूर्त्तेभ्यो नमः सर्वा-नेतान् वत्सरादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि २। ॐ सर्वेभ्यो गणपत्यादिपञ्चलोकपालेन्द्रादिदशदिक्पालैकादशरुद्राष्टवसुभ्यो नमः सर्वानेतान् गणपत्यादिपञ्चलोकपालादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थाप-यामि ३। ॐ सर्वेभ्यो भूरादिचतुर्दशलोकेभ्यस्तथैकोनपञ्चाशन्मरुत्स-प्तसागरगङ्गादिसरिद्भ्यो नमः सर्वानेतान् भूरादिचतुर्दशलोकादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ४। ॐ सर्वेभ्यः कश्यपादिसर्वर्षिनारदा-दिसर्वमुनिभ्यो नमः सर्वानेतान् कश्यपादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ५। ॐ सर्वेभ्यो अधिप्रत्यधिदेवसहितसूर्यादिनवग्रहस्कन्दा-दिबालग्रहेभ्यो नमः सर्वानेतान् सूर्यादिग्रहादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ६। ॐ सर्वेभ्यः पञ्चाशत्क्षेत्रपालचतुःषष्टियोगिनीभ्यो नमः सर्वानेतान् क्षेत्रपालादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ७। ॐ सर्वेभ्यो वरुणाग्निमेघदेवोपदेवदानवगन्धर्वाप्सरसोयक्षराक्षसना-गपन्नगव्यालभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसवेतालडाकिनीशाकिनीविद्युद्भ्यो नमः सर्वानेतान् वरुणादिकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ८। ॐ सर्वेभ्यस्त्रैलोक्यस्थचराचरभूतेभ्यो नमः सर्वाण्येतानि त्रैलोक्यस्थचराचरभूतानि निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ॥ ९ ॥

नाममन्त्रसे सर्वोपचारद्वारा कर पात्रका मुख ढांप देवे। ऐसेही दूसरे पात्रका भी मुख खोल 'ॐ कल्याण्यै०' आदि ९ वाक्योंसे निमन्त्रण और 'ॐ

इत्यावाह्य सर्वोपचारैः ॐ कल्याण्यादिचराचरभूतान्तनिमन्त्रितेभ्यस्सर्वेभ्यो नमः । इति मन्त्रेण संपूज्य भाण्डमुखं पिधापयेत् ॥ ततस्तृतीयभाण्डमुखं तथैव किञ्चिदुद्घाट्य तत्र पितॄन् निमन्त्रयेत् ॥ (मङ्गलकार्यत्वादत्र पितॄणामपि निमन्त्रणपूजनादिकं देवतुल्यं सव्यादिनैव भवति । ॐ पैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः पैतृकविश्वान्देवान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि १ । ॐ पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नमः पितृपितामहप्रपितामहान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि २ । ॐ मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नमः, मातृपितामहीप्रपितामहीः निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ३ । ॐ मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नमः, मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहान् सपत्नीकान् निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ४ । ॐ मद्धस्ताधिकारिभ्यः समस्तपितृभ्यो नमः, मद्धस्ताधिकारिणः समस्तपितॄन्निमन्त्रयामि अत्र स्थापयामि ५ । इत्यावाह्य, सर्वोपचारैः समस्तपितृभ्यो नमः इति मंत्रेण संपूज्य भाण्डमुखं पिधापयेत् ॥ ततश्चतुर्थभाण्डमुखमुद्घाट्य तत्र मण्डपे यत्कृतम् अपूपादिकं तद्यथावकाशं भाण्डे धृत्वा समस्तनिमन्त्रितेभ्यो बलिं दद्यात् । हस्ते जलमादाय—ॐ भाण्डत्रयाभ्यन्तरस्थितेभ्यः सर्वेभ्यो निमन्त्रि-

कल्याण्यादि० इस नाम मन्त्रसे पूजन कर पात्रका मुख ढाँपे । इसी प्रकार तीसरे पात्रमें पितरोंका (मङ्गलकार्यमें पितरोंका भी देवतुल्य सव्य और पूर्वाभिमुखही सर्वकर्म होता है ।) निमन्त्रण 'ॐ पैतृकविश्वेभ्यो०' आदि पांच वाक्योंसे और 'ॐ समस्तपितृभ्यो०' इस नाम मन्त्रसे पूजनकर, पात्रका मुख ढाँकदेवे ॥ और चौथे पात्रका मुख खोल, इसमें गुलगुला पुआ या जो वस्तु मातृका नैवेद्यादिके लिये पहिलेही बना रखा था उसीमें जो अब मातृकानैवेद्यसे बचीहुई वस्तु है उसीको यथावकाश भर देवे । फिर हाथमें कुश

तेभ्यः सुपूजितेभ्यः स्वकुलदेवतादिभ्यो नमः। एवं मिष्टान्नादिबलिं समर्पयामि। भो स्वकुलदेवतादयो यूयं यथाभागममुं बलिं गृह्णीत। इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋषयोमुनयो गावो देवमातर एव च॥ १॥
योगिन्यः क्षेत्रपालाश्च सर्वे यत्र समागताः।
नगरे वाथ ग्रामे वा अटव्यां सरितस्तथा॥ २॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ते सर्वे चैव सन्तुष्टा बलिं गृह्णन्तु मे सदा॥ ३॥
शरणागतोस्म्यहं तेषां सर्वे त मम सुप्रदाः।
बलिदानेन संतुष्टाः प्रयच्छन्तु ममेप्सितम्॥ ४॥
सर्वकार्याणि कुर्वन्तु दोषांश्च घ्नन्तु मे सदा।
सर्वे वैवाहिके रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः॥ ५॥

इति संप्रार्थ्य दृषत्पेषणसमये पत्न्या पेषितं यत् सुरक्षितं द्विदलपिष्टं तदादाय तेन पिधानसहितं भाण्डचतुष्टयमुखम् अवरुद्ध्य आलेपनेनानुलिप्य सिन्दूराङ्कितं कृत्वा गौर्यादिमातृकासमीपे निदध्यात्॥ ततस्त्वाभ्युदयिकश्राद्धमारभेत्॥

इति विवाहसोपाङ्गविधौ देवपितृनिमन्त्रणप्रयोगः॥

जल ले 'ॐ भाण्डत्रयाभ्यन्तर०' से 'गृह्णीत' पर्यन्त कह जल छोड देवे और हाथ जोड 'देवदानव०' इत्यादि ५ श्लोकोंसे प्रार्थना करके फिर सिलपोहना में पिसीहुई दालकी पिट्ठीसे इन चारों पात्रोंके ढपनासहित मुखको प्रलेपन कर बन्द कर देवै और उसपरभी ऐपन सिन्दूर लगाय गौर्यादि षोडशमातृकाके समीप लेजाकर धर देवे। तब आभ्युदयिकश्राद्धका कर्म आरम्भ करे॥ इति देवपितृनिमन्त्रणप्रयोग॥

अथाभ्युदयिकश्राद्धम् ।

तत्रादौ किञ्चिद्विचारः । अत्राभ्युदयिकश्राद्धवृद्धिश्राद्धनान्दीमुखश्राद्धेत्येकस्यैव कर्मणः पर्यायैर्नामानि सन्ति इति ॥ तत्र नान्दीमुखनिरुक्तिर्भरतेनोक्ता—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रवर्तते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति कीर्त्यते ॥ १ ॥
(नान्दी—शुभाशीर्मुखे येषां ते नान्दीमुखाः । इति)

तत्र कालः । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—

जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च ।
पितन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ २ ॥
वनस्थाद्याश्रमं गच्छन् पूर्वेद्युः सद्य एव वा ।
पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत्कर्मसिद्धये ॥ ३ ॥

हेमाद्र्यादिनिबन्धे—

मातृश्राद्धं तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने पैतृकं तथा ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ ४ ॥

आभ्युदयिक श्राद्धमें विचार—इसी आभ्युदयिक श्राद्धको वृद्धिश्राद्ध या नान्दीमुख श्राद्ध भी कहते हैं । नान्दीमुखशब्दकी निरुक्ति भरतने कहा है कि, देवद्विजनृपादिकोंकी आशीर्वचन संयुक्त स्तुति जिससे प्रवृत्त हो, उसीको "नान्दी" कहते हैं ॥ १ ॥ (नान्दी अर्थात् शुभाशीर्वचन मुखमें हो जिनके वे नान्दीमुखपितर कहे जाते हैं ।) नान्दीमुख पितरोंके श्राद्धका काल पृथ्वी चन्द्रोदय तथा ब्राह्ममें कहा है कि पुत्रके जन्ममें, उपनयन और विवाहमें विधिपूर्वक श्राद्ध कर नान्दीमुख पितरोंको तृप्त करे ॥ २ ॥ वनस्थादि आश्रमोंको जाते समय कर्म सिद्ध होनेके लिये एक दिन पहिलेही अथवा जानेके दिन उसी समय पूर्वोक्त विधिसे नान्दीमुख पितरोंके तृप्त्यर्थ श्राद्ध करे ॥ ३ ॥ हेमाद्र्यादि निबन्धोंमें कहा है कि, वृद्धि कर्मोंमें मातादिक श्राद्ध दिनके पूर्वभागमें, तथा पितादिका मध्याह्नमें और सपत्नीक मातामहा-

वृद्धमनुः—अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः।
पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥ ५ ॥
लौगाक्षिस्मृतौ - पूर्वाह्णो वै भवेद्वृद्धिर्विनाजन्मनिमित्तकम्।
पुत्रजन्मनि कुर्व्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः ॥ ६ ॥
पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—
सुवेषभूषणैस्तत्र सालङ्कारैस्तथा नरैः।
कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं सुब्राह्मणैः सह ॥
स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः ॥ ७ ॥
हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—
कुशस्थाने तु दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये।
नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥ ८ ॥
चन्द्रोदये ब्राह्मे छन्दोगपरिशिष्टे च—
शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवास्तथा।

दिका श्राद्ध मध्याह्नोत्तरकालमें करना चाहिये ॥ ४ ॥ वृद्धमनुने कहा है कि भिन्नभिन्नकालोंमें तीनोंके निमित्त आभ्युदयिक श्राद्ध करनेका यदि समय नहीं मिले तो कर्त्तव्य संस्कारसे पहिले दिन मातृपूर्वक तीनों नान्दीश्राद्ध दिनके पूर्वभागमें एक साथ ही करलेवे। लौगाक्षिस्मृतिमें कहा है कि पुत्रके जन्मसे तत्काल वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये और तद्भिन्नकर्मोंमें दिनका पूर्वभाग ही वृद्धिश्राद्ध करनेका काल है ॥ ६ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपराशरका कथन है कि, आभ्युदयिकश्राद्ध करते समय सुन्दर ब्राह्मणोंके सहित अलङ्कार और भूषणोंसे सुसज्जित कुंकुम तिलक तथा सुगन्धि द्रव्योंको शरीरमें लगाये हुये पुरुष ऐसेही आभूषण वस्त्रादिसे शृङ्गार किये हुये नृत्यगीतादिसे परमहर्षिता स्त्रियोंको भी रहना चाहिये ॥ ७ ॥ हेमाद्रि और ब्रह्माण्डमें लिखा है कि मङ्गलवृद्धिके लिये पितरोंका आभ्युदयिकश्राद्ध करनेमें अपसव्य होकर हाथके पितृतीर्थसे कर्मोंको नहीं करे, किन्तु सव्य और देवतीर्थसे ही श्राद्धकर्म करना और कुशोंके स्थानमें दूर्वाओंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ चन्द्रोदय एवं ब्राह्म और छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि आभ्युदयिकश्राद्ध करनेमें दही और मधुसे सनाहुआ शालिचावलोंका भात, तथा बदरी (बेरका फल

मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पिण्डान् श्रीफलसन्निभान् ।
दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विधिपूर्वकम् ॥ ९ ॥
भविष्ये—पिण्डनिर्व्वपणं कुर्यान्न वा कुर्याद्विचक्षणः ।
वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥ १० ॥
वृद्धपराशरः नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् ।
पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतम् ॥ ११ ॥

इदश्च 'मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम् । तत्र माता महाः सपत्नीकाः' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे गद्यरूपेण पाठात् । इति ॥ तच्च साङ्कल्पिकविधिना कर्तव्ये-स्मृतिसंग्रहे उक्तम्—

शुभाय प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत् ।
न षष्ठ्या यदि वा कुर्य्यान्महादोषोऽभिजायते ॥ १२ ॥
अनस्मद्वृद्धिशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् ।
अनाम्नामतिलैश्चैव नान्दीश्राद्धञ्च सव्यतः ॥ १३ ॥ इति ॥

या पत्ता) और यव (जवा) इनको एकही साथ मिलाकर वेल फलके समान चार पिण्ड तैय्यारकर विधिपूर्वक नान्दीमुख पितरोंके लिये देना ॥९॥ भविष्यपुराणमें कहाहै कि अपने कुलधर्मको देखकर वृद्धिश्राद्धमें जैसा होता हो पिण्ड देवे अथवा नहीं देवे ॥ १० ॥ वृद्धपराशरका वाक्य है कि, विश्वेदेव पूर्वक नान्दीमुख पितरोंके निमित्त कुशों (दूर्वा) का आसन प्रदक्षिण क्रमसे देना चाहिये ॥ ११ ॥ और पृथ्वीचन्द्रोदय तथा गरुडपुराणमें गद्यरूपसे लिखा है कि मातादि तीन,पितादि तीन और मातामहादि सपत्नीक तीन इस क्रमसे नव दैवत वृद्धिश्राद्ध करना । वृद्धिश्राद्ध यदि साङ्कल्पिक विधिसे कर्त्तव्य हो तो स्मृतिसंग्रहमें कहा है कि, शुभके लिये होनेवाले वृद्धिश्राद्धमें प्रथमाविभक्त्यन्तपद सङ्कल्प वाक्योंमें कहे । षष्ठ्यन्त पद कहना महान् दोषकारक होता है ॥ १२ ॥ और वृद्धि श्राद्धमें अस्मत् पद गोत्र, पितरोंके नाम, तथा वस्वादि स्वरूप नहीं कहे । तिलोंका प्रयोग नहीं करे ।

अत्र साङ्कलिपकश्राद्धे–समन्त्रकावाहनार्घाग्नौकरणपिण्डदानविकिराक्षय्यस्वधावाचनप्रश्नेत्येतत्सप्तकं वर्ज्यम् ॥

शास्त्रार्थप्रदीपे–

मण्डपोद्वासनात्पूर्वं नान्दीश्राद्धे कृते पुनः।
ये कुर्वन्ति नरा मोहादपमृत्युं व्रजन्ति ते ॥ १४ ॥
कृते नान्दीमुखे मध्ये न कुर्य्याद्वृद्धितयं पुनः।
राजाभिषेके कुर्वीत तथैव पुत्रजन्मनि ॥ १५ ॥

अथ वृद्धिश्राद्धकर्त्तुर्जीवत्पितृकत्वे संक्षेपनिर्णयः।

"जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तद्वर्गन्तु परित्यजेत्" इति न्यायेन जीवत्पितृकः स्वापत्यसंस्कारेषु मातृमातामहपार्वणयुतं नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। मातरि जीवत्यां मातामहपार्वणमेकमेव। मातामहे जीवति

यह माङ्गलिक श्राद्ध कहाता है. अतः नान्दीमुख श्राद्धको सव्यहीमें करना चाहिये ॥ १३ ॥ और साङ्कलिपक नान्दीश्राद्धमें समन्त्र आवाहन, अर्घदान अग्नौकरण, पिण्डदान, विकर, अक्षय्य, स्वधावचन और प्रश्न ये सातों कर्माङ्ग त्याज्य हैं। बाकी और सब किये जाते हैं ॥ शास्त्रार्थप्रदीपमें कहा है कि, नान्दीमुख करनेपर विना मण्डपोद्वासन किये जो मोहवश दूसरा नान्दीश्राद्ध करदेते हैं वे अपमृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ किसीकर्ममें एक नान्दीमुख श्राद्ध करके फिर दूसरा नान्दीमुख श्राद्ध नहीं करना चाहिये यदि बीचहींमें पुत्रका जन्म हो या राजाभिषेक हो तो पहिलेकी आवाहित षोडश मातृकाओंका विसर्जन करके दूसरा नान्दीश्राद्ध करना चाहिये। अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥

वृद्धिश्राद्धकर्ताके पिता या कोई वर्गादि जीवित हों तो वह कैसे श्राद्धकरेगा ? यह निर्णय अतिसंक्षेपमें यहां लिखते हैं जिस वर्गका आद्य जीवित हो उस वर्गको छोड देवे, इस न्यायके अनुसार इस प्रकार कर्म करे कि, जैसे जिसका पिता जीवित हो वह अपने पुत्रके संस्कारोंमें माता तथा नाना

मातृपार्वणमेकमेव । केवलमातृपार्वणे विश्वेदेवा न कार्याः । वर्गत्रयाद्येषु मातृपितृमातामहेषु जीवत्सु नान्दीश्राद्धलोप एव सुतसंस्कारेपूचितः । द्वितीयविवाहाधानपुत्रेष्टिसोमयागादिपुस्वसंस्कारकर्मसु "येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात् स्वयं सुतः" इत्यादिविशेपविचारस्तु निर्णयसिन्ध्वा- दिधर्मग्रन्थेपु द्रष्टव्यः ॥ इति ॥

अथ सांकल्पिकविधिनाभ्युदयिकश्राद्धप्रयोगः ।

तत्र सव्येन सर्वं कर्म कर्त्तव्यम् । ऋजव एव कुशाः दूर्वाः वा तिल- कार्ये यवाः कर्त्तव्याः । यजमानः मातृकापूजनं कृत्वा पुनर्मण्डपे समा- गत्य तत्रासने प्राङ्मुख उपविश्य स्वस्य दक्षिणतः पत्नीं तद्दक्षिणतः आदिका श्राद्ध करे । यदि माता भी जीवित हो तो नानाही आदिका श्राद्ध करे । केवल मातृश्राद्धमें विश्वेदेवोंको नहीं करे । यदि माता पिता और नाना ये तीनों वर्गादि जीवित हों तो पुत्रके संस्कारोंमें नान्दीश्राद्धका लोपही होजाताहै, अर्थात् वृद्धिश्राद्ध नहीं करना । यदि अपने कोई संस्कार जैसे द्वितीय विवाह या श्रौत स्मार्त अग्निस्थापन, पुत्रेष्टि सोमयागादि कर्मोंमें अपने पितादि जीवित हों तो जिन २ के नामसे पिता श्राद्ध करे, उनही २ के नामसे पुत्र भी आभ्युदयिकश्राद्ध करे । एवं और भी विचार जैसे किसीकी माता और नाना दोनोंही मरे हों और पिता जीवित हों तो वह अपने संस्कारोंमें पिताकी माता, पितामही, प्रपितामही, माताके पिता, पितामह, प्रपितामह, पिताके मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह सपत्नीक नान्दी- मुखोंके नामसे श्राद्ध करे, किन्तु माताके नाना आदिका नहीं करे इत्यादि औरभी ऐसेही विचारोंको निर्णयसिन्धु आदि अनेक धर्मग्रन्थोंमें देख निश्चय करना । इति ॥

साङ्कल्पिकविधिसे आभ्युदयिकश्राद्धप्रयोग—इस श्राद्धके सभी कर्म सव्य तथा कुशोंके स्थानमें दूर्वा और तिलके स्थानमें यवसे करना चाहिये । और इस श्राद्धमें सत्य वसु संज्ञक नान्दीमुख विश्वेदेव माने जाते हैं । यज-

पुत्रं कन्यां वा उपवेश्य धृतपवित्रपाणिःआचम्य प्राणायामत्रयं कुर्यात् । ततो हस्ते दूर्वायवजलान्यादाय ॐ अद्य पूर्वोच्चरितशुभपुण्यतिथौ असुकगोत्रः असुकशर्मा मम असुकनामपुत्रस्य कन्यायाः वा श्वः अद्य वा कर्तव्यविवाहाङ्गत्वेन साङ्कल्पिकेन विधिना नान्दीश्राद्धमहं करिष्ये इति संकल्प्य । ततः स्वस्याग्रत आस्तृतपत्रावल्यां दक्षिणोत्तरक्रमेण चतुष्कोष्टकस्थानानि आलेपनेनोपकल्प्य । तत्रोत्तरत आरभ्य एकैकस्मिन् कोष्टके पाद्यादिकं दद्यात् । यथा--पाद्यमादाय सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः युग्मरूपाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः १ । स्वगोत्राः मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः २ । स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ३ । द्वितीयगोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ४ । तत आसनदानम्--सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां युग्मरूपाणां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवन्तौ

मान मातृकापूजनसे निवृत्त हो पुनः मण्डपमें आकर पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ, अपने दक्षिणमें स्त्री और उसके दाहिने संस्कार्य पुत्र वा कन्याको भी बैठालकर हाथकी अंगुलियोंमें दूर्वाकी बनी पवित्री धारण कर तीन आचमन तथा प्राणायाम करे । और हाथमें दूर्वा यव जल लेकर 'ॐ अद्य०' इत्यादि वाक्योंमें जहां जिसका नाम हो कहता हुआ 'करिष्ये' पर्यन्त पूराकर जल छोडदेवे । फिर अपने आगे पत्रावलीपर ऐपनसे दक्षिणोत्तर क्रम चार कोष्ठक बनाय, इनमें उत्तर कोठेसे आरम्भ कर आगे कहे 'सत्यवसु' से 'वृद्धि' पर्यन्त आदि एकएक वाक्योंद्वारा पाद्यादि सभी वस्तुओंको एक एक कोठेपर क्रमसे देवे । जैसे हाथमें दूर्वा यव जल ले (पाद्य) चारों कोष्ठक पर ऐसेही

प्राप्नुवाव १ । स्वगोत्राणां मातृपितामहीप्रपितामहीनां नान्दीमुखीनां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम् तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव २ । स्वगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव ३ । द्वितीयगोत्राणां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव ४ ॥ ततो गन्धादिदानम्—गन्धाः पान्तु, अक्षताः पान्तु, पुष्पाणि पान्तु । एवं सर्वत्र गन्धादिकं दत्त्वा सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मरूपेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः १ । स्वगोत्राभ्यः मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः २ । स्वगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ३ । द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ४ ॥ (ततस्तण्डुलदधिमधुदूर्वाबदरीपत्राण्येकीकृत्य मिलितान्येव कव-

दूर्वाका चार आसन । और गन्धादि चढाकर, समर्पणका जल चारोंपर छोड

१ पिण्डदानादिरहितनान्दीमुखश्राद्धे सांकल्पिकविधिनापि कर्तव्ये, नान्दीमुखानां पितॄणां परमाह्लादकत्वान्माङ्गलिकद्रव्यात्वाच तण्डुलदधिमधुदूर्वाबदरीपत्राण्येकीकृत्य तेभ्यो गन्धादिदानान्ते दद्यादिति केषाञ्चिन्मतमित्यतोऽत्र कोष्ठकान्तर्गत एव लिखितोऽस्ति ।

पिण्डदान रहित नान्दी श्राद्ध सांकल्पिक विधिसे भी करनेमें नान्दीमुख पितरोंको परमाह्लादक और माङ्गलिक द्रव्य होनेके कारण तण्डुल दधि, मधु, दूर्वा और बदरी पत्रोंको एकत्रितकर गन्धादि देने बाद चारोंपर देवे । ऐसा किसीका मत है, अतः इसके चारों वाक्य मूलके कोष्ठकमें लिखा दिया है ॥

लकवलमात्राणि गृहीत्वा सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मरूपेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इमानि तण्डुलादीनि स्वाहा १। स्वगोत्राभ्यः मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इमानि तण्डुलादीनि स्वाहा २। स्वगोत्रेभ्य पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इमानि तण्डुलादीनि स्वाहा ३। द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यस्सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इमानि तण्डुलादीनि स्वाहा ४॥ इति चतुर्ष्वासनसमीपस्थानेषु धृत्वा हस्ते जलमादाय सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवादेवताः युग्मरूपाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः मद्दत्तैरतैस्तण्डुलदधिमधुदूर्वाबदरीपत्रैः कल्याणं नः संपद्यतां वृद्धिः १। स्वगोत्राः मातृपितामहीप्रपितामाह्यः नान्दीमुख्य ॐ भूर्भुवः स्वः मद्दत्तैरेतैस्तण्डुलदधिमधुदूर्वाबदरीपत्रैः कल्याणं नः संपद्यतां वृद्धिः २। स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुव स्वः मद्दत्तैरेतैस्तण्डुलदधिमधुदूर्वाबदरीपत्रैः कल्याणं नः संपद्यतां वृद्धिः ३। द्वितीयगोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः मद्दत्तैरेतैस्तण्डुलदधिमधुदूर्वाबदरीपत्रैः कल्याणं नः संपद्यतां वृद्धिः ४॥ ततो भोजननिष्क्रय-

देवे। फिर चावल दही मधु दूब और बेरके पत्तोंको एकत्रित कर इसमेंसे कवल कवलके अंदाज स्वाहान्त चरवाक्योंसे अलग अलग चारों कोष्ठकके आगे क्रमसे धर देवे, फिर हाथमें जल ले 'वृद्धि' पर्यन्तके चार वाक्योंसे चारोंके समीप छोडे और भोजननिष्क्रय दानके जो एक एक स्थानके निमित्त

१ नान्दीश्राद्धे अन्नाभावे आमम्, आमाभावे हिरण्यम्, हिरण्याभावे युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तान्ननिष्क्रयीभूतं यथाशक्ति किंचिद्द्रव्यमिति धर्मसिन्धुः।

दानम्—द्रव्यदूर्वायवजलान्यादाय सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मरूपेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तदास्यमानमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यादिकं वा अमृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः १। स्वगोत्राभ्यः मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तदास्यमानमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यादिकं वा अमृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः २। स्वगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तदास्यमानमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यादिकं वा अमृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ३। द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तदास्यमानमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यादिकं वा अमृतरूपेण स्वाहा संपद्यतांवृद्धिः ॥ ४ ॥ ततः सयवक्षीरमुदकदानम्—सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् १। स्वगोत्राः मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः प्रीयन्ताम् २। स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् ३। द्वितीयगोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाःसपत्नीकाः नान्दीमुखाःप्रियन्ताम् ॥ ४ ॥ अथाशिषो ग्रहणम्। तत्र वक्ष्यमाणमन्त्रपाठः—ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाःस्वस्तिनःपूषा-

दोदो ब्राह्मणोंके तृप्तिपर्यन्त भोजनार्थ अन्न अथवा उतनेका निष्क्रयभूत द्रव्य देनेका एक एक वाक्य लिखा है, हाथमें द्रव्य दूर्वा यव जल ले, क्रमपूर्वक एकएक वाक्यसे एक एक स्थानमें द्रव्य और जल छोड देवे। फिर दुग्ध और यवोंसहित जलदान क्रमपूर्वक चार वाक्योंसे चारोंके लिये कर हाथ जोड 'ॐ स्वस्तिन०' इस मन्त्रसे आशिष ग्रहण करे। पुनः हाथमें दूर्वा जल

त्विश्वश्ववेदाः । स्वस्तिनस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ इति ॥ ततो दक्षिणासंकल्पः—सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो युग्मरूपेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थम् इमां द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणामहं संप्रददे १। (यवमूलमार्द्रकम्) स्वगोत्राभ्यो मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं इमां द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणामहं संप्रददे २। स्वगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं इमां द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणामहं संप्रददे ३। द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः सपत्नीकेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं इमां द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणामहं संप्रददे ॥ ४ ॥ ततः प्रार्थना—

माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः ।
एते भवन्तु सुप्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम् ॥

ततो यजमानो वदेत्—नान्दीश्राद्धं संपन्नम् । द्विजाः—सुसम्पन्नम् इति वदेयुः । ततो वाजेवाजेति वाद्यं कृत्वा विसृजेत् ।

और दक्षिणा लेलेकर चारोंके संकल्प वाक्योंसे चारों स्थानोंमें देवे । फिर हाथ जोड 'माता पितामही०' आदि दो श्लोक कह फिर ब्राह्मणोंसे प्रार्थनापूर्वक पूछे कि 'नान्दीश्राद्धं संपन्नम्' नान्दीश्राद्ध पूराभया । तो ब्राह्मण उत्तर देवे कि सुसम्पन्नम्' अच्छी तरह पूराहुआ । तब बाजा बजातेहुये यजमान 'ॐ

१ नान्दीमुखोंकी दक्षिणा—मुनक्का आमला और अद्रक (आदी) है अथवा इनका मूल्य द्रव्य देना ।

ॐ व्वाजेंव्वाजेवतव्वाजिनोनोधनेषुविप्प्राऽअमृताऽऋतज्ञाः । अस्यमद्ध्वःपिबतमादयद्ध्वन्तृप्ताय्यातपथिभिर्देवयानैः ॥ इति विसृज्य यजमानो ब्रूयात् -अस्मिन्नान्दीश्राद्धे न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनान्नान्दीमुखप्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोऽस्तु । द्विजाः--अस्तु परिपूर्णः इति ब्रूयुः । ततो हस्ते जलमादाय यजमानः -अनेन कृतनान्दीश्राद्धेन नान्दीमुखाः पितरः कर्माङ्गदेवताः प्रजापतिश्च प्रीयन्ताम् । इति जलमुत्सृजेत् ।

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णः स्यादिति श्रुतिः ॥ १ ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ २ ॥

सर्वकर्मपरिपूरणकामः विष्णुं स्मरेत्।श्रीविष्णुः श्रीविष्णुः श्रीविष्णुः॥ इति पठेत् ॥ इति साङ्कल्पिकाभ्युदयिक श्राद्धप्रयोगः ।

उभयपक्षे समानमेतावन्मात्रं कृत्यम् । अतोग्रे कन्यापक्षीया वरागमनं प्रतीक्षेरन् । तथा वरपक्षीयास्तु वरेण सह कन्यागृहगमनायोद्युक्ता भवेयुश्च । इति ॥

व्वाजेव्वाजे० ' मन्त्रसे विसर्ज्जन कर हाथ जोड ब्राह्मणोंसे प्रार्थनापूर्वक ' अस्मिन् ' से ' पूर्णोऽस्तु ' पर्यन्त वाक्य कहे तो ब्राह्मणलोग ' अस्तु पूर्णः ' कह देवें । फिर यजमान हाथमें जल ले ' अनेन० ' से ' प्रीयन्ताम् ' पर्यन्त वाक्य कह जल छोडदेवे । और हाथ जोड ' प्रमादात्० ' आदि दो श्लोक कह कर्म परिपूर्ण होनेकेलिये तीन वार (श्रीविष्णुः) ऐसा नामोच्चारण करे ॥ इति साङ्कल्पिकआभ्युदयिक श्राद्धप्रयोगः ॥

इतना कर्म दोनों (वर और कन्या) पक्षमें समान होता है । इसके आगे कन्यापक्षवाले बरात आनेकी प्रतीक्षा करतेहुये ठहराने आदिकी तैयारी करें । और वरपक्षवाले वर तथा बरात ले जानेकी तय्यारी यथावकाश और यथोचित करें । इति ॥

वरगमने सामग्री ।

अथ वरगृहाद्वरेण सह गमनायावश्यकीयानि वस्तूनि-तत्र वरेण सह कन्यागृहगमनोत्सुकास्तत्पित्रादयस्त्वादौ विवाहकार्यसाधनार्थसामग्रीसंग्रहं कुर्युः । यथा वध्वै संप्रदानार्थं रक्षासूत्र पटम्, शुभिका (खार्जूरीमौली) सिन्दूरम् सिन्दूरायतने द्वे कौशेयाद्यनेकवस्त्राणि यथायोग्याभूषणादि अनेकसौभाग्यवस्तूनि च । तथा हवनकर्मार्थं गोघृतम् आम्रादिसमिधः कुशाः प्रणीतापात्रं स्रुवा आज्यस्थाल्यादिपात्राणि पूर्णपात्राद्यर्थं तण्डुलाः लाजाः लाजाहवनार्थं वंशनिर्मिते द्वे पात्रे तथैवानेककार्यसाधनार्थनारिकेलादिफलानि हरिद्राः पूगीफलानि कुङ्कुमाद्यालेपनम् गुडलड्डुकादिकम् इत्यादि पेटालके मञ्जूषायां वा सुसञ्चितं कुर्यात् । अथ आलेपनादिलेपितं सिन्दूराङ्कितं दधियुतं भाण्डम् एवमन्यदपि यथा केषांचित्कुले रतेः कामदेवस्य तथा गौर्याः शिवस्य

वरके साथ कन्यागृह लेजानेकी आवश्यकसामग्री—वर और बरात लेजानेकी तय्यारी करनेवाले पिताआदिको चाहिये कि, चलनेसे पहिले विवाहकार्य साधनार्थ आवश्यक सामग्रियोंको संग्रह कर लेवे । जैसे वधूको देनेकेलिये तागपाट (रेशमका बनाहुआ कलाईमें पहिननेका २, और गलेका १) मठिया २ खजूर पत्रादिकी बनीहुई मौली १, सिन्दूर कुंकुम, चकावर १, सिंधोरा १ (सिन्दूररखनेका) चुंदरी, कलाई और रेशमी सूटी आदि पहिननेके यथाशक्ति तथा उचितवस्त्र एवं देशकुलाचारके अनुसार आभूषण और सौभाग्यकी वस्तु । हवनकर्मार्थ—गोघृत, आम्रादिसमिध, कुशा, प्रणीतापात्र १, स्रुवा १, आज्यस्थाली १ आदिपात्र, पूर्णपात्रादि, कर्मकेलिये चावल, धानका लावा, और लावा हवनकरनेके दोपात्र जो सेजीवेनीके नामसे प्रसिद्धहै । और अनेकों कार्य साधनार्थ नारियर, सुपारी, हरदी, ऐपन आदि तथा गुड, लड्डू इत्यादि पेटारा या संदूकमें संचित करलेवे । और दही भरे मृत्पात्रको मुख बन्दकर ऐपन सिन्दूरसे सुशोभित १ दहेंगड, ऐसेही औरभी जो जिसके कुलाचारके अनुसार आवश्यक हों, जैसे किसीके कुलमें रति १, कामदेव १ तथा

चेति मूर्तिचतुष्टयम् पिष्टकादिभिर्निर्माय सिन्दूरकज्जलवस्त्रादिभिरलंकृत्य कन्यागृहं नयन्ति इत्याद्यनेककुलदेशाचारानुरूपं यथा स्यात् तथा सुसश्चितं कुर्युः । इति ॥

अथ कन्यागृहे वरगमनप्रयोगः ।

तत्र वरस्य मङ्गलस्नानम्—वरगमनमुहूर्त्तसमयात् किञ्चित्प्रागेव सुगन्धितैलोद्वर्त्तनादिलिप्ताङ्गं वरं (मङ्गलस्नानम् उष्णोदकशीतोदकादिभिर्यथा पूर्वोक्तं तथा) स्नापयित्वा मण्डपमानीय तत्र वरः प्राङ्मुखः वासः परिदधीत । तत्र मंत्रः—ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतञ्च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ इति ॥

अथ पादरञ्जनप्रयोगः–(नेछू इति लोके प्रसिद्ध) कर्म कुर्यात् ।

तद्यथा-मण्डप एव वरमाता अन्या वा काचित्सौभाग्यवती गौरी १, शिव १ अर्थात् दो स्त्री और दो पुरुषकी ४ मूर्ति पिष्टक या बुंदिया आदि चार वांसपात्रमें रख सनेभये आटासे सुन्दर बैठीमूर्ति बनाय सिन्दूर कज्जल वस्त्रादि से विचित्र सजाय (चार गौरेके नामसे प्रसिद्ध) कन्यागृहको वरातके साथ लेजाते हैं । इत्यादि जो हो सुसंचित कर लेवे ॥ इति ॥

अब वरगृहसे वरात चलनेका प्रयोग—कन्याके विवाहार्थ वरगृहसे वर और वरात चलनेके अवसरमें हरएक रीति होते समय उसकी गीत गाया करती हैं. जिनमें प्रथम वरका नहावन अर्थात् मङ्गलस्नान इस प्रकार होता है कि, वरयात्राका जो समय निश्चित है उससे कुछ पहिले वरके शरीर में उपटन और सुगन्ध तैल लगाय गरम तथा शीतल जलसे पहिले लिखे प्रकार मंगलस्नान करावे, यह स्नान घरकी पनभरिन या कोई भृत्य कराता है और उसे यथोचित नेग अर्थात् वस्त्राभूषणादि देते हैं तथा अनेकों स्त्रियां नेवछावर अर्थात् वरकी शिरपर घुमाय २ कुछ २ द्रव्य उसे देती हैं। इस प्रकार स्नान कर वर मण्डपमें आय 'ॐ परिधास्यै०' मन्त्रसे धोती पहिन लेवे । फिर नेछूकर्म इस प्रकार कि, मण्डपमें ही वरकी माता या कोई सौभा-

स्त्री पूर्वाभिमुखी ।कश्चिदुच्चासने स्वयमुपविश्य स्वस्याग्रतो हरिद्रारञ्जितकाष्ठासने पूर्वाभिमुखं वरञ्चोपवेश्य स्वस्याञ्चलेन वरशिर आच्छाद्य कयाचित्सौभाग्यवत्या नापितपत्न्यादिना लाक्षारसादिरञ्जनद्रव्यैर्वरपादौ स्वस्या अपि पादौ च क्रमेण विचित्रितरञ्जितौ कारयेत् ॥ इति ॥

ततोऽत्रैव सूत्राऽऽवेष्टनं (टिकुई फेरना इति लोके प्रसिद्धम्) कर्म केषाञ्चित्कुले भवति । तद्यथा—तथैव स्वस्थानस्थिता सौभाग्यवती आलेपनादिभिर्भूषितमेकं मुसलम् अधः ऊर्ध्वलम्बायमानं वरस्याग्रे भूमौ धृतं करेण दधाति । एवं स्थितयोस्तयोः परितः सप्त पञ्च वा सुभगाः स्त्रियो वराभिमुख्यः सुरञ्जितैकवस्त्रं द्वयोरुपरिभागे वितानवद्धृत्वा स्थिता भवन्ति । ततः कश्चित् मान्यपुरुषः तासां पश्चात् कटिप्रदेशभागे दक्षिणावर्तेन सूत्रावेष्टनं कुर्वन् सर्वासां सप्त पञ्च वा परिक्रमणं

ग्यवती स्त्री पूर्वमुख कुछ ऊँचे आसनपर बैठ अपने आगे वरको भी रंगीन पीढेपर पूर्वमुख बैठाल अपने अंचलसे उसका मुख सहित शिर ढांप लेवे। फिर सौभाग्यवती नाइन या कोई और ही सौभाग्यवती स्त्री, वर तथा वरके पीछे बैठी हुई स्त्रीके पावोंको किसी पात्रमें जलसे धोकर लाल महावरसे विचित्रित बनाकर ऐंडी रंग देवे, नाइनकोभी पूर्ववत् नेग नेवछावर देते हैं ॥

इसके पीछे अनेकों कुलमें टिकुई फेरना नामका सूत्रावेष्टन कर्म होता है । इस तरह कि, उसी अपने स्थान पर वरको आगे किये बैठीहुई सौभाग्यवती, ऐपन सिन्दूरसे सुरञ्जित एक मूसल वरके आगे भूमिपर खडाकर अपने हाथसे पकडे रहती है, और इन दोनोंके चारों तरफसे घेरकर सात वा पांच सौभाग्यवती स्त्रियां आपसमें सम्मुख हो खडी होती हैं और लाल या पीला नवीन वस्त्र अथवा चुंदरीको दोनोंके ऊपर चंदवासमान तान चारों तरफसे सब पकडे रहती हैं । तब वरका फूफा या बहनोई या कोईभी मान्य पुरुष इन सबके पीछेसे प्रदक्षिणा करताहुआ सभोंके पीठपर कच्चे तागेका सात

करोति । सूत्रवेष्टने ब्राह्मणपठनीयो मन्त्रः-ॐ रक्षोहा विश्वचर्षणिर-भियोनिमयोहते । द्रोणेसधस्थमासदत् । (य० अ० २६ मंत्र २६) इति ॥ ततो ब्राह्मणस्तासां शिरोभागेन वेष्टितसूत्राणि निस्सार्य दोरक-रूपं कृत्वा हरिद्रया रञ्जितं विधाय तस्मिन् दोरके चैकाम्रपत्रं परिवेष्टितं बद्ध्वा वरस्य दक्षिणहस्ते बध्नीयात् । तत्र मन्त्रः-ॐ बृहस्पतेपरिदी-यारथेनरक्षोहामित्राँ२अपबाधमानः । प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणोयुधाजयन्न-स्माकमेद्ध्यविितारथानाम् । (य० अ० १७ मं० ३६) इति सूत्रावेष्टन-प्रयोगः ॥

अथाङ्गरक्षकवस्त्रादिमुकुटपरिधानञ्च— ततोऽङ्गरक्षाद्युत्तरीयवासांसि वरः परिदधीत । तत्र मन्त्रः- ॐ यशसा मा द्यावापृथिवीयशसेन्द्राबृह-स्पती । यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ इति । ततः पुष्प-मालाम् । तस्य ग्रहणे मन्त्रः—ॐ या अदरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय । ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥ इति गृहीत्वा कण्ठे धारयेत् । धारणमन्त्रः--ॐ यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन संग्रथिताः सुमनस आवध्नामि यशसो मयि ॥ इति । ततः शिरोवेष्टनम् उष्णीषेण । तत्र मन्त्रः—ॐ युवा सुवासाः परिवीत या पांच फेरा करके लपेट देताहै और प्रति फेरामें ब्राह्मण ' ॐ रक्षोहा० ' मन्त्र पढ़ता है, इस टिकुई फेरनेका नेग मान्यको दिया जाता है । इन स्त्रियोंके पीठपर लपेटे हुये तागेको इनके शिरोभागसे निकाल हरिद्रासे रंजि-तकर आम्रकी पत्तीका एक टुकटा इसमें बांध, वरकी दाहिनी कलाईमें ' ॐ बृहस्पते० ' मन्त्रसे लपेटके बाँधदेवे ॥

अब अङ्गवस्त्रादि और मुकुट मौर) का धारण—वर इसप्रकार करे कि, कुरता, जामा, पटुका ' ॐ यशसा० ' मन्त्रसे (दरजीको यथोचित नेगनेछावर देना) पुष्पमाला (बद्धी) ' ॐ याअहरज्ज० ' मन्त्रसे लेकर

आगारस उ श्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ इति । ततो दक्षिणे वामे च कर्णे क्रमेण कुण्डले तथाऽन्यदपि यथासंभवं आभूषणानि वरः परिदधीत । प्रति° परिधाने मन्त्रः—ॐ अलङ्करणमसि योऽलङ्करणम्भूयात् । इति ॥ ततो वक्ष्यमाणमन्त्रावृत्त्या प्रथमं वामं ततो दक्षिणं चक्षुः कज्जलादिना रञ्ज्यात् । मन्त्रः—ॐ वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि । इति ॥ तत आदर्शे आत्मानं पश्यन् मन्त्रं पठति । मन्त्रः—ॐ रोचिष्णुरसि । इति ॥ ततः कुङ्कुमादिना मङ्गलतिलकं कुर्यात् । तत्र मन्त्रः- ॐ चक्षुर्दामहमक्षिभ्याम्भूयासँ्छसुवर्चामुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम् ॥ इति ॥ ततः खार्जूरपत्रादिना विरचितं पुष्पमालादिभिरलंकृतं विवाहे धार्यं मुकुटस्वरूपं सुशोभितं मौलम् उष्णीषोपरि बध्नीयात् ॥ तत्र मन्त्रः—

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुड़ध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनो हरिः ॥

'ॐ यद्यशो०' मन्त्रसे गलेमें पहिने । पगडी शिरमें 'ॐ युवासुवासा०' मन्त्रसे बांधे कुंडल (वाला) पहिले दहिने फिर बाँयें कानमें तथा और अङ्गोंमें भी यथासंभव आभूषण 'ॐ अलङ्करणमसि०' मन्त्रसे पहिने (सोनारको नेगनेवछावर) कज्जल पहिले बाँयीं फिर दाहिनी आंखमें 'ॐवृत्रस्या०' मन्त्र दो वार कह बहिन या बुआसे अंजन करावै (कज्जल लगानेवालीको नेग फूलकि थाली और यथोचित द्रव्यादि) आयिनामें अपनेको 'ॐ रोचिष्णुरसि' इतना कर देखलेवे (नाइको नेग) कुंकुमादि तिलक मान्य अथवा ब्राह्मणद्वारा ('ॐ चक्षुर्दा०' मन्त्रसे माथेमें लगावे (चन्दन लगानेकानेग) मौल कुलाचारके अनुसार खजूरपत्र आदिसे बना और पुष्पमालादिसे सजाभया विवाहमें धारण कियाजानेवाला सुन्दर मुकुट 'मौर' शिरमें पगडीपर (ॐ मङ्गलं०) श्लोक कह ब्राह्मण या माली बांध देवे (मालीको नेगनेवछावर)

ततः गोधूमतुषतण्डुलकणसैन्धवमिश्राः राजिकाः सर्षपान् वा काचित्सौभाग्यवती स्त्री किञ्चित्किञ्चिद्धस्तेनादाय वरोपरि भ्रामयित्वा शण्डामर्का इति ब्राह्मणपठितमन्त्राभ्याम् अग्नौ प्रक्षिपेत्। ॐ शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अखिलन्न निमिषः किंवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपाऽरूणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ २ ॥ इति द्वाभ्यां द्विवारम्, तृतीयं तूष्णीं क्षिपेदिति। ततो वरोपरि छत्रम् १, पार्श्वयोर्दण्डे २, चामरे २ च जनाः कुर्युः तत्र वरपठनीयो मन्त्रः–ॐ बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मानो मामन्तर्धेहि ॥ एवम् अन्यान्यपि यथास्वकुलाचारं तथापि वरः कर्म कृत्वा पद्भ्यामुपानहौ प्रतिगृह्णीयात्। तत्र मंत्रः–ॐ प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मापातम् ॥ इति ॥ अथ वरप्रस्थानम्- ततो द्वारं निर्गच्छन् "गणपति स्मरणं कुर्यात्–

राइ नोन उतारना- अर्थात् गेहुंका चोकर, चावलोंकी किनकी बुका भया सेंधानमक और राई अथवा सरसों, इन सभोंको इकट्ठा मिलाय, वरकी बहिन या बुआ अथवा और कोई सौभाग्यवती स्त्री इसमेंसे थोडा २ अपने हाथमें वरके शिरपर घुमाय 'ॐ शण्डामर्का' से 'स्वाहा' पर्य्यन्त ब्राह्मणके पढनेपर अग्निमें छोडदेवे, फिर ऐसेही वरके शिरपरसे घुमाय 'ॐ अखिलन्न०' से 'स्वाहा' पर्य्यन्त कहनेपर अग्निमें दोबारा छोडे, और तीसरीबार विना मन्त्रहीके शिरपर घुमाय अग्निमें छोड देवे (राइ नोन उतारनेवालीको नेग दिया जाता है) फिर वरके दाहिने वायें दो मनुष्य दो चमर ढुरावें तथा एक मनुष्य वरके ऊपर छत्र लगावे और वर 'ॐ बृहस्पते०' मन्त्र पढे। ऐसेही और भी इस स्थानमें करनेका जो कुलाचार जिसके यहां होता हो वह भी सब पूराकर मण्डपसे बाहर चलते समय पावोंमें नवीन जूतेकी जोडी 'ॐ प्रतिष्ठेस्थो०' मन्त्रसे पहिन, चलता हुआ 'ॐसुमुखश्चैक०' इत्यादि श्लोक वर

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥
वि ारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

वैन्यं पृथुं हैहयमर्जुनञ्च शाकुन्तलेयं भरतं नलञ्च ।
एतान् नृपान् यः स्मरति प्रयाणे तस्यार्थसिद्धिः पुनरागमश्च । इति ॥

ततो द्वारं गतो वरस्तत्र यानादावारुह्य यथादेशकुलाचारं तत्रापि वरमात्रादिकर्तृकविधिं विधाय, सुरञ्जितदधिभाण्डादिसर्वसाम ग्रीमग्रतः कृत्वा गमनोत्सुकैः पित्रादिभिरिष्टमित्रबान्धवैश्च सहितो गानवाद्यपुरःसरो विवाहार्थं कन्यागृहगमनं कुर्यात् ॥

इति श्रीचिकित्सकचूडामणि पं ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठिविरचितविवाहसोपाङ्गविधौ वरगृहद्वारगमनप्रयोगः ॥

स्वयं पढे, अथवा ब्राह्मण द्वारा सुनता हुआ द्वारपर जावे । इस प्रकार द्वारपर पहुँच देशकुलाचारके अनुसार पालकी आदि जो सवारी हो उसपर बैठे और यहां भी वरकी माता आदि स्त्रियां जो विधिविधान करती हैं वह भी हो जाने पर वरपिता पहिलेहीका सजाया हुआ दधिकलश (दहेंगड) आगे कर और सभी आवश्यकीय सामग्रियोंको साथ लियेहुये इष्ट मित्र बान्धवादि सभी बराती तथा विविध प्रकारके बाजे आदिसे बरात सजाकर कन्यागृहको प्रस्थान करे ॥

इति श्रीबालबोधिनीटीकायां वरगृहद्वारगमन (बरातजानेका) प्रयोगः ॥

इति पूर्वार्द्धम् समाप्तम् ॥

श्रीः ॥

अथोत्तरार्द्धः ।

अथ कन्यागृहे वरस्यागमनप्रयोगः ।

तत्र कन्यागृहद्वारे कर्त्तव्यता— तत्रादौ वरागमनकालात् किञ्चित् प्रागेव कन्यापिता सुविचित्रितं स्वगृहद्वारं कदलीस्तम्भादिभिस्तथा माङ्गलिककलशद्वयादिभिश्च सुशोभितं विधाय तत्रैव गोमयोपलिप्तायां विचित्रचूर्णैर्लिखिताष्टदलायां द्वारसमीपाग्रभूमौ पूजनादिसामग्रीं संयोजयेत् । यथा वरललाटे तिलकादिकरणार्थं कुङ्कुमाक्षतपुष्पमालासहितां आरार्तिक्यस्थालीम्, तथा येषां कुलेऽत्र गणेशकलशादिपूजनमपि द्वारे भवति तत्र गणेशकलशस्थापनपूजनसामग्रीं यज्ञोपवीते ताम्बूलानि च सुसज्जितानि कुर्युः । अथ स्वागतकरणम्—ततो वरादयः समीपमागता इति ज्ञात्वा कन्यापिता स्वबन्धुबान्धवेष्टमित्रैस्साकं स्वागतकरणाय तान् प्रति गत्वा शिष्टानां वरसहागामिनां संमिलनाभिवादना-

अब कन्याके गृह बरात आनेका प्रयोग लिखतेहैं— तहां प्रथम स्वागतकरण अर्थात 'अगवानी' का विधान यह है कि, बरात आनेसे कुछ पहिलेही कन्याके पिता अपने गृहद्वारमें केलेके खम्भे और माङ्गलिक कलशें बन्धनवार आदि सुशोभित कर द्वारके आगेकी भूमि गोमयसे लिपीभईमें विचित्र चूर्णपिसान आदिसे सुंदर अष्टदल चौक आदि बनाय उसी स्थानमें पूजनादि सामग्रियोंको धरना, जैसे वरके तिलकादि करनेको कुंकुम, अक्षत, पुष्पमालासहित और चौमुखी वर्त्तीवाले दीपसहित आर्तीकी थाली तथा जिस कुलमें द्वारपूजनके समय गणेशकलशादि पूजन भी होते हैं, वहां कलशादि स्थापन पूजन सामग्री और यज्ञोपवीतका जोडा और पानके बीडे आदि भी तय्यार रखे ॥ इनके अनन्तर बरात समीप आई जान, कन्या पिता अपने बन्धु बान्धव इष्ट मित्रोंको साथ लिये स्वागत करनेके अर्थ बरातमें आगेसे जाय वरके साथ आये हुये ब्राह्मण समधीआदि शिष्टोंसे मिलना और

दिकं कुर्वन् पूजाद्वारमानयेत् । तत्रापि द्वाराऽट्टालिकादिस्थिताः स्त्रियः मङ्गलगानं गायन्त्यः सर्वेषामुपरि लाजापुष्पाद्यवकिरणं कुर्वन्त्यः सम्मान कुर्युः ॥

अथ द्वारपूजनप्रयोगः ।

तत्रादौ कन्यापिता वरललाटे कुङ्कुमादिनाऽक्षतयुतं तिलकं कुर्यात् । तत्र मन्त्रौ—ॐ युञ्जन्तिं ब्रध्नमंरुषञ्चरंन्तम्परितस्तथुषंः । रोचन्तेरोचनादिवि ॥ १ ॥ युञ्जन्त्यंस्यकाम्म्याहरीव्विपंक्षसारथें । शोणांधृष्ष्णूनृवाहंसा ॥ २ ॥ (य० अ० २३ मंत्र ५,६) इति ॥ ततः पुष्पमालाञ्च परिधाप्य चतुर्दिक्प्रज्वलितवर्त्तिदीपयुतां स्थालीमुत्थाप्य आरार्तिकं कुर्यात् । तत्र मन्त्रौ—ॐ आयुष्ष्यंव्वर्च्चस्य ꣳ रायस्प्पोषमौद्भिदम् । इदꣳहिंरंण्ण्यंवर्च्चस्वज्जैत्रायाविंशतादुमाम् ॥ नतद्रक्षांꣳसिनपिंशाचास्तंरन्तिदेवानामोजंःप्प्रथमजꣳह्येतत् । योव्विभर्तिदाक्षायणꣳहिरंण्ण्यꣳ सदेवेषुकृणुतेदीर्घमायुःसमनुष्ष्येषुकृणुतेदीर्घमायुः (य० अ० ३४ मं० ५०, १) इति ॥ अत्र केषाञ्चित्कुलेत्वेतावन्मात्रं भवति । केषाञ्चित्कुले स्वस्तिवाचनपूर्वकं गणेशकलस्थापनंपूजनादिकं चापि भवति । तथैवात्र

प्रणामादि द्वारा स्वागतकरता हुआ वरादिकोंको अपने द्वारपर पूजास्थानमें ले आवे । द्वारपर भी कोठे आदिमें मङ्गलगीत गाती स्त्रियाँ वरातियोंपर धानके लावे पुष्प आदिकी वर्षा करतीहुई सभोंका सम्मान करें ॥

अब द्वारपूजनप्रयोग लिखते हैं—द्वारपर आनेसे कन्याका पिता वरके माथामें 'ॐ युञ्जन्ति०' इन दो मन्त्रोंसे कुंकुम अक्षतका टीका लगाय और पुष्पमाला पहिनायकर चौतरफा जलतीहुई बत्तियोंके दीपकवाली थालीसे 'ॐ आयुष्यं०' मन्त्रसे आरती उतारे ॥ (द्वारपर किसीके यहां इतना ही होताहै और किसी कुलमें स्वस्ति वाचनपूर्वक गणेशकलश स्थापन पूजनादिभी

प्रयोगो लिखितः ॥ स्वस्तिवाचनं यथा—ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः ॥ स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु (य० अ० २५ मंत्र १८) ॥ १ ॥ पृषदश्वामरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानोविदथेषुजग्ग्मयः । अग्निजिह्वामनवःसूरचक्षसोविश्वेनोदेवाऽअवसागमन्निह (य० अ० २५ मंत्र२०) ॥ २ ॥ भद्रङ्कर्णेभिःशृणुयामदेवाभद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितंयदायुः (य० अ०२५ मं० २१) ॥ ३ ॥ शतमिन्नुशरदोऽअन्तिदेवायत्रानश्चक्राजरसन्तनूनाम् ॥ पुत्रासोयत्रपितरोभवन्तिमानोमद्ध्यारीरिषतायुर्गन्तोः (य० अ०२५मं२२) ॥ ४ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता सपितासपुत्रः ॥ विश्वेदेवाऽअदितिःपञ्चजनाऽअदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् (य० अ० २५ मं० २३) ॥ ५ ॥ दीर्घायुत्वायबलायवर्चसे । सुप्रजास्त्वायसहसाऽअथोजीवशरदःशतम् ॥ ६ ॥ द्यौःशान्तिरन्तरिक्षᳬशान्तिः पृथिवीशान्तिरापःशान्तिरोषधयःशान्तिः ॥ वनस्पतयःशान्तिर्विश्वेदेवाःशान्तिर्ब्रह्मशान्तिःसर्वᳬशान्तिःशान्तिरेवशान्तिः सामाशान्तिरेधि (य० अ० ३६ मं० १७) ॥ ७ ॥ यतोयतः समीहसेततोनोऽअभयङ्कुरु । शन्नः कुरुप्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः (य० अ० ३६ मं० २२) ॥ ८ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ॥ सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु ॥ ततो वरः कन्यापिता च द्वावपि सहैव गणपत्यादिपूजनं द्वारपर होता है सो यहां ऐसाही प्रयोग लिखते हैं) पहिले स्वस्तिवाचन 'ॐ स्वस्तिन इन्द्रो०' से 'सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु' पर्य्यन्त कहकर तदनन्तर वर

कुर्यातामु । तद्यथा—पूजास्थाने स्वस्वासने स्थितौ आचम्य कुशानीत-जलैः—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु इत्यात्मानं पूजाद्रव्याणि चाभिषिच्य द्रव्याक्षतान् गृहीत्वा द्वावपि गणेशस्मरणं कुर्याताम्।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥
अभिप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि नारायणि नमोस्तु ते॥

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। गौर्यै नमः। कुलदेवेभ्यो नमः। ग्रामदेवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ इत्यक्षतादीन् प्रक्षिप्य ततो वरः कुशादीन्यादाय ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः तत्सत् अमुक-मासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुक-शर्म्मा स्वकीयविवाहाङ्गभूतद्वारपूजनाख्ये कर्मणि शुभतासि-द्ध्यर्थं कन्यागृहद्वारे गणेशकलशस्थापनपूजनादिकर्माहं करिष्ये।

और कन्यापिता पूजास्थानमें अपने अपने आसनों पर बैठ दोनोंही आचमन तीन तीनबार कर कुशसे जल 'अपवित्रः०' इत्यादि 'पुनातु' पर्य्यन्त कह अपने और पूजाकी सामग्रियोंपर छिडक, हाथमें द्रव्याक्षत ले 'ॐ सुमुखश्च०' इत्यादि श्लोकों और वाक्योंको पढ गणेशका स्मरणकर अक्षतादि छोड देवे। तब वर हाथमें कुश जल ले 'ॐविष्णु' इत्यादि कह अमुकस्थानोंमें वर्तमान मासादिकोंका नाम लेता हुआ 'कर्माहं करिष्ये' पर्य्यन्त कह संकल्प करे॥

इति । कन्यापितापि कुशादीन्यादाय मासादिकमुक्त्वा अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा मम अमुकीनाम्नीकन्यायाः विवाहाङ्गभूतद्वारपूजनाख्ये कर्मणि शुभतासिद्ध्यर्थं वरागमनावसरे स्वकीयद्वारे गणेशादीनां पूजनमहं करिष्ये । इति संकल्प्य ततो द्वावपि वरवृत्तिप्रयोगोक्तप्रकारेण कलशगणेशगौरीग्रहाणां स्थापनपूजनादिकं कुर्याताम् ॥ ततो वरः कन्यापिता च पृथक्पृथक् यथावकाशं ब्राह्मणान् संपूज्य दक्षिणां च संकल्प्य दद्याताम् । तद्यथा—ॐ अद्य पूर्वोच्चारितशुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अमुकामुकगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः स्वस्तिवाचकेभ्यो यथाशक्ति दक्षिणां यथाभागं विभज्याहं संप्रददे । इति ॥ ततो ब्राह्मणाः दक्षिणां गृहीत्वा ॐ स्वस्ति इति ब्रूयुः ॥ ततः कन्यापिता ॐ वरचरणाभ्यां नमः । इति वरपादौ प्रक्षाल्य तस्य ललाटे अक्षतसहितं कुंकुमादितिलकं ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम ॥ इति मन्त्रेण कृत्वा पुष्पमालां च परिधाप्य हस्ते यथाशक्ति द्रव्यादिकं कुशजलसहितमादाय ॐ अद्य पूर्व्वोच्चारितशुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा मम अमुकनाम्नीकन्यायाः विवाहाङ्गभूतद्वारपूजने अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे वराय

कन्यापिता भी ऐसेही 'ॐ विष्णु' इत्यादि कहता हुआ 'पूजनमहं करिष्ये' पर्यन्त दूसरा संकल्प कर पुनः दोनोंही वरवृत्तिप्रयोगमें लिखे अनुसार कलश गणेश गौरी और ग्रहोंका स्थापन पूजनादि संपूर्ण करनेके पश्चात् वर और कन्यापिताभी यथाशक्ति अलग अलग ब्राह्मणोंका पादपूजनादि कर दक्षिणा 'ॐ अद्य०' इत्यादि कह अमुकके स्थानमें नामोंको कहता हुआ 'संप्रददे' पर्यन्त संकल्प कर ब्राह्मणोंको देवे। तथा ब्राह्मणलोग दक्षिणा पाय "ॐ स्वस्ति" ऐसा उच्चारण करे ॥ तदनन्तर कन्यापिता वरके चरणोंको 'ॐ वरचर०' इस वाक्यसे धोय और माथामें 'ॐ गन्धद्वारां' मन्त्रसे कुंकुमादिका तिलक अक्षत लगाय, पुष्पोंकी माला पहिनाय, हाथमें कुश जल और यथाशक्ति द्रव्यादि ले 'ॐ अद्य पूर्व्वोच्चारित०' इत्यादि कह अमुकस्थानमें अपना

यथाशक्ति द्रव्यादिकं तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति द्रव्यादिकं वराय दद्यात् ॥ अथ द्वारयज्ञोपवीतम् (दुर्गा जनेऊ इतिलोके) कन्याभ्राता तदभावे पितैव वा द्रव्याक्षतकुशजलयुते यज्ञोपवीते हस्तेनादाय ॐ अद्य पूर्व्वोच्चरितशुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा अमुकनाम्न्याः मम भगिन्याः कन्यायाः वा विवाहाङ्गभूतद्वारपूजनावसरे अमुकगोत्राय अमुकशर्म्मणे वराय द्रव्यादिसहिते यज्ञोपवीते तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति वरहस्ते दद्यात् ॥ ततो वरः यज्ञोपवीते गृहीत्वा त्रिभिः पञ्चभिः सप्तभिर्वा ब्राह्मणैः करधृते यज्ञोपवीते ॐ यज्ञोपवीतम्परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं पतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ इति मन्त्रेण परिदधीत । यज्ञोपवीतपरिधानान्ते द्विराचम्य वरः तथा कन्याभ्राता पिता वा द्वौ एव उत्तिष्ठन्तौ परस्परकण्ठसम्मिलनं ताम्बूलप्रदानं च कुर्याताम् । इति ॥ ततः उपविश्य वरः हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा—

ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥
गणपत्याद्यत्रावाहिताः सर्वे देवाः स्वस्वस्थाने गच्छत ।

नामादि कहता हुआ 'संप्रददे' पर्यन्त संकल्प कर वरको देदेवे ॥ तथा कन्या का भाई, या भाई नहीं होनेसे पिताही अपने हाथमें कुशजलसहित द्रव्यादि और यज्ञोपवीत ले 'ॐ अद्य पूर्व्वोच्चरित' इत्यादि कह अमुक स्थानोंमें अपना नामादि और 'मम' के बाद भाई होतो 'भगिन्याः' पिता हो तो 'कन्यायाः' कहता हुआ संप्रददे पर्यन्त संकल्प कर वरको देवे । वर द्रव्य तथा यज्ञोपवीतको लेकर तीन, पांच, या सात ब्राह्मणोंद्वारा उस यज्ञोपवीतको 'ॐ यज्ञोपवीतं०' इस मन्त्रसे धारणकर दो बार जलका आचमन कर लेवे । तदनन्तर कन्याभ्राता या पिता और वर दोनोंही खड़े होकर एक दूसरेसे गले मिले और तांबूल देवे पुनः वर अपने स्थानपर बैठ हाथमें अक्षत ले 'ॐयान्तु

इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य गणेशादीन् विसृजेत् । ततः ॐ सर्वेभ्योदेवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः । इति प्रणम्योत्तिष्ठेत् ॥

इति विवाहसोपाङ्गविधौ द्वारपूजनम् ॥

अथ जनवासनिवासः ।

कन्यापक्षीयाः समादरं कुर्वन्तः वरसहितान् सर्वान् वरसहागतान् पूर्वनियतयथायोग्यजनवासस्थाने समानीय निवासयेयुः ॥ अथ च कन्यापक्षीयाः नापितादयस्तेषां पादप्रक्षालनादिसेवां च कुर्युः (गोड-धोवा इति लोके प्रसिद्धः) अत्र केषाञ्चित्कुले अस्मिन्नेवावसरे मङ्गल-गानं वाद्यं च कुर्वन्त्यः कन्यापक्षीयाः स्त्रियः जनवासस्थानं वा तत्समी-पमेवागताः मधुपर्कस्वरूपं सितादधियुतं कांस्यपात्रं वराय प्रेषयन्ति । वरोऽपि तदादाय दधिसितादिकं प्राश्नाति ॥(वरकी भाजी इति लोके प्रसिद्धः) एवं कृत्वा गृहं पुनरागच्छन्ति ॥ अतोऽग्रे शिष्टाचारप्रयोगः कर्त्तव्यः ॥ इति वरागमनम् ॥

अथ शिष्टाचारप्रयोगः ॥

जनवासस्थाने वरादिकान् सुस्थितान् ज्ञात्वा इष्टमित्रपण्डितब्राह्मणैः सहिताः कन्यापित्रादयस्तत्र गताः वरापितृसभायां संस्थिताः आदौ

देव० ' इससे गणेशादिकोंपर अक्षत छोडता हुआ सबका विसर्जन कर देवे और हाथ जोड ' ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो० ' इन वाक्योंद्वारा सबको प्रणामकर उठे ॥ इति द्वारपूजन ॥

इसके बाद वर और सभी वरातियोंको कन्यापक्षवाले वडे आदर संमानपू-र्वक पहिलेहीसे निश्चित किये हुये जनवासस्थानमें लेजाकर यथोचित सभीको ठहरावें । और वरातियोंका कन्यापक्षके नापितादि जलसे परातमें गोडधोवा आदि यथोचित सेवा आरंभ करे । किसीकिसी कुलमें रीतिहै कि, इसी अव-सरमें कन्यापक्षवाली स्त्रियां मंगलगीत गातीवजाती जनवासस्थान या उनके समीपमें जाय, कांसेकी थालीमें दही और चीनी धरके वरको मधुपर्कस्वरूप भेजती हैं और वरभी उसको लेकर प्राशन करता है (इसको वरकी भाजी

कन्यापक्षीयास्ततो वरपक्षीयाः परस्परप्रशंसात्मकान् कथनोपकथनस्वरूपान् शिष्टाचारश्लोकान् अर्थसहितान् वदन्ति; एवं व्याकरणशास्त्रादिविषयेऽपि प्रश्नोत्तराणि परस्परं पण्डितास्तत्र कुर्वन्ति । एवमेव यथाकुलदेशाचारेण प्रतिदिनं संबन्धिनिमन्त्रणावसरे भवति, अथवा वरादीनां स्वगृहगमनसमये त्ववश्यं भवति । अतोऽत्राग्रे अन्वय–भाषार्थ–सहिताः कन्यापक्षीयवरपक्षीयोभयपक्षीयाश्च कतिपयसुगमश्लोकाःलिखिताः संति । तेषां मध्येऽर्थानुरूपमवसरं ज्ञात्वा वक्तव्याः । इत्यादि यथावकाशं कृत्वा कन्यापित्रादयः स्वगृहमागत्य वरसहागतानां सर्वेषां भोजनादिसुप्रबन्धं तथा स्वकुलदेशाचारेणाऽग्रे कर्त्तव्यकर्मणां प्रबन्धं कुर्वन्तु, येन शुभे लग्ने ध्रुवं कन्यायाः पाणिग्रहणं भवेत् । इति ॥ इति शिष्टाचारप्रयोगः ॥

लोकमें कहते हैं) इस प्रकार करके अपने घर स्त्रियां लौट आती हैं ॥ इसके उपरान्त शिष्टाचारप्रयोग होता है ॥ इति वरागमन प्रयोगः ॥

शिष्टाचार प्रयोग इस प्रकार है कि, वर आदि सभी बरातियोंको जनवासमें सुस्थित जान, कन्यापिता इष्ट मित्र बान्धव और पंडितोंको साथ लिये जनवासके वरपितृ सभामें जाय उपस्थित होते हैं । और वहां सब बैठे हुए पहिले कन्यापक्षवाले पुनः वरपक्षवाले एक दूसरेके प्रशंसात्मक शिष्टाचारके भावार्थ सहित श्लोकोंको कहते हैं । तथा व्याकरणादिशास्त्रविषयोंकाभी प्रश्नोत्तर पण्डितलोग करते हैं ॥ ऐसेही कुलदेशाचारानुसार प्रतिदिन संबंधीको निमन्त्रण करनेकेअवसरमें होताहै, अथवा वरादिकोंके विदा होकर अपने गृह जानेके समयमें तो अवश्यही होताहै । इसीसे यहां आगे अन्वय और भाषार्थसहित कन्या तथा वर दोनोंही पक्षोंके योग्य यथावसर कहनेके श्लोकोंको लिख दिये हैं, तिनमेंसे आवश्यकतानुसार कहना चाहिये । इस प्रकार यथावकाश शिष्टाचार कर कन्याके पिता आदि अपने गृह आय बरातियोंके भोजनादिका सुप्रबन्ध तथा अपने कुलदेशाचारके अनुसार आगे किये जानेवाले कर्मोंको इस प्रकार करतेजावें कि, जिसमें अवश्यही शुभलग्नके समय कन्याका पाणिग्रहण कर्म होजावे ॥ यह शिष्टाचार प्रयोग पूरा हुआ ॥

कन्यावरपक्षीयाः श्लोकाः ॥

शिष्टाचारार्थसान्वयभाषार्थयुक्ताः कतिपयसुगमश्लोकाः ।

तत्र-उभयपक्षीयः ।

एतत्सभान्तर्गतपण्डिताग्रे वक्तुं समर्थापि न भारती मे ।
तथापि श्रीमद्भवतः प्रसादाद्ब्रवीमि पद्यं खलु धाष्टर्यतोऽहम् ॥ १ ॥

अन्वयार्थौ–(हे संबन्धिन्, एतत्सभान्तर्गतपण्डिताग्रे मे भारती, वक्तुम् अपि न समर्था) हे संबंधीजी ! इस आपकी सभामें उपस्थित विद्वानोंके सम्मुख यद्यपि मेरी वाणी कुछभी कहनेके समर्थ नहीं है (तथापि धाष्टर्यतः अहम् श्रीमद्भवतः प्रसादात् खलु पद्यम् ब्रवीमि) तोभी यह मेरी ढिठाई है और यह भी निश्चय है कि, आपहीकी कृपा है जो मैं श्लोक कहनेका साहस करता हूं ॥ १ ॥

कन्यापक्षीयः ।

वदन्ति लोकाः सुतजन्म हर्षदं तथापि कन्याजनिरेव शस्यते ।
यतस्तदर्थं द्विजवंशकेतवः समागता मुक्तिपदस्य हेतव ॥ २ ॥

(हे सम्बन्धिन्, लोकाः सुतजन्म एव हर्षदं वदन्ति) हे समधीजी ! संसारमें सभीलोग ऐसा कहते हैं कि, पुत्रका ही पैदा होना हर्षित करता है (तथाऽपि कोऽर्थः पुत्रजन्मतः अपि कन्याजनिः एव शस्यते अहमिति मन्ये) सो पुत्रजन्म होनेसेभी कन्याकाही जन्म होना परम श्रेष्ठ होता है, हम ऐसाही मानते हैं क्योंकि (यतः कोऽर्थः कन्याजन्मन एव कारणात् एते भवत्सहागताः मुक्तिपदस्य हेतवः द्विजवंशकेतवः समागताः) जिस कन्या जन्म होनेके ही कारण ये सब आपके संगमें आयेहुए द्विजवंशमें परमोत्तम पताकारूप जिनके शुभागमनसे अब हम सब अवश्य ही मुक्तिपदको प्राप्त हो जावेंगे यह हम सबोंका परम भाग्य है ॥ २ ॥

वरपक्षीयः ।

दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीयकीर्तिं कर्णौ च तृप्तौ न तु चक्षुषी मे ।
तयोर्विवादं परिहर्तुकामः समागतोऽहं तव दर्शनाय ॥ ३ ॥

(हे सम्बन्धिन्, भवदीयकीर्तिं दूरे एव श्रुत्वा मे मम कर्णौ तृप्तौ परन्तु चक्षुषी न) हे संबन्धीजी ! आपके कीर्तिको दूरहीसे सुनकर मेरे कान तो अत्यन्तही तृप्त होगये थे किन्तु नेत्रोंको देखनेकी लालसा बढी और व्याकुल हो कानोंसे विवाद आरम्भ किया (तयोः कर्णनेत्रयोः विवादं परिहर्तुकामः अहं तव दर्शनाय समागतः) अब कर्ण और नेत्रोंके इस विवादको मिटानेके निमित्त यहां आये और आपका दर्शन नेत्रोंको भी होगया जिससे अब दोनों ही तृप्त होकर प्रसन्न होगये ॥ ३ ॥

कन्यापक्षीयः।

पाकं पर्युषितश्च पूर्वदिवसे पीयूषभोक्त्रा त्वया
भुक्तं मानविवर्जितं ह्यलवणं शाकं पयोऽन्नं त्वलम्।
हे विप्रेन्द्र ममावरस्य वचनं श्रुत्वेति तद्धीयतां
भोक्तव्यं पुनरद्य वेश्मनि समं मित्रैर्विधेया स्थितिः ॥ ४ ॥

(हे संबंधिन्, पूर्वदिवसे पीयूषभोक्त्रा त्वया पर्य्युषितं पाकम् अलवणं शाकं पयः अन्नन्तु मानविवर्जितं अलं भुक्तम् हे विप्रेन्द्र ! मम अवरस्य इति वचनं श्रुत्वा तद्धीयताम् पुनः एव अद्य भोक्तव्यम् मित्रैः समं वेश्मनि स्थितिः विधेया) हे समधीजी ! आप सब सदाही समयपर अमृतके समान उत्तम भोजन करनेवाले हैं किन्तु पूर्वदिन मेरे यहांका बासी भोजन और लवण रहित शाकादि अन्न और जल जो कुसमयमें और मानरहित मिला उसको भी आप लोगोंने मेरे ऊपर प्रेम प्रदर्शित करतेहुये पूर्णरूपसे ग्रहण किया जिससे मैं परम हर्षित हूं और प्रार्थना करता हूं कि, मुझ गरीबपर दयाकर इष्ट मित्रों सहित आज फिरभी आप मेरे यहां टिककर भोजन आदि जो सेवा मैं कर सकूं उसको स्वीकारकर मुझे कृतार्थ करें ॥ ४ ॥

वरपक्षे।

प्राचुर्येण तृणादिभिः पशुगणा मिष्टान्नपानादिभि-
र्बाला वृद्धजना मनोज्ञवचसा काव्यादिभिः सज्जनाः।

स्त्रीणां गीतकटाक्षहास्यविलसद्भावैर्युवानो नरा-
स्तेषां धान्यधनादिभिश्च विविधैः सर्वे कृतार्थीकृताः ॥५॥

(हेसम्बन्धिन् प्राचुर्येण तृणादिभिः पशुगणाः कृतार्थी कृताः) हे संब-न्धीजी ! आपने वरातमें आयेहुये पशुओंको दाना घास आदिसे तृप्त किया (बालाः मिष्टान्नपानादिभिः कृतार्थीकृताः) और बालकोंको शर्बत मिठाई आदि खिलाय पिलायके प्रसन्न किया (वृद्धजना मनोज्ञवचसा कृतार्थीकृताः) और वृद्धजनोंको भलेप्रकार आदर और विनय युक्त वाणियोंसे प्रसन्न किया (युवानः नराः स्त्रीणां गीतकटाक्षहास्यविलसद्भावैः कृतार्थीकृताः) और युवा अवस्थावालोंको सुन्दरीस्त्रियोंके भावसहित सुन्दर कटाक्ष हास्य और गीतोंसे आनंदित किया (तेषां तत् संपर्किणः नराश्च भृत्यादयः विविधैः धान्यधना-दिभिः कृतार्थीकृताः) और सभी आये हुये सेवक सहित वरातियोंको नाना-प्रकारके भोजन धन वस्त्र आदि देकर प्रसन्न किया (सर्वे कृतार्थीकृताः अधिकं किं वाच्यम्) जितने आये सभीको अपने कृतार्थ किया इससे अधिक क्या वर्णन करें ॥ ५ ॥

कन्यापक्षीयः ।

आयातोऽसि ममाङ्गणे द्विजपते मत्पूर्वपुण्योदयात्
ध्यानाधिष्ठितमानसैर्द्विजवरैर्ध्यातोऽपि न ध्यानगः ।
शाकं निर्लवणं निवेद्य पुरतस्तस्माच्च लज्जामहे
भोज्यं स्वादुतरं तदेव भवता गीतोक्तमाविष्कृतम् ॥ ६ ॥

(हे द्विजपते संबन्धिन्, मत्पूर्वपुण्योदयात् ममाङ्गणे आयातः असि) हे द्विजपते समधीजी ! आप मेरे पूर्वजन्मके पुण्योंके उदय होनेसे ही मेरे आंग-नमें आये हो (कथंभूतः भवान् ध्यानाधिष्ठितमानसैः द्विजवरैः ध्यातः अपि ध्यानगः न आयातः) आप कैसेहैं कि, ध्यानमें लगायेहुयेहैं मन जिन्होंके ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके ध्यानमें नहीं आतेहो सो (एतादृशस्य तव पुरतः निर्लवणं शाकं निवेद्य तस्मात् हि लज्जामहे) ऐसे जो आप हैं आपके आगे लवण रहित शाक निवेदन करिके ही हम लज्जित होरहे हैं सो (तत् निर्लवणशाकं एवं स्वादुतरं भोज्यं भवता गीतोक्तं आविष्कृतम्) वही विना लवणके शाक-भोजनहीको अतिस्वादिष्ट भोजन मानकर गायनमें प्रकट कियाहै ॥ ६ ॥

उभयपक्षीयः।

जरीहर्ति जाड्यं जनानामजस्रं दरीधर्ति धर्मं विना कायकष्टम्।
परीपर्ति सर्वं मनोवाञ्छितं यच्चरीकर्ति किंकिं भवद्दर्शनं न॥७॥

(हे संबन्धिन् भवद्दर्शनं किंकिं न चरीकर्ति) हे समधीजी आपका दर्शन क्याक्या नहीं करताहै (जनानां जाड्यं अजस्रं जरीहर्ति) मनुष्योंकी अत्यन्त जडताको हरताहै (विना कायकष्टं धर्मं दरीधर्ति) विना कायाके कष्टही किये धर्मको अत्यंतही धारण करताहै (यत् दर्शनं मनोवाञ्छितं सर्वं परीपर्ति) जो आपका दर्शन मनकी सभी कामनाओंको अच्छीतरहसे पूर्णकर देताहै ॥ ७॥

उभयपक्षीयः।

प्रत्येकं मुखकोटयः प्रतिमुखं जिह्वासहस्रं यदि
जिह्वाग्रेषु सहस्रधा यदि वसेद्देवी स्वयं शारदा।
लोकश्चेत् सकलो विरञ्चिसदृशः स्तोतुं तदा शक्यते-
युष्माकं कुलकीर्तिकान्तिकवितापाण्डित्यशीलादिकम्॥८॥

(हे संबन्धिन्! यदि प्रत्येकं मुखकोटयः प्रतिमुखं जिह्वासहस्रम् तथा शारदा देवी स्वयं सहस्रधा जिह्वाग्रेषु वसेत् तथा सकलः लोकः विरञ्चिसदृशश्चेत्) हे समधीजी ! यदि संसारके एकएक मुख सब कोटिकोटि हो जांय और उन कोटिकोटि मुखोंमें हजार हजार जिह्वा होंय और उन एकएक जिह्वाओंपर दिव्य गुणवाली साक्षात् शारदा सरस्वती हजार हजार रूप हो निवास करें और सब संसारके लोगोंका मुख पहिलेहीसे ब्रह्माके सदृश चार मुखवाले हों (तदा युष्माकं कुलकीर्तिकान्तिकवितापाण्डित्यशीलादिकं स्तोतुं शक्यते) तब आपके कुल, कीर्ति, शोभा, कविताई, पण्डिताई और शील आदिकी प्रसंशा करनेको समर्थ हो सकते हैं अर्थात् ऐसा होना असंभव होनेसे किसीकीभी सामर्थ्य नहीं है कि, जो आपकी प्रसंशा कर सके ॥ ८॥

उभयपक्षीयः।

गुरुरेकः कविरेकः सदसि मघोनः कलाधरोऽप्येकः।
अतद्भुमत्र सभायां गुरवः कवयः कलाधराः सर्वे॥ ९॥

(हे सम्बन्धिन्, मघोनः इन्द्रस्य सदसि सभायां गुरुः एक एव कविरेक एव कलाधरोऽपि एक एव) हे समधीजी महाराज ! इन्द्रकी सभामें तो एक ही बृहस्पति हैं और कविताके करनेवाले शुक्राचार्य्य भी एकही हैं और कलाधर चन्द्रमा भी एक ही हैं (अत्र सभायां अद्भुतं यतः सर्वेपि सभासदः गुरवः सन्ति कवयः सन्ति तथा सर्वेपि कलाधराः सन्ति) यहां आपकी सभामें तो यह अद्भुत है कि सभी बृहस्पतिके तुल्य विद्वान् कवितामें शुक्राचार्यके तुल्य तथा सभी चन्द्रमाके सदृश कलाधर हैं तो हम क्या प्रशंसा करें ॥ ९ ॥

उभयपक्षीयः ।

यावद्यस्य मतिर्विधावति परं तावद्धि तेनोच्यते
निःसीमे भवतो गुणार्णव इह प्रान्तं कथं प्राप्नुयाम् ।
यावन्तस्तु गुणा मम श्रुतिगतास्तावन्त एवोदिताः
क्षन्तव्यं द्विजराज चापलमिदं सोढुः क्षमैवोचिता ॥ १० ॥

(हे सम्बन्धिन् यस्य मतिः यावत् परं विधावति तेन तावत् उच्यते) हे समधीजी ! जिसकी जितनी बुद्धि दौड सकती है वोह उतना ही कह सकता है यह तो प्रसिद्ध ही है (इह निःसीमे भवतः गुणार्णवे प्रान्तं कथं प्राप्नुयाम्) सो इस जगत्में आपके अपार गुणरूपी समुद्रका पार हम कैसे पाय सकते हैं (मम श्रुतिगताः यावन्तः गुणाः तावन्तः एव तु गुणाः उदिताः) सो हमने जितने गुण आपके सुने हैं उतने ही तो कह सके हैं (हे द्विजराज इदं चापलं क्षन्तव्यं सोढुः क्षमा एव उचिता) सो हे द्विजराज ! यह मेरी चपलता क्षमा करना चाहिये. क्योंकि, सहनशील समर्थको क्षमा करना ही उचित है. बस यही मेरी प्रार्थना है ॥ १० ॥

उभयपक्षीयः ।

अहिपतिरहिलोके शारदा सापि दूरे
वसति विबुधवन्द्यः शक्रगेहे सदैव ।
निवसति शिवपुर्यां षण्मुखोऽसौ कुमार-
स्तव गुणमहिमानं को वदेदत्र देव ॥ ११ ॥

(हे सम्बन्धिन् अत्र तव गुणमहिमानं को वदेत् कोऽपि न इत्यर्थः) हे समधीजी ! आपके गुणोंकी महिमा यहां कौन कहनेको समर्थ है अर्थात् कोई नहीं कह सकता और जो शायद कह सकते हैं सो तो यहां कोई है ही नहीं क्योंकि (अहिपतिरहिलोके वसति) शेषनाग जिनके अनंतमुख हैं वे नागलोक में हैं (या शारदा सापि दूरे वसति) और जो साक्षात् सरस्वतीजी हैं सो भी दूर अर्थात् ब्रह्मलोकमें हैं (विबुधवन्द्यः बृहस्पतिः शक्रगेहे इन्द्रलोके सदैव वसति, और बृहस्पति महाराज जो हैं सो सदाही इन्द्रलोकमें रहते हैं (असौ कुमारः षण्मुखः कार्तिकेयः शिवपुर्य्यां निवसति (और कुमार जो छः मुखके कार्तिकेय हैं सो शिवपुरीमें रहते हैं अतः आपके महिमाको हम नहीं वर्णन कर सकते ॥ ११ ॥

उभयपक्षीयः।

न कम्पयन्ति के शिरो निशम्य तावकं यशः
पयःपयोधिनिर्मलं द्विजेन्द्र भो जगत्त्रये।
अतः पितामहो विभुर्भुजङ्गमेश्वरस्य नो
चकार शब्दधारकं धराभिघातशङ्कया ॥ १२ ॥

(भो द्विजेन्द्र पयःपयोधिनिर्मलं दुग्धसमुद्रवत् निर्मलं तावकं यशः निशम्य जगत्त्रये के शिरः न कम्पयन्ति किन्तु सर्वे कम्पयन्त्येव) हे द्विजोंमें श्रेष्ठ समधीजी ! आपके निर्मल यशको सुनकर तीनों लोकमें कौन शिर नहीं हिलाता, किन्तु प्रशंसामें सभीका शिर हिल जाता है (अतएव कारणात् समर्थ पितामहः ब्रह्मा धराभिघातशङ्कया भुजङ्गमेश्वरस्य शब्दधारकं कर्ण नो चकार) इसी कारणसे सामर्थ्यवान् ब्रह्माजीने पृथ्वी डगमगाकर गिर जानेके भयसे शेषनागजीके कान ही नहीं बनाया है, कदाचित् कान होते तो आपके यशको सुन उनका शिरभी अवश्य हिलजाता और पृथ्वी गिरकर चकनाचूर हो जाती ॥ १२ ॥

उभयपक्षीयः।

यशस्तोमं वक्तुं तव धृतचतुर्वक्रमभितं
विधिं वीक्ष्य क्षामं पशुपतिरभूत् पञ्चवदनः।

कृशस्तस्मिन् स्कन्दः षडकृत मुखान्यत्र विकलः
सहस्रास्यः शेषः क्षितितलमयाद्व्रीडवदनः ॥ १३ ॥

(हे सम्बन्धिन् तव यशोस्तोमं वक्तुं धृतचतुर्वक्त्रम् अमितं विधिं वीक्ष्य पशुपतिः पञ्चवदनः अभूत्) हे समधीजी ! आपके यश समूहके कहनेको चार मुख धारणकरनेवाले ब्रह्माजीको असमर्थ देखकर श्रीमहादेवजीने पांच मुख धारण किया (तस्मिन् कृश) सो शिवजीको भी पूर्ण कह सकते न जान (स्कन्दः षट् मुखानि अकृत) स्वामि कार्तिकने छः मुख धारण किया (अत्र गुणकथने सोऽपि विकलः) सो स्वामि कार्तिककोभी गुण वर्णनकरनेमें घबडाया हुआ जान कर (व्रीडवदनः सहस्रास्यः शेषः क्षितितलम् अगात्) सहस्रमुखवाले शेष भगवान्भी अपनेको विना कुछ कहेही असमर्थ मान लज्जित होकर पातालको चले गये हैं तो भला हम सभोंकी क्या सामर्थ्यहै कि, आपकी प्रसंशा करसकें ॥ १३ ॥

उभयपक्षीयः ।

अपटः कपटी हिमहीनरुचिः प्रथितः पशुरन्यकलत्ररतः ।
द्विजराज भवत्सदृशो न हरो न हरिर्नहरिर्नहरिर्न हरिः ॥१४॥

(हे द्विजराज भवत्सदृशः हरः शिवः न भवति यतः अपटः) हे समधीजी! आपके समान हर जो शिवजी हैं सो नहीं हैं. क्योंकि, आप सपट हैं और वे अपट अर्थात् वे दिगम्बर हैं (एवं हरिः विष्णुः अपि भवत्सदृशः न यतः स कपटी) इसी तरह हरि विष्णु भी आपके बराबर नहीं हैं. क्योंकि, वे राजा बलिके यहां वामनरूप धारणकर कपट कियाहै और आप निष्कपट हैं (तथा हरिः सूर्य्योऽपि न यतः हिमहीनरुचिः हिमऋतौ हीना रुचिर्यस्य सः) और सूर्य्य भी आपके तुल्य नहीं हैं. क्योंकि, हिम अर्थात् जाडे ऋतुमें हीन तेज हो जातेहैं और आपका तेज सदाही बढता जा रहाहै (हरिः सिंहोऽपि भवत्सदृशः न यतः सः पशुः प्रथितः) और सिंहभी पराक्रमी आपके समान नहीं हैं. क्योंकि, वह पशु प्रसिद्ध है और आप मनुष्योंमें परमोत्तम हैं (तथा हरिः इन्द्रोऽपि भवत्सदृशः न यतः अन्यकलत्ररतः अन्यकलत्रे रतिर्यस्य सः)

और इन्द्रभी आपके सदृश नहीं हैं. क्योंकि, वह अन्यकलत्र अर्थात् अहल्यामें रत हुये और आप एकपत्नीव्रतधारी हैं आपमें कोई दोषही नहीं अतः आपके सदृश आपही हैं और विशेष प्रशंसा क्या करें ॥ १४ ॥

उभयपक्षीयः ।

भ्रान्त्वा भूवलयं द्विजातिषु वर त्वत्कीर्तिहंसी दिवं
याता ब्रह्ममरालसङ्गमवशात् सा तत्र गर्भिण्यभूत् ।
पश्य स्वर्गतरङ्गिणीपरिसरे कुन्दावदातं तया
मुक्तं भाति विशालमण्डकमिदं शीतद्युतेर्मण्डलम् ॥ १५ ॥

(हे द्विजातिषु वर त्वत्कीर्तिहंसीभूवलयं भ्रान्त्वा दिवं याता) हे द्विजातियोंमें श्रेष्ठ समधीजी ! आपकी कीर्तिरूपा हंसिनी संपूर्ण पृथ्वीमंडलमें फैलकर ऊपर ब्रह्मलोकमें गयी (तत्र सा ब्रह्ममरालसंगमवशात् गर्भिणी अभूत) तहां आपकी कीर्तिरूपा हंसिनी ब्रह्माके हंसके संगम कर गर्भिणी होगई (तदेतत् पश्य—स्वर्गतरङ्गिणीपरिसरे तया मुक्तं कुन्दावदातं विशालम् अण्डकम् इदं शीतद्युतेर्मण्डलं भाति) तो यह देखिये कि, आकाशमें श्री गंगाजीके तटपर उसने कुन्दपुष्पके समान अत्यन्त स्वच्छ और बडा यह अंडा उत्पन्न किया जो चन्द्रमण्डल कहाताहै अर्थात् कि, जिसके इस अंडेमें इतना तेज है कि, जिससे त्रैलोक्य प्रकाशवान् होताहै तो उस आपकी कीर्तिरूप हंसिनी स्त्रीका कितना महत्त्व है जो हम वर्णन करें ॥ १५ ॥

उभयपक्षीय. ।

प्रतिनगरमटन्ती प्रत्यगारं व्रजन्ती
प्रतिनरपतिवक्षःकण्ठपीठे लुठन्ती ।
गिरिगरिमनितम्बाच्छादने सावधाना
तदपि च तव कीर्तिर्निर्मलैवेति चित्रम् ॥ १६ ॥

(हे सम्बन्धिन् तव कीर्तिः प्रतिनगरम् अटन्ती प्रत्यागारं व्रजन्ती तथा प्रतिनरपतिवक्षःकण्ठपीठे लुठन्ती गिरिगरिमनितम्बाच्छादने सावधाना अस्ति

तदपि निर्मला एव इति चित्रम्) हे समधीजी ! आपकी कीर्ति सब नगरोंमें और घरघरमें डोलती है और सब राजाओंकी छातीपर लोटतीहै और पर्वतोंके वडे वडे जो नितम्ब उनके ढकनेमें अति चतुर है तो भी निर्मलही बनी है वडे आश्चर्यकी बात है कि, संसारमें भ्रमण करि आई तो भी यह कीर्ति बे दाग पतिव्रताही बनीरही बस धन्यहै आपकी ऐसी कीर्तिको ॥ १६ ॥

कन्यापक्षीयः ।

नोऽस्माकं घृतपक्कमेव न कुलं नो दीर्घता नम्रता
नो विद्या न च द्रव्यमेवमगुणं नो पुण्यदा स्वस्तिदा ।
श्रीमत्पादजलेन पूर्वदिवसे धर्मांकुरोत्पद्यते
सोयं वै पुनरागमेन भवतां पत्रत्वमापद्यताम् ॥ १७ ॥

(हे सम्बन्धिन् अस्माकं घृतपक्वम् एव न, कुलं न, दीर्घता न, नम्रता न, विद्या न च पुनः द्रव्यं न एवं अगुणम्) हे समधीजी ! हमारे यहां घृतक पक्वान नहीं और कुलभी नहीं तथा बडप्पन भी नहीं और नम्रता तथा विद्या भी नहीं है और धन नहीं इन सबोंकरके हम गुणहीन हैं (पुण्यदा स्वस्तिदा न) पुण्य और कल्याणके देनेवाली कोई बात नहीं है (पूर्वदिवसे श्रीमत्पादजलेन धर्माङ्कुरः उत्पद्यते) पहिले दिन श्रीमान्के चरणोंके जलसे धर्मका अंकुर उत्पन्न हुआ है (सः अयं वै पुनरागमेन पत्रत्वम् आपद्यताम्) सो यह निश्चय करके आपके पुनः आनेसे पत्रवाले होजांयगे अतः आप सबका आज पुनरागमन अतिमङ्गलकारी होगा ॥ १७ ॥

वरपक्षीयः ।

क्वचिच्चलति मौक्तिकं नयनपङ्कजालिः क्वचित्
क्वचिच्चिकुरषट्पदो द्विजमरालपंक्तिः क्वचित् ।
तवाङ्गणगताङ्गनाचरणचारुभूषारवै-
रमी वरधरामरा मनसि मानसं मेनिरे ॥ १८ ॥

(हे संबन्धिन् अमी वरधरामराः तवाङ्गणगताङ्गनाचरणचारुभूषारवैः मानसं कोऽर्थः मानसरोवरं मनसि स्वस्वमनसि मेनिरे) हे समधीजी ! आपके आंगनमें चलनेवाली सुन्दरी स्त्रियोंके चरणभूषणोंके शब्दोंको सुनकर यह सब आयेहुये पृथ्वीके देव रूप आपके आंगनको मानसरोवर माना है, क्योंकि मानसरोवरकी यहां बराबरी क्या देखा है कि (क्वचित् मौक्तिकं चलति)मानसरोवरमें मोती होती है यहां स्त्रियोंके आभूषणोंमें मोतियां चल रही हैं (क्वचित् नयनपङ्कजालिः) मानसरोवरमें कमलके पुष्प विकसित रहते हैं, यहां सुन्दरी स्त्रियोंके नेत्र कमलोंकी कतारें देखी गईं (क्वचित् चिकुरषट्पदः) मानसरोवरमें कमलों पर भौंरे गूंजते हैं, आपके यहां सुन्दरी स्त्रियोंके नेत्रकमलोंपर चिकने घुँघराले शिरके बाल भ्रमररूपी शोभित होरहे हैं (द्विजमरालपंक्तिः क्वचित्) और मानसरोवरमें श्वेतहंस पक्षियोंकी कतारे होती हैं सो आपके यहां भी सुन्दरी स्त्रियोंके हंसनेपर हंसके सदृश द्विज अर्थात् दातोंकी श्वेत कतारे शोभित हो रही हैं जिससे यह देवरूप बरातीलोग सब आपके आंगनमें मानसरोवरका आनन्द पाया है और क्या प्रशंसा करें ॥ १८ ॥

उभयपक्षीयः ।

त्वत्कीर्तिमौक्तिकफलानि गुणैस्त्वदीयैः
सन्दर्भितुं विबुधवामदृशः प्रवृत्ताः ।
नान्तो गुणेषु न च कीर्तिषु रन्ध्रलेशो
हारो न जात इति ताश्च मिथो हसन्ति ॥ १९ ॥

(हे सम्बन्धिन् विबुधवामदृशः त्वत्कीर्तिमौक्तिकफलानि त्वदीयैः गुणैः संदर्भितुं प्रवृत्ताः) हे समधीजी ! देवताओंकी सुन्दरी स्त्रियां आपके गुणरूपी डोरेमें आपके कीर्तिरूपी सुन्दर मोतियोंको लेकर माला गूथनेको बैठी (गणेषु अन्तः न च पुनः कीर्तिमुक्तासु रन्ध्रलेशः अपि न अतः हारो न जातः इति ज्ञात्वा ताः देवाङ्गनाः मिथः हसन्त्यः) सो आपके गुणरूपी डोरेका अन्तही न मिला और कीर्तिरूपी मोतियोंमें कही कुछभी छिद्र नहीं पाया इससे माला न बनसकी तो सब आपसमें हँस रहीहैं तो हम आपके गुणका अन्त और कीर्तिकी बडाई क्या कर सकते हैं ॥ १९ ॥

वरपक्षीयः ।

ये विद्यानिजभूषिताः सुकुलजा नीतौ रताः सर्वदा
ये नूनं निजकीर्तिरश्मिविभवैर्दिक्षु प्रकाशं गताः ।
तेषां चापि महात्मनां कृतधियां दासी परा दुर्लभा
चेत्कन्या समवाप्यते किमपरं धाता प्रसन्नः स्वयम् ॥२०॥

(एवमन्येपि यथाकालोचिताः भवन्ति ।)

(ये सुकुलजा निजविद्याभूषिताः सर्वदा नीतौ रताः तथा ये निजकीर्तिरश्मिविभवैः नूनं दिक्षु प्रकाशं गताः) जो लोग अपने सुन्दरकुलकी विद्यासे भूषित और नीतिमें सर्वदा रतहैं और जो लोग अपने कीर्तिके प्रकाशके विभव करके सब दिशाओंमें प्रकाशित होरहे हैं (तेषां महात्मनां कृतधियां दासी अपि परा दुर्लभा, तेषां चेत् यदि कन्या समवाप्यते तदा अपरं किं स्वयम् धाता प्रसन्नः) ऐसे उत्तमबुद्धिवाले महात्माओंकी दासीभी मिलना दुर्लभा है और यदि ऐसे सज्जनोंकी कन्या प्राप्तहो तो इससे अधिक और क्याहै कि, ब्रह्मा स्वयं प्रसन्न होगये ॥ २० ॥

इति शिष्टाचारभाषार्थसहिताः कतिपयश्लोकाः ॥

अथ रक्षासूत्रादिग्रहणप्रयोगः ।

गौर्यादिचतुष्टयमूर्तिपूजनं च ।

(चढाव वा सोहगी इति लोके प्रसिद्धः ।)

तत्र येषां कुले वरपक्षीयकर्तृककन्यावलोकनपूर्वकावरणात्मकं कर्म्मादौ न जातम् अथवा जातमपि चेत् तथाप्यत्र सर्वैरेव विवाहसमयात् प्रागेव कन्यावलोकनपूर्वकं कन्यायै रक्षासूत्रदानाद्यात्मकं कन्याया आवरणस्वरूपं कर्म वक्ष्यमाणप्रयोगेणावश्यमेव कर्त्तव्यमिति । तत्रादौ—विवाहमण्डपे स्वस्तिवाचनपूर्वकं वधूमानीय पूर्वाभिमुखीमुपवेशयेत् । स्वस्तिवाचनं यथा— " ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रोव्वृद्धश्रवाःस्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्द्दधातु (य० अ० २५ मंत्र १९) ॥ १ ॥ पृषदश्वामरुतः पृश्निमातरः शुभंय्यावानोव्विदथेषुजग्मयः । अग्निजिह्वामनवः सूरचक्षसोविश्वेनोदेवाऽअवसागमन्निह (य० अ० २५ मं० २०) ॥ २ ॥ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयामदेवाभद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितंय्यदायुः (य० अ० २५ मं० २१) ॥ ३ ॥ शतमिन्नुशरदोऽअन्तिदेवायत्रानश्चक्राजरसन्तनू

रक्षासूत्र आदिग्रहण प्रयोग और गौरी आदि चार मूर्तियोंका पूजन—जिसको लोकमें कन्याका चढाव या सोहगी कहते हैं । जिन कुलोंमें वरपक्षवाले पूर्व लिखित प्रयोगके अनुसार कन्यावलोकन और आवरणकर्म न किये हों अथवा करभी चुके हों तो भी विवाह समयसे कुछ पहिलेही कन्याको रक्षासूत्र आदि देनेका आवरण कर्म अवश्यही निम्नलिखित प्रयोगानुसार चाहिये । सो इस प्रकार है कि, प्रथम 'ॐ स्वस्तिनइन्द्रो' इत्यादि 'शान्तिर्भवतु' पर्यन्त स्वस्तिवाचन मन्त्रको कहतेहुये कन्याको मण्डपमें लाय पूर्वमुखी

नूनाम । पुत्रासोयत्रपितरोभवन्तिमानोमद्ध्यारीरिषतायुर्ग्गन्तोः (य० अ० २५ मंत्र २२) ॥ ४ ॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्मातासपितासपुत्रः । विश्वेदेवाऽअदितिःपञ्चजनाऽअदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् (य० अ० २५ मं० २३) ॥ ५ ॥ + दीर्घायुत्वायबलायवर्च्चसे । सुप्रजायत्त्वायसहसाऽअथोजीवशरदः शतम् ॥ ६ ॥ द्यौःशान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापःशान्तिरोषधयः शान्तिः । व्वनस्प्पतयःशान्तिर्व्विश्वेदेवाःशान्तिर्ब्ब्रह्म शान्तिःसर्व्वꣳशान्तिरेव शान्तिःसामाशान्तिरेधि (य० अ० ३६ मंत्र १७) ॥ ७ ॥ सुशान्तिर्भवतु । इति । ततो वधूः गणपत्यादिपूजनं कुर्य्यात् । तद्यथा–आचम्य द्रव्याक्षतान् गृहीत्वा ॐ सुमुखश्च–इत्यादि–ब्रह्मेशानजनार्दनाः इत्यन्तश्लोकानुक्त्वा महागणपतये नमः गणपतिं ध्यायामीति गणपतिं ध्यायेत् । ततः कुशजलान्यादाय–ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुरित्युक्त्वा मासाद्युल्लिख्य अमुकगोत्रोत्पन्ना अमुकीनाम्नी मम विवाहकर्माङ्गभूतरक्षासूत्रकौशेयवस्त्रादिसौभाग्यद्रव्यग्रहणकर्मणि शुभसौभाग्यसिद्ध्यर्थं पूर्वावाहितगणेशगौरीवरुणादिदेवानां पूजनमहं करिष्ये ॥ ततः–ॐ महागणपतये नमः ॐ गौर्य्यै नमः ॐ वरुणाय नमः इति

कलश गणेशकें समीप आसन पर बैठावे और बैठीहुई कन्या जलका तीन आचमनकर हाथ धोय' पुनः हाथोंमें द्रव्याक्षतादि लिये हाथोंको जोड ॐ सुमुखश्चैक० इत्यादि ध्यायामि पर्य्यन्त श्लोकादिकोंसे गणेशका ध्यान कर अक्षतादि गणेशके संमुख छोड पुनः हाथमें कुश जलादि ले ॐ विष्णुर्विष्णु० इत्यादि अमुक स्थानोंमें वर्तमान मासादिकोंका नाम कहतेहुये 'पूजनमहं करिष्ये' पर्यन्त कहकर संकल्प करे। तदनन्तर 'ॐ महा-

मन्त्रैः पाद्यं समर्पयामि । एवम् अर्घ्यम् आचमनीयम् जलम् गन्धमनुलेपनं सिन्दूरम् अक्षतान् पुष्पाणि दूर्वाङ्कुराणि धूपम् दीपम् नैवेद्यम् आचमनीयम् जलम् ताम्बूलम् पूगीफलम् दक्षिणाम् इति यथोपस्थितोपचारैः गणपत्यादीन् पूजयित्वा हस्ते जलमादाय ॐ अद्य स्नानादिदक्षिणासहितया अनया पूजया गणपत्यादिदेवताः प्रीयन्तां न मम । इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्—भो गणपत्यादयः पूजिताः देवाः मम आयुष्कर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः तुष्टिकर्तारः पुष्टिकर्तारः वरदातारो भवत । ततः पीठे पर्णपुटे वा पूर्वावाहितान् अधिप्रत्यधिदेवसहितान् सूर्य्यादिग्रहदेवान् ॐ अधिप्रत्यधिदेवसहितेभ्यः सर्वेभ्यो ग्रहेभ्यो नमः । इति मन्त्रेण संपूज्य हस्ते जलमादाय ॐ अद्य स्नानादिदक्षिणासहितया अनया पूजया सूर्य्यादिपूजितदेवताः प्रीयन्तां न मम ॥

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रश्शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

भो सूर्य्यादयो देवाः मम आयुष्कर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः तुष्टिकर्तारः पुष्टिकर्तारः वरदातारो भवत । इति । ततः

गणपतये०' इत्यादि तीन नाम मन्त्रोंसे गणेश गौरी और कलशस्थ वरुणका 'पाद्यं समर्पयामि' इत्यादि उपस्थित द्रव्योंसे पूजनकर, हाथमें जल ले और 'अद्येत्यादि न मम' पर्यन्त कहकर जलको छोड हाथ जोड 'भो गणपत्यादयः' इत्यादि 'भवत' पर्यन्त कहकर प्रार्थना करदेवे । तब पीढेपर या दोनामें जो पहिलेहीके आवाहित नवग्रहादि हैं उनका भी पूजन "ॐ अधिप्रत्यधि०" इस वाक्यमंत्रसे पूर्वोक्त सर्वप्रकार पूजनकर हाथमें जल ले "ॐ अद्यस्नानादि" से 'नमम' पर्यन्त कहकर जल छोडदेवे । और हाथ जोड 'ॐ ब्रह्मामुरारि' से 'भवत' पर्यन्त कहकर प्रार्थना करदेवे । तदनन्तर

पिष्टादिनिर्मितानां रति–काम–गौरी–शङ्करइति चतुष्टयमूर्तीनां पूजनं कुर्यात् । तद्यथा–ॐगौरीशङ्कराभ्यां नमः गौरीशङ्करौ आवाहयामि । ॐरतिकामाभ्यां नमः रतिकामौ आवाहयामि पूजयामि ॥ इत्यावाह्य गन्धादिभिस्संपूज्य हस्ते जलमादाय अनया पूजया गौर्यादिचतुष्टयमूर्तिदेवाः प्रीयन्तां न मम । ततः प्रार्थयेत्–भो पूजिताः गौर्यादिचतुष्टयमूर्तिदेवाः मम आयुष्कर्तारः शुभसौभाग्यदातारः वरप्रदातारो भवत । ततोऽक्षतान् गृहीत्वा भो गौर्यादिचतुयमूर्तिदेवताः स्वस्थानं गच्छत । इति मूर्तिषु अक्षतान् प्रक्षिप्य विसृजेत् । इति ॥ ततो वरपिता अन्यो वा तत्पक्षीयः कश्चित्पुरुषः ब्राह्मणो वा रक्षासूत्रपटं गृहीत्वा कन्यावलोकनपूर्वकं कन्यायाः वामदक्षिणकरयोः वक्ष्यमाणमन्त्रेण बध्नीयात् । तत्र मन्त्रः ॐ–रक्षोहणंम्ब्वलगहनंम्वैष्ण्णवीमिदमहन्तम्ब्वंलगमुत्किरामियम्मेनिष्टचोयममात्यौनिचखानेदमहन्तम्ब्वंलगमुत्किरामियम्मेसमानोयमसमानोनिचखानेदमहन्तम्ब्वंलगमुत्किरामियम्मेसबन्धुरुर्यमसबन्धुर्न्निचखानेदमहन्तम्ब्वंलगमुत्किरामियम्मेसजातोयमसजातोनिचखा–

पिष्टादिकोंसे बनीहुई स्त्री और पुरुषमूर्तिका दो जोडा जो ४ मूर्ति पतिके यहांसे इस स्थानमें लाई गई हैं उनका हाथमें अक्षत लेकर ' ॐगौरीशङ्कराभ्यां० 'से ' पूजयामि ' पर्यन्त कह उन मूर्तियों पर अक्षत छोडतीहुई कन्या आवाहन कर गन्धादिसे पूर्ण पूजन करके, हाथमें जल ले ' अनया० 'से ' न मम'पर्यन्त कह जल छोडदेवे और हाथ जोडकर ' भो पूजिता०'से 'भवत' पर्यन्त कह प्रार्थना करके पुनः हाथमें अक्षत ले 'भो गौर्यादि०' से 'गच्छत' पर्यन्त कहकर चारों मूर्तियोंपर अक्षत छोडती हुई विसर्जन करे । तदनन्तर वरपिता या वरपक्षका और कोई पुरुष अथवा ब्राह्मण रक्षासूत्र अर्थात् रेशमका तागपाट लेकर कन्याको देखतेहुये उसके बांये और दहिने हाथकी कलाईमें ॐ रक्षोहणम्० इस

नोत्कृत्याङ्गिरामि (य० अ० ५ मं० २३) ॥ १ ॥ पुनः कौशेयवस्त्राभरणानि तथा अन्यान्यपि सिन्दूरादिसर्वाण्येव सौभाग्यवस्तूनि—

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥

इति मन्त्रं पठित्वा कन्याहस्ते दद्यात्। ततः कौशेयवस्त्रादिभिः सह वरपक्षात् प्राप्ता या शुभिका (मौलीति प्रसिद्धा) तां वक्ष्यमाणमन्त्रं पठित्वा कन्या स्वमस्तके धारयेत्। तत्र मन्त्रः—शुभिके शिर आरोह मे शोभयन्ती मुखं मम ॥ इति शिरसि संधारयेत्।

अथ विवाहाञ्जलिपूरणप्रयोगः—पितृपक्षादानीतानि फलद्रव्यसहितानि तण्डुलानि स्वस्या अग्रे कन्या निधाय तैस्तण्डुलादिभिः स्वाञ्जलिं पूरयित्वा वक्ष्यमाणप्रतिश्लोकपाठान्ते कस्मिंश्चिदपि पत्रावल्यादौ विसृजेत् ॥ तत्र श्लोकाः—

प्रथमोऽञ्जलिरयं पूर्वं सीतारामाभिवन्दितः।
सर्वेषु मम कार्य्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ १ ॥
द्वितीयोऽञ्जलिरयं पूर्वं सत्याकृष्णाभिनन्दितः।
सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ २ ॥
तृतीयोऽञ्जलिरयं पूर्वं गौरीशङ्करवन्दितः।
सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ३ ॥
चतुर्थोऽञ्जलिरयं पूर्वं सावित्रीब्रह्मपूजितः।
सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ४ ॥

मन्त्रसे बांधदेवे। और कुसुमकी चुन्दरी आदि वस्त्र, आभूषण, सिन्दूरभरी डव्वी, चूडी औरभी जो सोहागकी वस्तु हों तथा मौली 'ॐमङ्गलम्०' श्लोक कहता हुआ कन्याको देदेवे। तत्पश्चात् कन्या इन सब वस्तुओंके साथ पाईहुई मौलीको 'शुभिके शिर०' इस मन्त्रसे अपने शिरमें पहिन लेवे। और अपने पितृपक्षसे फल द्रव्य सहित आये चावल अंजुलियोंमें भरभरकर 'प्रथमोञ्जलि' इत्यादि

पञ्चमोऽञ्जलिरयं पूर्वं कुन्तीपाण्डुप्रपूजितः ।
सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ५ ॥
षष्ठोऽञ्जलिरयं पूर्वं छायासूर्याभिनन्दितः ।
सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ६ ॥
सप्तमोऽञ्जलिरयं पूर्वं रोहिणीचन्द्रवन्दितः ।
सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ७ ॥

इति विवाहे सप्ताञ्जलयः (वधूप्रवेशे तु पञ्चाञ्जलय एव) ततस्तञ्जलितण्डुलादिकं वरपिता स्वकुलदेवपूजनार्थं गृह्णीयात् ॥

अथ पञ्चफलपुटकानां वितरणम्—कन्या वरपक्षतः गुडद्रव्यऋतुफलतण्डुलपूरितानि पञ्च पर्णपुटकानि गृहीत्वा प्रत्येकं मन्त्रपूर्वकं ब्राह्मणनापितादिभ्य एकैकं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ इति ॥

ततः द्रव्याऽक्षतजलकुशानादाय अद्यामुकगोत्रोत्पन्नायाः अमुकीनाम्न्याः मम सौभाग्यद्रव्यग्रहणकर्मणि शुभतासिद्ध्यर्थं यथानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दक्षिणां संप्रददे । इति दत्त्वा द्रव्यादिभिर्नापितादिकानपि सन्तोष्य ततः कन्याहस्तेन जलमादाय विवाहाङ्गभूतसौभाग्य-

एक एक श्लोकसे सात अंजुली किसी पतरीआदि पात्रमें छोड देवे । (विवाहमें ये सात अंजुली और वधूप्रवेशमें पांचही होती हैं) इन अंजुलियोंके चावल आदि वर पिता लेकर अपने कुलदेवताके पूजनार्थ रखलेवे । फिर द्रव्य ऋतुफल और चावलोंसे भरे हुये ५ दोने वरपक्षसे लेकर, एक एक दोना ' वागर्थौ० ' यह श्लोक कहकहकर पांच वारमें ब्राह्मण और कुशा ले ' अद्य ' इत्यादि कह अमुक स्थानोंमें आपना तथा ब्राह्मणोंका नाम कहतीहुई ' संप्रददे ' पर्यन्त संकल्प कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देवे और द्रव्य आदिसे नापितादिकोंको भी संतुष्ट करे । फिर कन्या हाथमें जल ले

द्रव्यग्रहणकर्मणा श्रीभगवान् प्रजापतिः प्रीयताम् । इति जलमुत्सृज्योत्तिष्ठेत् ॥

इति कन्यावलोकनपूर्वकरक्षासूत्रादिग्रहणकर्मप्रयोगः ॥

अथ रजकीद्वारा सौभाग्यग्रहणप्रयोगः ।

(खारछुटाना—सोहागदेना इति लोके प्रसिद्धः)

विवाहदिने विवाहसमयात् प्रागेव बहुदेशे कुलेषु च कन्यासहिताः स्त्रियः रजकीगृहं गच्छन्ति, अथवा वस्त्रधावनमृत्कटाहादिसहितां रजकीमेव स्वगृहद्वारादावाहूय कन्यारजकीभ्यां सहिताः स्त्रियः वस्त्राच्छादिते एकस्मिन्स्थले स्थिताः सत्यः वस्त्रधावनमृत्कटाहादिकम् आलेपन-सिन्दूरादिभिःसंपूज्य रजक्याः शिरसि किञ्चित्तैलं दत्त्वा सीमन्तं सिन्दूरेण भूषयित्वा च वस्त्रैर्द्रव्यैर्भोज्यपदार्थैश्च तां तोषयन्ति ॥ सापि संतुष्टा रजकी

'विवाहाङ्गभूत' इत्यादि वाक्य कह जल छोडकर आसनसे उठे ॥ इति रक्षासूत्रादिदानप्रयोगः ॥

अब रजकीद्वारा सौभाग्य ग्रहणप्रयोग लिखते हैं जो कन्याका खार छोडाना या सोहाग देना नामसे लोकमें प्रसिद्ध है । वह इस प्रकारसे होताहै कि, विवाहके दिन पाणिग्रहण होनेके कुछ पहिलेही वहुत देश तथा कुलोंमें कन्यासहित स्त्रियां रजकी (धोबिन) के गृह जाती हैं अथवा वस्त्र धोनेका हौदा खूंठाआदिके सहित धोबिनको ही अपने गृह बुलाय और अपने द्वार या किसीस्थानमें वस्त्राच्छादित कर उसीमें कन्या धोबिन तथा और भी स्त्रियां एकत्रित बैठती हैं और वस्त्र धोनेके हौदा खूंटा आदिका आलेपन और सिन्दूरादिसे पूजन कर धोबिनके शिरमें कुछ तैल लगाय,मांगको सिन्दूरसे भूषित करदेतीं हैं। तथा धोबिनको वस्त्र द्रव्य और भोजन पदार्थ देकर सन्तुष्ट करती हैं । धोबिनभी

तैलाक्ते कन्यासीमन्ते स्वसीमन्तेन वैधव्ययोगनाशनप्रयोगमिव सिन्दूरालेपनस्वरूपं सौभाग्यं ददाति । इति ॥

अथ रजकीद्वारा सौभाग्यग्रहणे चिन्तनीयो विचारः ।

(तत्र सोमारजक्याः संक्षेपवृत्तान्तः)

अत्र एवं रजकीद्वारा सौभाग्यदानस्य मूलं किमित्यनुसन्धाने भविष्योत्तरपुराणीयवक्ष्यमाणमेकं कथानकमेव प्रमाणं दृश्यते । तद्यथा–पुरा कान्तीपुर्यां देवस्वामिनामकराजपुरोहितस्यैका गुणवती नाम्नी कन्या आसीत् । यस्या विवाहे सप्तपदीसमये पतिमरणाद्वाविवैधव्ययोग आसीत् ॥ तथा पतिपुत्रबान्धवैः सहिता सिंहलद्वीपनिवासिनी एक सोमानाम्नी रजकी प्रतिसोमवत्यमापर्वणि अश्वत्थे विधिवद्विष्णुपूजनपूर्वकाष्टोत्तरशतफलादिसहितपरिक्रमणकारिणी विष्णुभक्तिरता पतिभक्ता चासीत् । यद्यपि जात्या सा रजकी मलिनवस्त्रधावनादिस्वकर्मनिरता

प्रसन्न होकर अपने शिरके सिन्दूर लगे मांगसे कन्याके तेल लगे शिरके मांगमें अपने लगेहुये सिन्दूरको खूब लगाकर मानो वैधव्य नाशन प्रयोग, यह सिन्दूरका लगानाही रूप सौभाग्य (सोहाग) दान कन्याके लिये देती है ॥ बस इसीको धोबिनका सोहाग देना कहते हैं ॥

इस धोबिनके सोहागदानमें चिन्तनीय विचार यह है कि, इस प्रकार करनेका प्रमाण क्या है ? इसके विचारनेमें भविष्योत्तरपुराणकी एक कथा ही केवल प्रमाणरूपमें देखीजातीहै । जिसका संक्षेप वृत्तान्त यह है कि, पहिले कान्तीपुरमें राजाके पुरोहित देवस्वामीकी गुणवती नाम्नी कन्याको विवाहमें सप्तपदी होते समय पतिमरण होकर वैधव्य होजानेवाला योग था । तथा पति पुत्र और बांधवोंके सहित सिंहलद्वीपकी रहनेवाली एक सोमानामकी रजकी (धोबिन) प्रति सोमवती अमावास्यापर्वके समय अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) में विष्णुपूजन पूर्वक एकसौ आठ फलादि द्रव्यों सहित परिक्रमण करनेवाली विष्णुभक्तिरता और पतिभक्ता थी । यद्यपि वह जातकी धोबिन और वस्त्रधोना आदि अपने मलिनकर्मोंमें लगी रहती थी तथापि सोमवती अमावास्यामें

तथापि सोमवत्यमायामश्वत्थपरिक्रमणादिशुभकर्मप्रभावादतीव धर्मसम्पन्ना परमसौभाग्ययुक्ता च बभूव ॥ गुणवत्याः वैधव्ययोगेन दुःखिता माता एकेन भिक्षुकब्राह्मणेन सोमारजक्यां वैधव्यनाशकप्रभावोऽस्तीति श्रुत्वा गुणवत्याः कन्याया विवाहावसरे स्वकनिष्ठपुत्रद्वारा तां सिंहलद्वीपात् समानयामास । सा रजक्यपि कान्तीपुर्य्यां देवस्वामिगृहं समागत्य स्वकृतसोमवत्यमायामश्वत्थपूजनादिकर्मजं स्वसञ्चितं यत् स्त्रीणां परमसौभाग्यप्रदं वैधव्यनाशकं महत्फलं तस्यैव प्रदानं कृत्वा रुद्रशर्म्माणं गुणवत्या वरं सप्तपदीकर्मसमये मृतं सोमवतीमाहात्म्यात् झटिति जीवयित्वा गुणवत्यै जीवितपतिरूपं सौभाग्यं दत्त्वा पुनः स्वगृहगमनं चकार । अथ तस्याः गमनाऽऽगमनयोर्मध्यसमये तद्गृहेऽपि च ये पतिपुत्रादयो मृतास्तथा स्नुषादिभिः सुरक्षितशवरूपास्तानपि सोमवत्यमाप्रभावात् संजीवयित्वा पति-

अश्वत्थपरिक्रमण आदि शुभकर्म करनेके प्रभावोंसे अतीव धर्मसंपन्ना और परम सौभाग्ययुक्ता होगई थी । गुणवतीके वैधव्ययोगसे दुःखित रहतीहुई उसकी माता एक भिक्षुकब्राह्मणसे सोमा धोबिनमें विधवायोग नाश करदेनेकी सामर्थ्य सुनकर अपने छोटे पुत्रद्वारा गुणवतीकन्याके विवाहसमय उसको सिंहलद्वीपसे बुलवाया । वह धोबिन कान्तीपुरीमें देवस्वामीके गृह आकर अपना किया सोमवती अमावास्यामें अश्वत्थ पूजनादि कर्मसे उत्पन्न और संचित, स्त्रियोंको परम सौभाग्य देनेवाला वैधव्यनाशक महत्फलका दान देकर गुणवतीके विवाहान्तर्गत सप्तपदी समयमें मरतेही गुणवतीके वर रुद्रशर्म्माको सोमवतीके माहात्म्यसे तुरन्त जिलाया और गुणवतीको जीवतपतिरूप सौभाग्य दे फिर अपने गृह सिंहलद्वीप चलीआई । अपने गृह सिंहलद्वीपसे ब्राह्मणके गृह कान्तीपुरी जाने और लौट आनेके बीच समयमें धोबिनके घरमें जो पति पुत्रादि मरे, मृतक शरीरोंको धोबिनकी पतोहू आदिने जो संभालकर रखछोडा था,उन सभोंको सोमवती अमावास्याके प्रभावसे जिलाकर अपने पति-

पुत्रादिभिस्सह जीवनपर्य्यन्तं सा सौभाग्याद्यनेकसुखं प्राप ॥ इत्येवं सोमवत्यमामाहात्म्यकथामात्रं प्रमाणं प्राप्यते ॥ इत्येवमुक्तप्रमाणे एतदेव स्पष्टं भाति, यत् प्रतिसोमवत्यमायामश्वत्थपूजनादिविधानजं महत्फलं कथितम्, तदेव वैधव्यनाशकमस्ति । न खलु परमनीचजात्युद्भवाः साधारणा अपि वैधव्यनाशिका रजक्यो बभूवुः। इत्यत्र विज्ञवरैर्धार्मिकैः—

कुलदेशानुसारीणि यानि कृत्यानि यत्र वै।
कर्त्तव्यानि तथा तानि धर्मशास्त्राविरोधतः ॥

इति परिभाषां किलावगम्य यदन्धपरम्परानुसारेण सांप्रतं परमकुत्सिताभिः निषिद्धकर्मनिरताभिः अस्पृश्याभिराधुनिकरजकीभिः कन्यासीमन्ते सिन्दूरालेपनरूपं सौभाग्यदानं यद्भवति तत् किं धर्मशास्त्रविहितमस्ति ? उत वा रजक्या नीचजात्या कृतं प्रतिसोमवत्यमायां पूजनादिकर्मफलं यल्लभ्यमेतादृशं गुणवत्याः वैधव्यनाशकं जातम्, तच्च पुत्रादिकोंके सहित वह सोमा सौभाग्यादि अनेक सुखोंको अपनी जीवन पर्यन्त भोग करती रही । बस, इसके प्रमाणमें सोमवती माहात्म्यकी कथा मात्रही प्राप्त होती है ॥ इस प्रकार कहे हुये प्रमाणमें यही स्पष्ट मालूम होताहै कि, जो हर सोमवती अमावास्यामें अश्वत्थ (पीपलवृक्ष) पूजनादि विधानका महत्फल कहाहै वही वैधव्यनाश करनेवालाहै और परम नीचजातवाली सभी साधारण धोबिनें वैधव्यनाश करनेवाली नहीं होगई हैं, बस, यही स्पष्ट और निश्चय है ॥ इस रजकी द्वारा कन्याको सोहाग दिलानेके विषयमें विज्ञवर धार्मिकोंको 'कुलदेशानुसारीणि०' अपने अपने कुल और देशकी रीतिके अनुसारही जो जो कर्म जिसजिस समयमें कियेजाते हों और शास्त्रमें कहेहुये अपने धर्मोंके विरुद्ध नहीं हों ऐसे सभी कर्मोंको यथायथा स्थानोंमें करनाही चाहिये । बस, इस भावको ध्यानमें रखतेहुये वर्तमानसमयमें जो अन्धपरम्पराके अनुसार परम निन्दित, निषिद्ध कर्म करनेवाली जिसके स्पर्शकरनेमें प्रायश्चित्त है ऐसी वर्तमान धोबिनोंके द्वारा अपनी कन्याके मांग में सिन्दूर लगाना ही सोहागदान जो होताहै सो क्या धर्मशास्त्रसे विहित है?

कन्यया स्वयंकृते कीदृशमधिकतरसौभाग्यप्रदं भविष्यति । इति संचिन्त्य विवाहसमयात् प्रागेव प्रतिसोमवत्यमायां पुराणोक्तविधिनाश्वत्थे विष्णुपूजनपूर्वकं यथाशक्ति द्रव्यफलादिसहिताष्टोत्तरशतप्रदक्षिणादि सर्वसुखसौभाग्यप्रदं वैधव्यनाशकं कर्म विचारशीलैः कारयीत इति विधानं किमधिकश्रेष्ठतमं भविष्यति इत्यनयोर्मध्ये उचितानुचितौ विचार्य विज्ञवरैर्धार्मिकजनैर्यथोचितं भवेत् तथैव कर्तव्यम् इति ॥ अतोऽग्रे कन्यायाः मङ्गलस्नानादि कर्म भवति ॥

इति विवाहसोपाङ्गविधौ रजकीद्वारा सौभाग्यग्रहणप्रयोगः ॥
चिन्तनीयविचारश्च ॥

अथ कन्यायाः मङ्गलस्नानादिकर्मप्रयोगः ।

(नहावन नेछू इति लोके प्रसिद्धः)

तत्र पाणिग्रहणलग्नसमयात् किञ्चित् प्रागेव कन्यां सुगन्धि-

अथवा धोबिन एक नीचजातिका क्रिया प्रतिसोमवती अमावास्यामें पूजनादिकर्मका फल जो उसीसे मिलाहुआ इस प्रकार गुणवतीके वैधव्यनाश करने वाला हुआ सो यदि कन्या स्वयं करे तो कितना अधिकसे अधिक सौभाग्य देनेवाला होगा ? इसको विचारकर विवाह होनेके पहिलेही अवस्थासे प्रति सोमवती अमावस्याको पुराणोक्तविधिद्वारा पीपलवृक्षमें विष्णुपूजन पूर्वक यथाशक्ति द्रव्य और फलादिकोंके सहित एक सौ आठ प्रदक्षिणा आदि सर्व सुख सौभाग्य देनेवाला और वैधव्यनाशक कर्म विधान कन्यासे विचारशील लोग करावें, यह अधिक श्रेष्ठ होगा ॥ बस इन दोनोंमें उचित और अनुचितका विचार करनेसे जो विज्ञ धार्मिकजनोंको उचित मालूम हो वैसाही करें ॥ इति ॥ इसके बाद कन्याका मंगलस्नान अर्थात् नेछू नहावन आदि कर्म होता है ॥

इति रजकी द्वारा सौभाग्यग्रहणप्रयोग चिन्तनीयविचार पूरा हुआ ॥

अब कन्याके मंगलस्नानादिका प्रयोग लिखते हैं—जिसको लोकमें नहावन नेछू नामसे कहते हैं । पाणिग्रहण लग्नसमयसे कुछ पहिलेही कन्याके

तैलोद्वर्तनादिपूर्वकं यथास्वकुलदेशाचारं तथा मङ्गलस्नानं स्नापयित्वा शुद्धं वस्त्रं परिधाप्य मण्डपे समानीय तस्याः सौभाग्यवती माता अन्या वा काचित्सौभाग्यवती स्त्री तत्र पूर्वाभिमुखी स्वयमुपविश्य स्वस्या अग्रतो हरिद्रारञ्जितकाष्ठासने पूर्वाभिमुखीमेव कन्यां चोपवेश्य स्वस्या अञ्चलेन कन्याशिर आच्छाद्य कयाचित्सौभाग्यवत्या नापितपत्न्यादिना लाक्षारसादिरञ्जनद्रव्यैः कन्यापादौ स्वस्या अपि पादौ क्रमेण रञ्जितौ कारयेत् । इत्यादि यथास्वकुलाचारं कर्म कृत्वा कौतुकागारं कन्यामानयेत् । सा कन्यापि परपाणिग्रहणकालमपेक्षमाणा तत्रैव स्थिता भवेत् ॥ ततश्चाग्रेलिखितपाणिग्रहणकर्मानुक्रमणिकानुसारप्रयोगेण कर्मारभेत ॥ इति श्रीपं० ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठिविरचितविवाहसोपाङ्गविधौ कन्यायाः मङ्गलस्नानादिकर्मप्रयोगः ॥

शरीरमें सुगंधित उबटन तेल आदि लगाय अपने कुल और देशरीतिके अनुसार कन्याको मंगल स्नान (नहावन) कराय और सुन्दर शुद्ध वस्त्र धारण कराय, विवाहमण्डपमें ले आयकर, कन्याकी सौभाग्यवती माता या और कोई भी सौभाग्यवती स्त्री मण्डपमें स्वयं पूर्वाभिमुखी बैठ और अपने आगे रंगीन पीढा आदि आसनपर पूर्वमुख ही कन्याको भी बैठाय अपने अंचलसे उसका शिर ढाँपलेवे । तब नाइन या और कोई सौभाग्यवती स्त्रीद्वारा, पहिले कन्याके फिर अपने पावोंमें महावर आदि रंगसे सुन्दर महावर लगवावे । इत्यादि अपने देश कुलके अनुसार कर्म कर कन्याको कौतुकागार (कोहबर) में लेजाकर बैठा देवे और पाणिग्रहण समयकी प्रतीक्षा करती हुई कन्या वहां बैठीरहै ॥ तदनन्तर आगे लिखी पाणिग्रहण कर्म अनुक्रम—मणिकाके अनुसार प्रयोग आरम्भ करे ॥

इति बालबोधिनीटीकायां कन्यायाः मंगलस्नानप्रयोगः ॥

अथ विवाहप्रयोगे कर्मानुक्रमणिका ।

विवाहावसरे त्वादौ तिलकं दधिसंयुतम् ।
कुर्याद्वरललाटेऽत्र मङ्गलं कुङ्कुमादिना ॥ १ ॥
आरार्त्तिकं ततः कृत्वा शालापाठं ततः परम् ।
काष्ठासनं षडर्घ्येति वाक्येन स्थापयेद्बुधः ॥ २ ॥
साधुवादं ततः शुद्धासनं विष्टरमेव च ।
आद्यं चैव पुनः पाद्यं पुनर्विष्टरमेव च ॥ ३ ॥
अर्घ्यं त्वाचमनं चैव मधुपर्कं विधानतः ।
कृत्वा ततो द्विराचम्य ततोऽङ्गन्यासमाचरेत् ॥ ४ ॥
तृणच्छेदनकं कृत्वा वेद्यास्संस्कारमेव च ।
ततोऽग्निस्थापनं वेद्यां कन्यानयनमेव च ॥ ५ ॥
ततो वराय दातव्यं शुभं वस्त्रचतुष्टयम् ।
युग्मयुग्मपरीधानं वरवध्वोः समन्त्रकम् ॥ ६ ॥
कर्त्तव्यं वरकन्याभ्यां द्विराचमनमेव च ।
समञ्जनं ततः कृत्वा हस्तयोर्लेपनं चरेत् ॥ ७ ॥

विवाहप्रयोगकी अनुक्रमणिका–इस प्रकार है कि, विवाहके समय मण्डपमें वरके पहुंचनेपर कन्यादाता वरके माथेमें दही और कुंकुमसे प्रथम मङ्गलतिलक करे ॥ १ ॥ फिर आरती उतारकर शालाका ११ मन्त्र पाठ करे । पुनः 'षडर्घ्या' वाक्यसे वरके लिये काष्ठासन (पीढा) धरे ॥ २ ॥ फिर 'साधुभवान्' इत्यादि कहकर वरको शुद्धासन, विष्टर, पाद्य, पुनः पाद्य और पुनर्विष्टर तथा अर्घ्य, आचमनीय और विधानपूर्वक मधुपर्क देना । पुनः वर दो वार आचमनकर अङ्गन्यास करे ॥ ३ ॥ ४ ॥ और तृणच्छेदन करके हवनवेदीका संस्कार, अग्निस्थापन, विवाहमण्डपमें कन्याको लाना ॥ ५ ॥ फिर वरको चार वस्त्र देना, वर और वधूका मन्त्रसहित दो दो वस्त्र धारण करना ॥ ६ ॥ तथा दो दो वार दोनोंको आचमन करना । और वधूका समञ्जनकर्म होनेपर कन्याका दोनों हस्तलेपन करना ॥ ७ ॥

शाखोच्चारं द्वयोः कृत्वा कन्यादानमतः परम्।
स्वस्तिवाचं ततो द्यौस्त्वापाठश्चैव तु दक्षिणाम् ॥ ८ ॥
स्वस्ति कोऽदाच्च पाठान्ते वरकन्याङ्घ्रिपूजनम्।
कन्यां पाणौ गृहीत्वा च निष्क्रमस्तदनन्तरम् ॥ ९ ॥
अथाभिषेककुम्भस्य धारणञ्चाग्निदक्षिणे।
वेदिकां तु समागत्य परस्परसमीक्षणम् ॥ १० ॥
तृणपुञ्जे कटे वाथ वध्वास्समुपवेशनम्।
ब्रह्मादिवरणं कृत्वा देवताध्यानमेव च ॥ ११ ॥
ततो विधिविधानेन कर्तव्या कुशकण्डिका।
घृताभिघारितास्तिस्रः समिधोऽग्नौ क्षिपेत्ततः ॥ १२ ॥
अग्नेः पर्य्युक्षणं कृत्वा घृताद्धोमं समाचरेत।
नवपञ्चाहुतीर्दद्यादाघाराद्याभिधानिका ॥ १३ ॥

फिर वर–कन्याका शाखोचार करके कन्यादाताका कन्यादान करना। वरका स्वस्तिवाक्य और द्यौस्त्वा आदि एक मन्त्रका कहना। पुनः कन्या दाताका सुवर्णादि दक्षिणा संकल्प करना ॥ ८ ॥ और वरका पुनः स्वस्तिवाक्य और कोऽदात् इस एक मन्त्रकहनेके अंतमें वर और कन्याकी पौपुजी कुलाचारानुसार करना। फिर कन्याका दोनों हाथ पकडेहुए वरका निष्क्रमण करना॥९॥ इसके वाद अभिषेकार्थ कलशको लिये हुए अग्निके दक्षिणदिशामें किसी ब्राह्मणका खडा होना। पुनः वर वधूका हवनवेदीके समीप आकर परस्पर समीक्षण करना ॥ १० ॥ और तृणपुञ्ज या चटाई आदि आसनपर वधूको बैठालकर स्वयं वरकाभी बैठना। तथा ब्रह्मादिका वरण करना। और वर तथा वधूका होमके निमित्त देवताओंका ध्यानपूर्वक नामोच्चारणकर आहुतिद्रव्यका त्याग करना ॥ ११ ॥ फिर पूर्णविधिसे कुशकण्डिका करना। घृतसे भीगी तीन समिधा अग्निमें छोडना ॥ १२ ॥ अग्निका पर्य्युक्षण (अग्निके चारोंतरफ जल से मण्डल) करके वर घृतसे अग्निमें होम इस प्रकार प्रारम्भ करे कि, आभा-

ततः प्राणीतकं स्पृष्ट्वा पुनर्द्वादशसंख्यिकाम् ।
ऋताषाढीन्तु जुहुयात्ततो होमं जयाभिधम् ॥ १४ ॥
त्रयोदशमितं हुत्वा स्पृशेत्प्राणीतकं जलम् ।
ततोऽग्न्यादित्रयाणां च होमं कृत्वा जलं स्पृशेत् ॥ १५ ॥
वाय्वाद्यैकादशानां तु होमं कृत्वा त्वपः स्पृशेत् ।
त्वष्टाद्यानां चतुर्णां वै होमं कृत्वा जलं स्पृशेत् ॥ १६ ॥
अग्निरैत्वादिमन्त्रेभ्यश्चतुर्भ्यश्चतुराहुतीः ।
दत्त्वा पुनः प्रणीताया जलं वै संस्पृशेद्वरः ॥ १७ ॥
ततोऽन्तरपटं कृत्वा मृत्योरेकाहुतिं वरः ।
कृत्वा प्राणीतकं स्पृष्ट्वा लाजहोमादिकं चरेत् ॥ १८ ॥
लाजाहुतित्रयान्ते तु हस्ताङ्गुष्ठग्रहं पुनः ।
शिलारोहणकं कृत्वा गाथागानमथाचरेत् ॥ १९ ॥
अग्रे कन्या वरः पश्चाद्भूत्वाऽग्नेस्तु प्रदक्षिणम् ।
कुर्यादेवं त्रिवारं स्याल्लाजाहोमादिकं क्रमात् ॥ २० ॥
ततोऽवशिष्टलाजैस्तु वधूरेकाहुतिं चरेत् ।

रादि १४ आहुतिकर प्रणीताका जल स्पर्श करना, पुनः ऋताषाढी आदि १२ और जयाप्रभृति १३ आहुति देकर प्रणीताजल स्पर्श करना । पुनः अग्न्यादिकी ३ आहुतिके बाद प्रणीताजल स्पर्श करे १३-१५ वायु आदिकी ११ आहुति कर पुनः प्रणीताजल स्पर्श करे । त्वष्टादि ४ आहुतिके बाद पुनः प्रणीताजल स्पर्श करे ॥ १६ ॥ अग्निरैत्वादि चार मन्त्रोंसे ४ आहुति देकर प्रणीताका जलस्पर्श करे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् अन्तरपट करना और वर एक आहुति मृत्युको देकर प्रणीताजलस्पर्श करनेके बाद वधूवर लाजाहोमादि इस प्रकार आरम्भ करे ॥ १८ ॥ कि तीन लाजाहुति देनेके बाद वर वधूका हस्तांगुष्ठ ग्रहण करे और वधूका शिलाऽऽरोहण करायकर वरका गाथागान करना । पुनः आगे कन्या उसके पीछे वर हो अग्निकी एक प्रदक्षिणा करना । इसी प्रकार लाजाहोमसे प्रदक्षिणापर्यन्त तीन वार होजानेपर वधू एक आहुति बचे हुये लाजोंकी करे । और चौथी प्रदक्षिणा आगे वर पीछे

चतुर्थभ्रमणं तूष्णीमग्रे भूत्वा वरश्चरेत् ॥ २१ ॥
वरवध्वोस्तथाचाराच्चतुर्थे ग्रन्थिबन्धनम् ।
प्राजापत्याहुतिं चैकां वरः कुर्यात्ततः परम् ॥ २२ ॥
ततः साप्तपदीं वध्वाः कारयेन्मन्त्रपूर्विकाम् ।
ततोऽभिषेककुम्भाच्च जलं नीत्वाभिषेचनम् ॥ २३ ॥
दिवा विवाहे सूर्यस्य रात्रौ ध्रुवनिरीक्षणम् ।
ततो मन्त्रं समुच्चार्य वध्वाः हृदयमालभेत् ॥ २४ ॥
सुमङ्गलीति मन्त्रेण वध्वाः कृत्वाभिमन्त्रणम् ।
सीमन्ते च ललाटेऽपि कुर्यात् सिन्दूरभूषणम् ॥ २५ ॥
सौभाग्यद्रव्यं सुभगा दद्युर्वध्वै ततः परम् ।
वध्वाश्चर्मोपवेशान्ते स्विष्टकृद्धोममाचरेत् ॥ २६ ॥
संस्रवं प्राश्य चाचम्य पूर्णपात्रं च ब्रह्मणे ।
दद्याद्वित्तानुसारेण ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥ २७ ॥

वधू होकर विना मंत्रकी करे ॥ १९–२१ ॥ कुलाचारके अनुसार यह चौथा भ्रमण वर और वधूका ग्रन्थिका बन्धन करके होता है । तिसके वाद वर प्रजापतिकी एक आहुति घृतसे देवे ॥ २२ ॥ पुनः वधूको वर मन्त्र कहता हुआ सात पद चलावे । इसके वाद अभिषेकके घटसे जल लेकर अभिषेचन करे । और दिनमें विवाह होता तो सूर्य, यदि रात्रिमें हो तो ध्रुवका निरीक्षण वधूको कराना । तत्पश्चात् वर मन्त्रको कहता हुआ वधूका हृदय स्पर्शकरे ॥ २३ ॥ २४ ॥ और सुमङ्गली मन्त्रद्वारा वधूका अभिमंत्रण कर । वधूके मांग और माथेको सिन्दूरसे भूषित करे ॥ २५ ॥ उसके वाद सोहागिन स्त्रियां वधूके सोहाग सिन्दूर आदि लगावें । इसके पीछे वधूको चर्मोपवेशन कराय घृतसे स्विष्टकृत् एक आहुति वर करे ॥ २६ ॥ पुनः संस्रवप्राशन और आचमन करे । तब ब्रह्माको पूर्णपात्र दान, तथा और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति वर दक्षिणा देवे ॥ २७ ॥ फिर ब्रह्मग्रन्थिविमोक तथा दो पवित्रोंसे मार्जन

ब्रह्मग्रन्थिविमोकं च पवित्राभ्यां तु मार्जनम्।
ऐशान्यां तु प्रणीताया न्युब्जीकरणमेव च ॥ २८ ॥
बर्हिर्होमं ततः कृत्वा पूर्णाहुतिमथाचरेत्।
त्र्यायुष्करणकर्मान्ते भूयसीं दक्षिणां ततः ॥ २९ ॥
दत्त्वाशिषं प्रगृह्णीयाद् वृद्धेभ्यः स्त्रीयुतो वरः।
ततो ग्राम्यवचः[1] कुर्य्यात्कुलदेशानुसारतः ॥ ३० ॥
अनुक्रमणिका त्वेषा वैद्येन निर्मिता शुभा।
श्रीठाकुरप्रसादेन मणिनोद्वाहकर्मणि ॥ ३१ ॥
इति विवाहानुक्रमणिका ॥

अथ विवाहविधौ विशेषविज्ञानार्थाः कारिकाः।

कन्यावस्त्रपरीधाने तथैव चोत्तरीयके।
तथा समीक्षकाले तु पितुर्निष्क्रमणे गृहात् ॥ १ ॥
अश्मनो रोहणे चैव हस्तग्राहे तथैव च।

और प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें औंधा कर ॥ २८ ॥ वेदीके चारोंतरफ बिछेहुये कुशोंका हवन करके पूर्णाहुति करे। पुनः त्र्यायुष्करण कर्म करनेके बाद भूयसी दक्षिणा देवे ॥ २९ ॥ और ब्राह्मण तथा अपने वृद्धोंसे आशीर्वाद वधू सहित वर लेवे। इसके पश्चात् कुल देशानुसार वर वधू कोहवरमें जाय कर स्त्रियोंके कहे अनुसार कर्मोंको करे ॥ ३० ॥ विवाह कर्मकी यह सुन्दर अनुक्रमणिका ठाकुरप्रसादमणिवैद्यने बनाया ॥ ३१ ॥

इति बालबोधिनीटीकायां विवाहानुक्रमणिका ॥

विवाहविधिमें कईबातें विशेषरूपसे जाननेके लिये जो कारिका ऊपर लिखी हैं उनका अभिप्राय यह है—कन्याको अधो वस्त्र और उत्तरीय वस्त्र पहिनानेमें, परस्पर समीक्षणमें, पिताके घरसे निकलनेमें अश्मारोहणमें, पाणिग्रहण

---

१ ग्राम्याः-वृद्धाः स्त्रियः ॥

तथा सप्तपदे चैव वधूमूर्ध्न्यभिषेचने ॥ २ ॥
हृदयालम्भने चैव तथा चैवाभिमन्त्रणे।
दृढपुरुषे क्रमेणैवैतान्मन्त्रान् वरः पठेत् ॥ ३ ॥
रौद्रीं पैत्रीं तथा मृत्योर्यमस्याहुतिमेव च।
अन्तर्धानं विना कुर्याद् दम्पत्योरल्पजीवनम् ॥ ४ ॥
रौद्रपैतृमृत्युयमाहुतीर्हुत्वा ह्यपः स्पृशेत्।
अपां स्पर्शनकाले तु प्रणीतोदकमास्पृशेत् ॥ ५ ॥ इति ॥

अथास्मिन् विवाहसंस्कारपुस्तके वधूवरप्रार्थनालौकिकवैदिकगाथागानाद्यवान्तरकर्माण्यपि कानिचिदुपयुक्तानि मध्येमध्ये टिप्पण्यां विन्यस्तानि, तान्यपि कुलदेशानुसारतः श्रद्धालुभिरास्तिकैर्यथास्थानं यथाविध्यनुष्ठेयानि। इति ॥ तथा बहुपुस्तकेषु विवाहसंस्कारे ये वैदिकमन्त्रास्ते सर्वे विनियोगवाक्यसहिता एवोल्लिखितास्तेषां प्रमाणमपि एवं प्राप्यते। यथा—

आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च।
वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

में, सप्तपदीमें, वधूपर अभिषेक करनेमें, "सुमङ्गली" मन्त्रसे वधूको अभिमन्त्रणमें और दृढपुरुषद्वारा वधूको उठा लेजाकर घरमें बिस्तरपर बैठानेमें इन सब अवसरोंके मन्त्र वर पढे ।१–३॥ रुद्र पितर मृत्यु और यमकी आहुतिमें अन्तःपट नहीं करे तो वरवधूका आयु घटता है॥ ४ ॥ रुद्र, पितर, मृत्यु और यम देवताकी आहुति देने पश्चात् जलका स्पर्श करना चाहिये, सो दहिने हाथसे जलका स्पर्श करे ॥ ५ ॥ इस विवाहसंस्कार पुस्तकमें वधूवरकी प्रार्थना, लौकिक और वैदिक गाथागान आदि अवान्तर कर्मोंकोभी करनेके उपयुक्त जान बीचबीचकी टिप्पणियोंमें लिख दिया है। उन कर्मोंको भी आस्तिक और श्रद्धावान् लोग स्वकुलदेशानुसार जहां जो चाहिये वहां वैसाही करें। विवाह संस्कारकी अनेक पुस्तकोंमें सभी वैदिकमंत्र विनियोगवाक्य सहितही लिखे हैं। और इसका प्रमाण भी 'आर्षं छन्दः' आदि श्लोकोंसे पाया जाता है, कि मन्त्रके ऋषिदेवता छन्द और विनियोग

अविदित्वा तु यः कुर्याद्याजनाध्ययनं जपम्।
होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं लभेत्॥ इति॥

परञ्च दशकर्मपद्धत्यादिप्रसिद्धकतिपयसंस्कारपुस्तकेषु विवाहप्रयोगे सप्तवैदिकमन्त्राणामेव विनियोगवाक्योल्लेखनं दृश्यते। तथान्यवैदिकानामपि मन्त्राणां विनियोगवाक्यं विनैव प्रयोगाः कृता इत्यपि दृश्यन्ते। एवं प्रयोगस्यापि प्रमाणं कुत्रापि भविष्यत्येव। एवं विचिन्त्यास्मिन् वक्ष्यमाणविवाहप्रयोगे सप्तवैदिकमन्त्राणां विनियोगवाक्यानि तु स्थूलाक्षरैरङ्कयित्वान्येषां किञ्चित् सूक्ष्माक्षरैरङ्कनं कृतमस्ति। एतद्वैषम्यं विद्वद्वरैरनुचिन्तनीयम्। इति विवाहसोपाङ्गविधौ विशेषविज्ञानार्थाः कारिकाः॥

अथ व्यासोक्तषोडशसंस्कारान्तर्गतशुक्लयजुर्वेदीयवाजसनेयिशाखामनुसृत्य

विवाहसंस्कारप्रयोगः।

तत्र कन्यापिता स्नातः शुचिः अहते शुद्धे वाससी परिधाय

विशेषकर ब्राह्मणोंको जानलेने चाहिये। याजन, अध्ययन, जप होम और जलमें होनेवाले स्नानाघमर्षण कर्मोंको ऋष्यादि जानेविना करनेसे अल्प फल होता है, परञ्च दशकर्मपद्धति आदि कुछ प्रसिद्ध संस्कार पुस्तकोंमें विवाह प्रयोगके वैदिकमन्त्रोंमें केवल सातही मन्त्रोंका विनियोगवाक्य लिखा बहुधा देखा जाताहै। और बाकी वैदिकमन्त्रोंकाभी प्रयोग विनियोगवाक्यके विना ही किया है। ऐसा भी देखा जाता है। तो ऐसे प्रयोगका भी प्रमाण कहीं होगा। बस, इस विचारसे वक्ष्यमाण विवाहप्रयोगके सात वैदिकमन्त्रोंके विनियोगवाक्योंको वडे अक्षरोंमें और बाकी सब मन्त्रोंके कुछ छोटे अक्षरोंमें अङ्कित किये गयेहैं॥ इस वडे और छोटे अक्षरोंसे विद्वान् लोग विचारकर यथोचित प्रयोग करेंगे॥ इति॥

अब व्यासोक्त षोडश संस्कारान्तर्गत शुक्लयजुर्वेदीय वाजसनेयी शाखाके अनुसार विवाह प्रयोग इस प्रकार है कि कन्याका पिता विवाहविधान आरंभ करनेसे पहिलेही स्नानादि द्वारा शुद्ध हो, दो वस्त्रोंको (धोती, अंगोछा)

कृतनित्यक्रियोऽर्हणवेलायां मण्डपे प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखस्य काष्ठासन-
पश्चादूर्द्ध्वजान्ववस्थितवरस्याभिमुखं स्थितः वरस्य ललाटे दधिसहितं
कुंकुमेन तिलकं कुर्यात्[1]। तत्र सविनियोगमन्त्राः—दधिक्राव्णइति विष्णुऋषिः ।
सुरभीदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः । दधिचन्दने विनियोगः। ॐ दधिक्राव्णोऽअकारि-
षञ्जिष्णोरश्वस्यवाजिनः । सुरभिनोमुखाकरत्प्रणऽआयूᳬषितारिषत् । (य० अ० २३ मं० ३२) ॐ युञ्जन्तिब्रध्नमरुषञ्चरन्तम्परितस्थुषः । रोचन्तेरोचनादिवि (य० अ० २३ मंत्र० ९) ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्यकाम्म्याहरीविपक्षसारथे । शोणाधृष्णूनृवाहसा (य० अ०
२३ मं० ६,) ततः स्थाल्यां चतुर्दिक्प्रज्वलितवर्तिदीपं निधाय तेना-
रार्तिकं कुर्यादेभिर्मन्त्रैः—ॐ आयुष्यंवर्च्चस्यᳬरायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदᳬहिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम् (य० अ० ३४ मं० ५०)
॥ १ ॥ नतद्रक्षाᳬसिनपिशाचास्तरन्तिदेवानामोजः प्प्रथमजᳬ
ह्येतत् । योबिभर्त्ति दाक्षायणᳬ हिरण्यᳬ सदेवेषुकृणुतेदीर्घमायुःसमं—

को धारण किये और सन्ध्यादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो, वर पूजनके समय विवाहम-
ण्डपमें आय, और मण्डपमें आयेहुये काष्ठासनके समीप पश्चिमभागमें पूर्वमुख
खडेहुये वरके संमुख स्वयं कन्यापिता पश्चिममुख खडा होकर वरके माथेमें
विनियोग-सहित 'ॐ दधिक्राव्णो०' और 'ॐ युञ्जन्ति०' मन्त्रोंद्वारा दधिसहित
कुंकुमसे तिलक कर, चौमुख प्रज्वलित दीपयुक्त स्थालीसे 'ॐ आयुष्यं०'
मन्त्रोंद्वारा आरती करे । । पुनः स्थालीके दीपको पत्तोंके दोनामें रख बरके

१ तिलकं कुंकुमेनैव सदा मङ्गलकर्मणि ।
कारयित्वा सुमतिमान् न श्वेतचन्दनैर्मृदा ॥

नुष्टेषुकृणुतेदीर्ग्घमायु ÷ (य० अ० ३४ मं० ९१) ॥ २ ॥ ततः स्थाल्याः दीपंपुटकादौ कृत्वा वराञ्जलौ धृत्वैकादशसंख्यकान् शालामन्त्रान् पठन् प्रतिमन्त्रान्ते वरोपरि अक्षतान् विकिरेत् ॥

अथ शालामन्त्राः ११ ।

१–ॐ अथैन ७ शालाम्प्रपादयति सधेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयाद्धे-न्वनडुहौ वाऽइदह्व सर्व्वंबिभृतस्ते देवाऽअब्रुवन्धेन्वनडुहौ वाऽइदह्व सर्व्वं बिभृतो हन्त यदन्येषां व्वयसां वीर्यं तमासीत्तद्धेन्वनडुहयोर्दधामेति सयदन्येषांव्वयसां व्वीर्यमासीत्तद्धेन्वनडुहयोरदधुस्तस्माद्धेनुश्चैवानड्वांश्च भूयिष्ठं भुङ्क्तस्तद्धैतत्सर्व्वाश्यमिवयोधेन्वनडुहयोरश्नीयादन्तगतिरिवत७ हाद्भुतमभिजनितोर्जायायैगर्भन्निरवधीदिति पापमकार्षीदिति पापी कीर्ति स्तस्माद्धेन्वनडुहयोर्नाश्नीयात्तदुहोवाच याज्ञवल्क्योऽश्नाम्येवाहम७शाला॰ श्चेद्भवतीति ॥ १ ॥ (काण्ड ३ । प्रपाठक १ । ब्राह्मण २ । मंत्र २१) २–अथैन ७ शालां प्रपादयति सजवनेनाहवनीयमेत्यग्रेण नार्हपत्य७ सोऽस्यैषपञ्चरो भवत्या सुत्यायै तद्यदस्यैष सञ्चरो भवत्यासुत्यायाऽ अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य गर्भो दीक्षितोऽन्तरेण वै योनिङ्गर्भःसञ्चरति सयत्स॰ तत्रैजतित्वत्परित्वदावर्त्तते तस्मादिमे गर्भाऽएजन्ति त्वत्परित्वदावर्त्तते-तस्मादस्यैष संचरोभवत्यासुत्यायै ॥ (काण्ड ३ । प्रपाठक १ । ब्राह्मण ३। मंत्र २८) ३ ॐ अथैन ७ शालाम्प्रपादयति स प्रपादयन्वाचयति या ते धामानि हविषा यजन्ति तातेव्विश्वापरिभूरस्तु यज्ञं गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचारा सोमदुर्य्यानिति गृहावैदुर्य्यागृहान्नः शिवः शान्तोऽ पापकृत्प्रचरेत्येवैतदाह ॥ (काण्ड ३ । प्रपाठक ३ । ब्राह्मण १ । मंत्र ३०)

अंजलीमें धर देवे । और 'ॐ अथैन ७' इत्यादि शातपथ शालाब्राह्मणके ग्यारह मन्त्रोंसे वरके ऊपर ११ वार अक्षतोंको छिडके । तदनन्तर वरके

४—अत्र हैके उदपात्रमुपनिनयन्ति यथा राज्ञ आगता योदकमाहरेदेवमेतदिति व्यदन्तस्तदु तथा न कुर्य्यान्मानुषꣳहते यज्ञे कुर्वन्ति विवृद्धं वै तद्यज्ञस्य यन्मानुषन्ने विवृद्धं यज्ञे करवाणीति तस्मान्नोपनिनयेत् ॥ (काण्ड ३ । प्रपाठक ३ । ब्राह्मण १ । मन्त्र ३१) ५—स आजगाम गौतमो यत्र प्रवाहणस्य जैवलेरास तस्माऽआसनमाहार्य्योदकमाहारयाञ्चकाराथ हास्माऽअर्घञ्चकार ॥ (काण्ड—१४ । प्रपाठक ७ । ब्राह्मण २ । मन्त्र ७ ।) ६—सहोवाच व्वरं भगवते गौतमाय दद्म इति सहोवाच प्रतिज्ञातोम्मऽएषव्वरोयान्तु कुमारस्यान्ते व्याचमभाषभास्ताम्मे ब्रूहीति ॥ (काण्ड १४ । प्रपाठक ७ । ब्राह्मण २ । मन्त्र ८) ७—सहोवाच देवेषुवै गौतमस्तद्वरेषुमानुषाणाꣳब्रूहीति ॥ (काण्ड १४ । प्रपाठक ७ । ब्राह्मण २ । मन्त्र ९) ८—सहोवाच विज्ञायते हास्ति हिरण्यस्य पात्रङ्गोऽअश्वानान्दासीनां प्रवाराणां परिधानानाम्मानो भवान् वहोरनन्तस्यापर्य्यन्तस्याभ्यवदान्योऽभूदिति सवै गौतमतीर्थेनेच्छासाऽइत्युपैम्यहं भवन्तमिति व्याचाहस्मेवपूर्व्वऽउपयन्ति सहोपायनकीर्त्ति उवाच ॥ (काण्ड १४ । प्रपाठक ७ । ब्राह्मण २ । मन्त्र १०) ९—अथ वरं व्वृणीते बलवद्वै देवाऽएतस्य ग्रहस्य होमं प्रेप्सन्तितेऽस्माऽएतं वरꣳसमृद्धयन्ति क्षिप्रेणऽइमङ्ग्रहञ्जुहोदिति तस्माद्वरंव्वृणीते (काण्ड ४ । प्रपाठक १ । ब्राह्मण १ । मन्त्र २१) १०—अथव्वरं व्वृणीते यꣳह वैकञ्च सुषुवाणोव्वरं व्वृणीते सोऽस्मै सर्व्वꣳसमृद्धयते तस्माद्वरं व्वृणीते ॥ (काण्ड ५ । प्रपाठक ४ । ब्राह्मण १ । मंत्र ८) ११—अथ वाराह्याऽउपानहाऽउपमुञ्चतेऽअग्नौ ह वै देवा घृतकुम्भं प्रवेशयाञ्चक्रुस्ततो व्वराहः संबभूवुस्तस्माद्वराहोमे दुरोघृताद्धि संबभूवुस्तस्माद्वराहो गावः सञ्जानते स्वमेवैतद्रसमभिसञ्जानते तत्पशूनामेवैतद्रसे प्रतिष्ठति तस्माद्वाराह्याऽउपानहाऽउपमुञ्चते ॥ (काण्ड ५ । प्रपाठक ३ । ब्राह्मण ५ । मन्त्र १९)

(इति शातपथं विवाहादौ पठनीयं शालाब्राह्मणम्) ततो वराञ्जलिस्थितदीपपुटक-मुत्तार्य भूमौ निधाय । ततः--"षडर्घ्या भवन्त्याचार्यऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति " (पारस्क० गृ० १ । ३ । १) अनेन काष्ठपीठादिशुद्धमासनं वरोपवेशनस्थाने धृत्वा कन्याप्रदः वरं संबोध्य (आसनमहार्याह) ॐ साधुभवानास्तामिति प्रजापतिऋषिः । ब्रह्मा देवता । यजुश्छन्दः । वरार्चने विनियोगः " ॐ साधुभवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् । " (पार० गृ० १ । ३ । ४) इतिब्रूयात् । अर्चय इतिवरेणोक्ते--यजमानः वरोपवेशनार्थमेवं शुद्धमासनं दत्त्वा विष्टरमादाय ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टरः । इति अन्येन[1]ोक्ते । ॐ विष्टरः[2] प्रतिगृह्यताम् इति दाता वदेत् । विष्टरं प्रतिगृह्णामि--इत्यभिधाय वरो यजमानहस्ताद्विष्टरं गृहीत्वा । वर्ष्मोस्मीत्याथर्वण ऋषिर्विष्टरोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः । उपवेशने विनियोगः । ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्य्यः । इमन्तमभितिष्ठामि योमाकश्चाभिदा[3]सति ॥ इत्यनेनासने उत्त-

अंजलिसे दीप उतार पृथ्वीपर रख और "षडर्घ्या०" इस पारस्कर सूत्रको कहतेहुये कन्यापिता, वरके बैठनेके स्थानमें पीढा आदि शुद्धासन धरके वरको संबोधित कर विनियोगके सहित " ॐ साधुभवा० मन्त्र पढे । तब वरके 'अर्चय' कहनेपर वोह शुद्धासन वरके बैठनेको देकर । कन्यादाता, विष्टर (२५ कुशोंका बनाया हुआ) अपने हाथमें लेवे, तब अन्य कोई यजमानके साथियोंमेंसे ' ॐ विष्टरः ' ऐसा तीन वार कहनेपर कन्यादाता 'ॐ विष्टरः प्रति०' ऐसा कहे । तब वर 'विष्टरं प्रति०' ऐसा कहता हुआ दातासे विष्टर अपने हाथमें लेकर विनियोगसहित ' वर्ष्मोस्मि०' मन्त्रको पढकर अपने आसनपर विष्टरको उत्तराग्र

१ अन्यस्त्रिः त्रिः प्राह विष्टरादीनि, इति पार० गृ० १।३।६ ॥
२ पञ्चाशद्भिः कुशैर्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टर. ॥ इति गृह्यसंग्रहे ।
३ अभिपूर्वोदासतिः हिंसार्थे वर्तत इति कर्कभाष्ये व्याख्यातम् ।

राग्रविष्टरोपरि वर उपविशति । तत्रोपविष्टे वरे यजमानः स्वयमप्युपविश्य पाद्यजलम् अञ्जलिनादाय ॐ पाद्यम् पाद्यम् पाद्यम् इत्यन्येनोक्ते—ॐ पाद्यम् प्रतिगृह्यताम् । इति दाता वदेत् । ॐ पाद्यम् प्रतिगृह्णामि । इत्यभिधाय यजमानाञ्जलितोऽञ्जलिना पाद्यजलमादाय वरः—विराजो दोहोऽसीति प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवताः । यजुश्छन्दः । जलग्रहणे पादप्रक्षालने विनियोगः । ॐ विराजो दोहोसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः । इति दक्षिणं पादं प्रक्षालयति । अनेनैव मंत्रेण वामपादप्रक्षालनम् ॥ ततः पूर्ववद्विष्टरान्तरं गृहीत्वा चरणयोरधस्तात् उत्तराग्रं वरः स्थापयेत् । ततो दूर्वाक्षतफलपुष्पचन्दनदधिजलयुतार्घ-पात्रं गृहीत्वा यजमानः ॐ अर्घो अर्घो अर्घः । इत्यन्येनोक्ते । ॐ अर्घः प्रतिगृह्यताम् । इति दाता वदेत् । ॐ अर्घं प्रतिगृह्णामि । इत्य-भिधाय वरः यजमानहस्तादर्घं गृहीत्वा । आपस्थ इति मंत्रस्य सिंधुद्वीप ऋषिः । आपोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः । अर्घ्याक्षतादिधारणे विनियोगः ।

रखके उसपर बैठजावे । वरके बैठजानेपर कन्यादाता अपनी अंजलीमें वरके पाद प्रक्षालनार्थ जल लेकर '‌ॐ पाद्यम्' ऐसा तीनवार अन्यके कहने पर 'ॐ पाद्यम् प्र०' ऐसा कहे । तब वर 'ॐ पाद्यम् प्रति०' ऐसा कहकर, दाताके अंजलीसे अपनी अंजलीमें जल लेकर विनियोगसहित 'ॐ विराजोदोहोसि०' मन्त्र पढके, ब्राह्मण वर हो तो प्रथम दहिना पग धोकर उसी मन्त्रसे वामपग भी धोवे । यदि वर क्षत्रियादि हो तो प्रथम वाम पग धोकर पीछे दक्षिणपगको धोवे । तत्पश्चात् कन्यादाता पूर्वके तुल्य द्वितीय विष्टर वरको देवे, और वर विष्टरको दाताके हाथसे लेकर उत्तराग्र करके अपने दोनोंके नीचे धरलेवे। तदनन्तर कन्यादाता सुवर्णपात्र या शंखमें अर्घार्थ जल जिसमें दूर्वा, अक्षत, फूल, पुष्प, चन्दन और दधि छोडाहै अपने हाथमें लेवे और 'ॐ अर्घो०' ऐसा तीनवार अन्यके कहने पर 'ॐ अर्घ्यः प्र०' कहे । तब वर 'ॐ अर्घं प्रति०' ऐसा कहकर दाताके हाथसे अर्घपात्रको

ॐ आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नुवान् । इति शिरसाऽभिवंद्य शिरसि अक्षतादिकञ्च किञ्चिद्दत्त्वा । समुद्रं वः इत्यादिमन्त्रत्रयस्याथर्वण-ऋषिः । बृहतीछन्दः । वरुणोदेवता । अर्घ्योदकनिनयने विनियोगः । ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि । स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माकं वीरामापरासेचिमत्पयः । इत्यर्घपात्रस्थं जलम् ऐशान्यां दिशि निनयन् पठति । ततः आचमनीयमादाय—ॐ आचमनीयम् आचमनीयम् आचमनीयम् इत्यन्येनोक्ते । ॐ आचमनीयं प्रतिगृह्यताम् इति दाता वदेत् । ॐ आचमनीयं प्रतिगृह्णामि । वरः इत्यभिधाय यजमानहस्तात् आचमनीयपात्रमादाय । आमागन्निति परमेष्ठी ऋषिः । बृहतीछन्दः । आपो देवता । अपामुपस्पर्शने विनियोगः) ॐ आमागन्यशसा सꣳसृज वर्चसा तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टं तनूनाम् ॥ अनेन सकृदाचमेत् । द्विस्तूष्णीम् । ततो मधुपर्कम् ॥ तत्र—यजमानः कांस्यपात्रस्थदधिमधुघृतानि कांस्यपात्रपिहितान्यादाय-

लेके विनियोग सहित ‘ ॐ आपस्थ० ’ मन्त्रको पढ अर्घपात्रकी वन्दना शिरसे कर और उसमेंका दूर्वाक्षतादि कुछ अपने शिरमें लगाके विनियोग सहित ‘ ॐ समुद्रं वः ’ इस मन्त्रको पढताहुआ अर्घके जलको ईशानदिशामें गिरा देवे । तत्पश्चात् कन्यादाता आचमनके योग्य पात्रस्थ जलको अपने हाथमें लेके ‘ आचमनीयम् ’ ऐसा तीनवार अन्यके कहने पर ‘ ॐ आचमनीयम्प्र० ’ ऐसा कहे, तब वर ‘ ॐ आचमनीयम्प्र० ’ ऐसा कहकर यजमानके हाथसे आचमनीय पात्रको स्वयं लेके विनियोग सहित ‘ ॐ आमाग० ’ मन्त्र पढकर एकवार आचमन करे और दोवार तूष्णीं विना मन्त्र पढे ही आचमन करलेवे । तदनन्तर कन्यादाता कांसेके पात्रमें दधि (दही १२ तोला) मधु (शहद ४ तोला) घृत (गोघृत ४ तोला) ये तीनों एकत्र मिलाय और द्वितीय कांस्यपात्रसे

१ आज्यमेकपलं ग्राह्यं दधि त्रिपलमेव च ।
मधु त्वेकपलं ग्राह्यं मधुपर्कस्स उच्यते ॥

ॐ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः । इत्यन्येनोक्ते । ॐ मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् इति दाता वदेत् । ॐ मधुपर्कं प्रतिगृह्णामि इति वरो वदेत् । मित्रस्यत्वेति मंत्रस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । मधुपर्को देवता । यजुश्छन्दः । मधुपर्कावेक्षणे विनियोगः । ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे । इति यजमानकरस्थमेव तत्पात्रमुद्घाट्य निरीक्ष्य च । देवस्यत्वेति मंत्रस्य बृहस्पत्याङ्गिरसौ ऋषी । सविता देवता । यजुश्छन्दः । मधुपर्कग्रहणे विनियोगः । ॐ देवस्यत्वासवितुःप्प्रसवेश्श्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्ष्णोहस्ताब्भ्याम् । प्रतिगृह्णामि । (य० अ० १ मन्त्र १०) इत्यनेन मधुपर्कपात्रं गृहीत्वा वामहस्ते कृत्वा । नमः श्यावेति मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । यजुश्छन्दः । आलोडने विनियोगः । ॐ नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्क्रन्तामि । इति दक्षिणानामिकया त्रिः प्रदक्षिणम् आलोड्य अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां भूमौ किञ्चिन्निःक्षिप्य पुनरेवं द्विवारमालोड्य भूमौ प्रत्येकं किञ्चित्किञ्चिन्निः क्षिपेत् । ततो वरः यन्मधुन इति कुत्स ऋषिः ।

ढाँका हुआ पात्रको लेकर 'ॐमधुपर्को०' ऐसा तीन बार अन्यके कहनेपर 'ॐ मधुपर्कः प्र०' ऐसा कहे । तब वर 'ॐ मधुपर्कं प्र०' ऐसा कहे और कन्यादाताके हाथहीमें लिये हुये पात्रको खोल विनियोग सहित 'ॐमित्रस्य०' मन्त्रको कहताहुआ उसको देखलेवे तथा विनियोगसहित 'ॐदेवस्य त्वा०' मन्त्रको कहताहुआ अपने दोनों हाथोंसे मधुपर्क पात्रको दाताके हाथसे लेकर अपने बाँयें हाथपर रख लेवे । और विनियोग सहित 'ॐ नमःश्यावा०' मन्त्रको पढके अपने अनामिका और अंगुष्ठसे दध्यादिको तीनबार मिलाकर प्रत्येकबार पृथ्वीपर किञ्चित् २ गिरा देवे । पुनः वर विनियोग सहित

१ अत्र नमस्यशब्देन मधुपर्को विवक्षितः । तेनायमर्थः, हे नमस्य नमस्कारार्ह अवश्या यानि त्वामित्यध्याहार्यम् त्वां मिश्रयामीत्यर्थः । किञ्च ते तव अशने भोजने यत् अविद्धम् उपहितं तत्ते तव निष्क्रन्तामि अपसारयामि । नमस्ये स्तुतिपूर्वकं सम्बोध्य त्वां मिश्रयामि तवोपहितं च स्फोटयामि इति वाक्यार्थः । अत्र अवाश्यायान्निति 'श्येङ्ग गतौ' इत्यस्य धातोश्छान्दसत्वेनात्मनेपदं न भवति । अवपूर्वे आङ्पूर्वे कृते सोपसर्गत्वात् मिश्रणार्थत्वात् लोडुत्तमपुरुषैकवचनम् ॥

मधुपर्को देवता। जगतीछन्दः। मधुपर्कप्राशने विनियोगः। ॐ यन्मधुनो मधव्यं परमꣳरूपमन्नाद्यं तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि॥ इत्यनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां वारत्रयं मधुपर्कं प्राशयेत्। प्रतिप्राशने चैतन्मन्त्रपाठः। ततो मधुपर्कशेषम् असंचरदेशे धारयेत्। ततो द्विराचम्य वरः इन्द्रियाणि संस्पृशेत्। तद्यथा—ॐ वाङ्म आस्येऽस्तु। इतिकराग्रेण मुखालम्भनम्। ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु। इति दक्षिणावामनासारन्ध्रद्वये। ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। इतिदक्षिणोत्तरचक्षुषी। ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। इति कर्णयोः। ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु। इतिबाह्वोः ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु। इतियुगपदूरू। ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। इति शिरः प्रभृतीनि सर्वगात्राणि स्पृशेत्। उभाभ्यां हस्ताभ्याम् इत्यास्यादि प्रत्येकं सर्वगात्राणि संस्पृश्य आचमेत्। तृणच्छेदनम्। तत्र वरस्य समीपे भूमावुदगग्रान् दर्भानास्तीर्य ॐ गौर्गौर्गौः इत्यन्येना-

'ॐयन्मधुनो०' मन्त्रको पढके तीनबार थोडा थोडा मधुपर्कको खावे, और तीनोंवार खानेमें मन्त्र पढे, तत्पश्चात् शेष बचे मधुपर्कको मार्गमें भिन्नस्थलमें गिरा देवे। और जलसे दो वार आचमनकर हाथ धोकर अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श वर अपने दक्षिणहस्ताग्रसे इस प्रकार करे कि, 'ॐ वाङ्म०' से मुखका 'ॐनसोर्मे०' से नासिकाके दोनों छिद्रोंका 'ॐ अक्ष्णोर्मे०' से पहिले दक्षिण, पीछे वाम ऐसे दोनों चक्षुओंको 'ॐ कर्णयो०' से दहिने बाँयें दोनों कानोंको 'ॐ बाह्वोर्मे०' से दोनों बाहू, दहिने हाथसे बांयें और बांयें हाथसे दाहिने। ऐसेही दोनों हाथोंसे 'ॐ ऊर्वोर्मे०' से एक साथ दोनों ऊरूका (कमरसे नीचे और घुट्ठनोंसे ऊपरके भागका नाम ऊरू है) और 'अरिष्टानि०' मन्त्रको कहता दोनों हाथोंसे शिरसे पादपर्यन्त सब अङ्गोंका स्पर्श करे। इस प्रकार अङ्गस्पर्शके पीछे वर जलका आचमन कर लेवे। तत्पश्चात् कन्यादाता वरके समीप भूमिपर उत्तरको जिनका अग्र भाग हो ऐसे कुशोंको बिछाकर 'ॐ गौः' ऐसा तीनबार अन्यके

भिहिते । यजमानः--ॐ गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् । इतिपठन् वरहस्ते गोनिष्क्रयद्रव्यं दद्यात् । ततो वरः द्रव्यं गृहीत्वा मन्त्रं पठेत् । मातारुद्राणामिति ब्रह्मऋषिः । गौर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । गवाभिमन्त्रणे विनियोगः । ॐ मातारुद्राणां दुहिता वसूनाᳪस्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः । प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ट मम चामुष्य अमुकशर्मणो यजमानस्य च उभयोः पाप्मा हतः । ॐ उत्सृजत तृणान्यत्तु । इति उच्चैः उच्चार्य तृणं छिन्द्यात् इति ॥

अथाग्निस्थापनम् ।

तत्र पञ्च भूसंस्काराः—तत्र चतुर्हस्तपरिमितनिर्मितायां वेदिकायां तुषकेशशर्कराभस्मादिरहितायां हस्तमात्रपरिमितां चतुरस्रां भूमिं कुशैः परिसमुह्य तान्कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फ्येन स्रुवेण वा प्रागग्रप्रादेशमात्रमुत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणैवानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य । तत्र तूष्णीं कांस्यपा-

कहनेपर कन्यादाता वरके हाथमें गौका निष्क्रय द्रव्य देकर 'ॐ गौर्गौर्गौःप्र०' इस वाक्यको पढे । और वर द्रव्यको हाथमें लेकर विनियोगसहित 'ॐ मातारुद्रा०' इस मन्त्रको पढे, इस मन्त्रके पढनेमें 'अमुष्य अमुकशर्मणो' स्थानमें कन्यादाताका षष्ठ्यन्तनाम जैसे यज्ञदत्तशर्मणो कहकर पूरा करे । तथा 'ॐ उत्सृजत०' इस वाक्यको ऊंचे स्वरसे कहता हुआ एक तृणच्छेदन कर डालदेवे ॥

तत्पश्चात् हवनार्थअग्निस्थापन-इस प्रकार करे कि, भूसी, केश, कंकडी और भस्मादिसे रहित पहिलेकी बनी वेदीके बीच हाथभरकी चौकोर नापीहुई भूमिको कुशोंसे बटोर कर उन कुशोंको ईशान कोणमें फेंक देवे, उस साफ कियेहुये स्थानको गोवर और जलसे लीप कर, स्फ्य अथवा स्रुवके मूलसे प्रादेशमात्र प्रागग्र उत्तरोत्तर क्रमसे तीन रेखा वेदीमें खींचे, उल्लेखन क्रमही करके प्रत्येक रेखाओंपरसे अनामिका और अंगुष्ठद्वारा मट्टी उठाउठाकर फेंक

१ अत्र यजमानस्य षष्ठ्यन्तनामोच्चारणं वरेण कर्त्तव्यम् । यथा यज्ञदेवस्य इति ॥

त्रस्थं योजकनामानं वह्निमग्निकोणादानीय प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुखमुपसमाधाय तद्रक्षार्थं किञ्चित् काष्ठादिकं तत्र संयोज्य, आनीताग्निपात्रे जलाक्षतादिप्रक्षेपः । ततः हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा अग्ने योजकनाम शाण्डिल्यगोत्र शाण्डिल्यासितदेवलेतित्रिप्रवरान्वित भूमिमातः वरुणपितः मेषध्वज प्रांगमुख मम संमुखो भव । इति अग्नौ अक्षतान् प्रक्षिप्य योजकनामानमग्निं प्रतिष्ठापयेत् । ततः कौतुकागाराद्वरः कन्यामानीय मण्डपे उपवेश्य स्वयं चोपविशेत् ॥ ततः वस्त्रचतुष्टयं कन्यापिता वराय प्रयच्छति । तन्मध्ये वस्त्रद्वयं वरः क्रमेण मन्त्रपाठपूर्वकं कन्यायै प्रयच्छति । तद्यथा—जरां गच्छेति प्रजापतिर्ऋषिः । वासो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । कन्यायै परिधानवस्त्रदाने विनियोगः । ॐ जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतञ्च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः । इतिमन्त्रेण परिधानवस्त्रं तस्यै ददाति वरः । याअकृन्तन्निति प्रजापतिर्ऋषिः । वासो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । उत्तरीयवस्त्रपरिधाने विनियोगः । ॐ या अकृन्तन्न वयं या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ । रेखास्थानोंपर छिडक देवे । और कांसेके पात्रमें अग्निको रख आग्नेय दिशासे ले आकर पश्चिममुख योजकनाम इस अग्निको स्वयं पूर्वमुख होकर वेदीमें स्थापनकर उसके रक्षाके अर्थ कुछ काष्ठादि उसमें लगाय किसीको नियत करदेवे कि, अग्नि बुतने नहीं पावे । और जिस पात्रमें घरके अग्नि लायेहैं उस पात्रमें जलाक्षतादि छोड. हाथमें अक्षतले ‘ अग्नेयोजकनाम० ’ इत्यादि ‘ मम संमुखो भव ’ पर्यन्त कह अक्षत छोडकर योजकाग्निकी प्रतिष्ठा करदेवे । तत्पश्चात् कौतुकागारसे वर कन्याको लाकर मण्डपमें बैठाय आपभी बैठजावे । अब कन्यादाता वरको चार वस्त्र देवे और वर लेकर उनमेंसे दो वस्त्र कन्याको इस प्रकार देवे कि, विनियोग सहित ‘ ॐ जराङ्गच्छ० ’ मन्त्र पढकर पहिननेकी साडी और विनियोग सहित ‘ ॐ या अकृन्तन्न० ’ इस मन्त्रद्वारा ऊपर

तास्त्वादेवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ इति पठित्वोत्त॰ रीयं ददाति ॥ ततो वरः स्वयमपि परिधास्यै इत्याथर्वणऋषिः। वासो॰ देवता। पंक्तिश्छन्दः। वस्त्रपरिधाने विनियोगः। ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्त्वाय जरदष्टिरस्मि। शतञ्च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषम॰ भिसंव्ययिष्ये ॥ इति पठित्वा अधोवस्त्रं परिधत्ते। यशसामेत्याथर्वण ऋषिः। वासो देवता। पंक्तिश्छन्दः। उत्तरीयपरिधाने विनियोगः। ॐ यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती। यशो भगश्च माविदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ इति पठित्वोत्तरीयं वासः परिदधाति वरः। ततो वरस्य कन्यायाश्च द्विराचमनम्। ततः कन्याप्रदेनं परस्परं समञ्जेथाम् इति प्रेषणम्। कन्यावरयोः परस्परमभिमुखीकरणञ्च। समञ्जन्तु विश्वे देवा इत्याथर्वण ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवता। अनुष्टुप्छन्दः। समञ्जने विनि॰ योगः। ॐ समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। संमातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥ इति संमुखीभूतो वरः पठेत् ॥

अथ शाखोच्चारणम्।

तत्र क्रमः—यद्यप्यग्रे वक्ष्यमाणकन्यादानवाक्ये वरकन्ययोः गोत्रा॰ द्युच्चारणं त्रित्रिवारं भविष्यत्येव, तथाप्यत्रादावेव लौकिकाचारात् ओढनेका दूसरा उत्तरीय वस्त्र पहिनाय व ओढाय देवे। फिर वर स्वयं भी विनियोग सहित 'ॐ परिधास्यै॰' मन्त्रको पढकर धोती पहिन और विनियोग सहित 'ॐ यशसा॰' मन्त्र कहकर उत्तरीय अर्थात् डुपट्टा ऊपर ओढलेवे। तिस पीछे कन्या वर दोनों दो दो बार आचमन करें। तदनन्तर कन्यादाता दोनोंसे 'परस्परं समीक्षेथाम्' ऐसा कहे और कन्या तथा वर एक दूसरेका मुख देखें और वर कन्याका मुख देखताहुआ विनियोग सहित 'ॐ समञ्जन्तु॰' मन्त्रको पढे ॥ इतना कर्म होजानेपर वर और कन्याका शाखोच्चार करना। यद्यपि कन्यादानके वाक्यमें वर तथा कन्याके पूर्वज तीन पुरुषों सहितके गोत्रादिका कथन तीनतीन बार होहीगा तथापि लोकाचारके अनुसार यहां

वरकन्ययोः क्रमेण त्रित्रिवारं शाखोच्चारणं भवति । तथैवात्र प्रयोगोऽपि लिखितः । तद्यथा—वराञ्जलिं कन्याञ्जलिञ्च तण्डुलद्रव्यादिभिः संपूर्य्य टिप्पण्यां लिखितश्लोकानां मध्ये यथावकाशश्लोकपाठपूर्वकं वरपक्षिणो वरस्य, तथा कन्यापक्षिणःकन्यायाःपूर्वजत्रिपुरुषाणां विशिष्टविशेषणसहितानां क्रमेणगोत्राद्युच्चारणं कुर्युः॥अथ विशिष्टविशेषणार्थे गद्ये द्वे। तत्रादौ

पहिलेभी वर एवं कन्याका क्रमसे तीनतीन बार गोत्रादिका उच्चारण इस प्रकार किया जाताहै कि, वर तथा कन्याकी अंजली चावल और द्रव्यादिसे भरकर, पहिले वरपक्षके पण्डित वरका, तत्पश्चात् कन्यापक्षके कन्याका टिप्पणीमें लिखे माङ्गलिक श्लोकोंमेंसे यथावकाश श्लोकोंको कहनेके पीछे, मूलमें लिखे "विशिष्टविशेषणार्थ" के दोगद्योंमेंसे एकएक क्रमसे कहनेकेसाथ तीनतीन पुरुषोंका गोत्रादि उच्चारण करें ॥ विशिष्टविशेषणके दो गद्य लिखतेहैं । जिनमें प्रथम

---

१ अथात्र कतिपयमङ्गलश्लोकाः लिख्यन्ते—

खर्वं स्थूलतरं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
विघ्नेशं मधुगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारिताहितजनं सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥ १ ॥
योऽसौ विघ्नविनाशनो गजमुखो सर्वार्थसिद्धिप्रदो
यो विद्याधरसिद्धकिन्नरगणैः संस्तूयमानो ध्रुवम ।
यो विघ्नं हरते स्मृतोऽपि सततं यो बुद्धिदस्सर्वदा
यो गौर्यास्सुमनोहरो हरसुतो लम्बोदरः पातु वः ॥ २ ॥
औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताऽभिमुख्यं पुनः ।
दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे
संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु वः ॥ ३ ॥

वरपक्षीयो गद्यः शाखोच्चारश्च—अस्मिन्दिने वा अस्यां रात्रौ अस्मिन्मङ्गलमण्डपाभ्यन्तरे स्वस्तिश्रीमद्विविधविद्याविचारचातुरीवि-

पादाग्रस्थितया मुहुस्तनभरेणानीतया नम्रतां
शम्भोः संस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने ।
ह्रीमत्या शिरसाहितस्सपुलकस्स्वेदोद्गमोत्कम्पया
विश्लिष्यन्कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः ॥ ४ ॥
आदित्योऽग्नियुतः शशी सवरुणो भौमः कुमारान्वितः
सौम्यो विष्णुयुतो गुरुस्समघवा देव्या युतो भार्गवः ।
सब्रह्मा रविजो गणेश्वरयुतो राहुर्भुजङ्गेश्वरो
माङ्गल्यं सततं हरार्चनरताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ५ ॥
बालैर्लंबालकालीविलुलितवदनः स्फारनेत्रारविन्दो
नासाग्रामुक्तमुक्तास्फुरदधरदलप्रस्खलद्वाग्विलासः ।
गोपालीहस्ततालीचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवालो
नृत्यन्नन्दाङ्गणेयः स दिशतु भगवान्मङ्गलं वो विवाहे ॥ ६ ॥
पूजापद्मपरम्परापुलकितौ पार्ष्ण्योः परं पेलवौ
पुण्यौ पातकिपापपाटनपटू पृथ्वीं प्रपन्नौ प्रथाम् ।
प्रायः पर्वतपुत्रिकापृथुपटैः पस्त्ये पुरा पूरितौ
पादौ पण्डितपाजकः पशुपतेः प्रीत्या पुरः पश्यतु ॥ ७ ॥
वाश्चारेट्ध्वजधृक धृतोड्वधिपकः कुध्रेट्जजानिर्गणेट्
गोराडाट उरस्सरेट्गुरुतरग्रैवेयकव्याडलम् ।
उड्वीड्धक् नरकास्थिभृत्रिदृगिभेडार्द्राजिनाच्छच्छविः
स स्तादम्बुमदम्बुदालिगलरुक् देवो मुदे वो मृडः ॥ ८ ॥
श्रीमत्पङ्कजविष्टरौ हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनल-
श्चन्दो भास्करवित्तपालवरुणा- प्रेताधिपाद्या ग्रहाः ।
प्रद्युम्नौ नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः

निर्जितसकलवादिवृन्दोपरिविराजमानपदपदार्थसाहित्यरचनामृतायमान-काव्यकौतुकचमत्कारपरिणतनिसर्गसुन्दरसहजानुभावगुणनिकरगुम्फि-तयशः सुरभीकृतमङ्गलमण्डपस्थश्रीमतः अमुकवेदान्तर्गत-अमुकशाखा-ध्यायिनःअमुकसूत्रस्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्मणः

स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ९ ॥
गौरी श्रीकुलदेवता चसुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा
सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रताऽरुन्धती।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी
वेला चाम्बुनिधेः समीनमकराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ १० ॥
गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा
कावेरी सरयूर्महेन्द्रतनया चर्मण्वती वेदिका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता च या गण्डकी
पुण्याः पुण्यजलैः समुद्रसहिता कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ११ ॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमाः
धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भा च देवाङ्गना।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखोऽमृतं चाम्बुधेः
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ १२ ॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहणां पतिः
शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कन्दश्च सेनापतिः।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः शक्तिः पतीनां पतिः
सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्।

इति मंगलश्लोकाः ॥

प्रपौत्रोयम् ॥ (एवमेव) पौत्रोयम् । (तथैव) पुत्रोऽयम् । प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्तिसंवादेष्वभयं वो वृद्धिः वरकन्ययोर्मङ्गलमास्ताम् । वरश्चिरजीवी कन्या सावित्री भूयात् । इति वरपक्षे प्रथमशाखोच्चारः ॥ १ ॥ कन्यापक्षीयो गद्यः शाखोच्चारश्च—अस्मिन्दिने वा अस्यां रात्रौ अस्मिन् मङ्गलमण्डपाभ्यन्तरे स्वस्तिश्रीमत्समस्तसौन्दर्यधैर्यगाम्भीर्यशौर्योदार्यादिधार्यद्गुणगणगरिष्ठसर्वविद्यावरिष्ठनिष्ठितप्रतिष्ठितशिष्टप्रकृष्टहृष्टसत्पथप्रविष्टमनोभीष्टदोत्कृष्टभूवृन्दारकस्य श्रीमतः अमुकवेदान्तर्गत-अमुकशाखाध्यायिनः अमुकसूत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्मणः प्रपौत्रीयम् (एवमेव) पौत्रीयम् (तथैव) पुत्रीयम् । प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति संवादेष्वभयं वो वृद्धिः कन्यावरयोर्मङ्गलमास्ताम् कन्या सावित्री वरश्चिरजीवी भूयात् ॥ इति कन्यापक्षे प्रथमशाखोच्चारः ॥ १ ॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेणैव वरपक्षीयाः कन्यापक्षीयाश्च क्रमेण द्वितीयतृतीयवारमपि शाखोच्चारं कुर्युः । ततो वरःकन्यापि च स्वाञ्जलिस्थितद्रव्यादीनि स्वस्वपुरोहिताय दद्याताम् ॥

इति शाखोच्चारः ॥

वर पक्षका गद्य ' अस्मिन् दिने०' से आरंभकर अमुकस्थानोंमें वरके तीन पुरुषोंके गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा, सूत्र और नामोंको कहतेहुये 'वरपक्षे प्रथमशाखोच्चारः' पर्यन्त पंडित कहदेवें ॥ १ ॥ वरपक्षके प्रथमशाखोच्चार होजाने पर, कन्यापक्षके पंडित भी मङ्गलश्लोकोंके उपरान्त 'अस्मिन्दिने०' इत्यादि मूलका दूसरा गद्य कहता हुआ अमुकस्थानोंमें कन्याके तीन पुरुषोंके गोत्रादि उच्चारण कर 'कन्यापक्षे प्रथमशाखोच्चारः' पर्यन्त कहें ॥

इस प्रकार कन्यापक्षके प्रथमशाखोच्चार होजानेपर, वरपक्षवाले पुनः पूर्ववत् श्लोकादि कह 'वरपक्षेद्वितीयशाखोच्चारः' और फिर कन्यापक्षके भी पूर्ववत् कह 'कन्यापक्षे द्वितीयशाखोच्चारः' ऐसेही फिरभी वरपक्षके तथा कन्यापक्षके भी 'तृतीय शाखोच्चारः' कहकर क्रमसे तीन तीन शाखोच्चार पूरा करदेवे ! फिर वरके अंजलिसे वरके पुरोहित और कन्याके अंजलिसे कन्याके पुरोहित चावल और द्रव्यादि लेवें ।

इति शाखोच्चारः ॥

अथ कन्यादानम् ॥

तत्र कन्यादाता वरस्य दक्षिणपार्श्वभागे शुभासने उदङ्मुख उपविश्य स्वस्य दक्षिणे ग्रन्थिबन्धनयुतां स्वकीयां पत्नीञ्चोपवेश्य कन्यायाः हरिद्रया हस्तलेपनं कृत्वा कुशादीन्यादाय कन्यादानस्य प्रतिज्ञासंकल्पं कुर्यात्--ॐ विष्णुर्विष्णुरित्यादि अद्यामुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे एवंगुणविशेषणविशिष्टायां शुभतिथौ अस्मिन्पुण्याहे अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा मम अमुकनाम्न्या अस्याः कन्यायाः अनेन अमुकनाम्ना वरेण धर्म्यप्रजया उभयोर्वंशयोर्वंशवृद्ध्यर्थं तथा च मम समस्तपितॄणां निरतिशयसानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिश्रुतिस्मृतिपुराणादिकन्यादानकल्पोक्तफलावाप्तये च अनेन वरेण अस्यां कन्यायाम् उत्पादयिष्यमाणसन्तत्या दश पूर्वान् दश परान् मां च एकविंशतिपुरुषानुद्धर्त्तुं ब्राह्मविवाहविधिना श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये कन्यादानाख्यमहादानमहं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य । पुनः सप-

तत्पश्चात् कन्यादानका विधान निम्नरीतिसे करे अर्थात् वरके दाहिने तरफके भागमें कन्यादाता शुभासनपर उत्तरमुख बैठ अपने दहिने गांठ बंधी हुई अपनी पत्नीको भी बैठाकर, कन्याके दोनों हाथोंमें हलदी लेपन करदेवे । और अपने हाथमें कुशादि ले कन्यादान प्रतिज्ञासंकल्प इस प्रकार करे कि 'ॐ विष्णु०' आदिसे कह बीचमें अमुकपदस्थानोंमें वर्तमान मासादि और अपने नामादिकोंको यथास्थान कहता हुआ 'महादानमहं करिष्ये' पर्यन्त पूरा कहकर जल छोड देवे ॥ पुन

---

१ सङ्कल्पेन विना कर्म यत्किञ्चित्कुरुते नरः ।
फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत् ॥ १ ॥
संकीर्त्य मासपक्षादीन्निमित्तानि तथैव च ।
इदं कर्म करिष्येऽहमिति संकल्पमाचरेत् ॥ २ ॥

जो मनुष्य प्रथम संकल्प नहीं करके जो कुछभी कर्म करताहै तो उस कर्मका फल काम और धर्मका आधा नाश हो जाता है ॥ १ ॥ संकल्प करनेका नियम यह है कि, मास पक्षादिकोंका नाम प्रथम उच्चारण करके, तब जो निमित्त हों उनको भी कहकर हम इस अमुक कर्मको करते हैं, इस प्रकार संकल्प करे ॥ २ ॥

त्नीको दाता शङ्खस्थदूर्वाक्षतफलपुष्पचन्दनकुशजलान्यादाय जामातृदक्षिणकरोपरि कन्यादक्षिणकरं निधाय। दातुर्मन्त्रपाठः—

ॐ दाताहं वरुणो राजा द्रव्यमादित्यदैवतम्;
वरोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं वि (नि) धिः ॥ १ ॥
इमां कन्यां प्रदास्यामि पितॄणां तारणाय च ॥ २ ॥

इति पठित्वा ॐ विष्णुर्विष्णुरित्यादि अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा सपत्नीकः अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदिनः अमुकशाखिनः अमुकसूत्रिणः अमुकशर्मणः प्रपौत्राय, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदिनः अमुकशाखिनः अमुकसूत्रिणः अमुकशर्मणः पौत्राय, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदिनः अमुकशाखिन अमुकसूत्रिणः अमुकशर्मणः पुत्राय। (कन्यायाः) अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदिनः अमुकशाखिनः अमुकसूत्रिणः अमुकशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदिनः अमुकशाखिनः अमुकसूत्रिणः अमुकशर्मणः

सपत्नीक कन्यादाता एक शङ्खमें जल दूर्वा अक्षत फल पुष्प और चन्दन लेकर तथा वरके दहिने हाथपर कन्याका दहिना हाथ रखके 'ॐ दाताहं' इत्यादि दो श्लोकोंको पढकर वर और अपने बीचमें धरा हुआ परात या थालके ऊपर हाथोंको किये तथा कन्याका भाई जलपात्र (गेंडुआ) से जलकी धीमी धारा ऊपरसे छोड रहा हो और कन्यादाता 'ॐ विष्णु०' इत्यादि पूर्ववत् अमुकपद स्थानोंमें मासादि तथा अपने नामादिको यथास्थान कहता हुआ वरके प्रपितामह (परपाजा) पितामह (आजा) और पिता यह तीन पीढ़ीके गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा, सूत्र तथा नामोंको प्रपौत्राय, पौत्राय और पुत्राय सहित कहकर। कन्याके भी तीन पीढियोंके पूर्ववत गोत्रादि तथा प्रपौत्रीम् पौत्रीम् और पुत्रीम् पर्यन्त यथास्थान कहे। इसी

पौत्रीम्, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदिनः अमुकशाखिनः अमुकसूत्रिणः अमुकशर्मणः पुत्रीम् (इत्यनेन क्रमेण त्रिरावर्त्य) ततः अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदिने अमुकशाखिने अमुकसूत्रिणे अमुकशर्मणे श्रीधरस्वरूपिणे वराय अमुकगोत्रोत्पन्नाम् अमुकप्रवराम् अमुकनाम्नीं श्रीरूपिणीम् यथाशक्त्यलंकृतां यथोपकल्पितोपस्करसहितां श्रौतस्मार्तसहायिनीम् इमां कन्यां प्रजापतिदैवत्यां स्वर्गादिफलप्राप्तिकामः पत्नीत्वेन तुभ्यमहं संप्रददे ॥

कन्यां सुलक्षणोपेतां कनकाभरणैर्युताम् ।
ददामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥ १ ॥
कन्यादानं महादानं सर्वदानेषु दुर्लभम् ।
तदद्य दैवयोगेन त्वं गृहाण वरोत्तम ॥ २ ॥

इत्युक्त्वा कुशजलादिसहितं कन्यादक्षिणहस्तं वरदक्षिणहस्ते दद्यात् ॥ ततो वरः—ॐ स्वस्ति (क्षत्रियादिवरश्चेत् स्वस्तिस्थाने सर्वत्र " बाढम् " इत्युक्त्वा ॥) ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु ॐ देवस्य त्वा सवितुःप्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि । इति च पठन् प्रतिगृह्णीयात्॥ (वरकन्ययोः पादपूजनम्) ततः कन्याप्रदः पुनःकुशज-

प्रकार दोबार और कहे अर्थात् तीनबार दोनोंका शाखोच्चार पूरा करनेके बाद वरका 'अमुकगोत्राय०' आदि यथास्थान गोत्रादि नाम 'वराय' पर्यन्त कह कर 'अमुकगोत्रोत्पन्नाम्' आदिसे अमुक स्थानोंमें कन्याके गोत्रादिनामको कहता हुआ 'संप्रददे न मम' के अन्तमें कहे दो श्लोंकोके 'त्वं गृहाण वरोत्तम,' पर्य्यन्त कहकर कुशजलादि सहित कन्याका दहिना हाथ वरके दहिने हाथमें देदेवे ॥ और वर 'ॐ स्वस्ति' (यदि क्षत्रियादि वर हो तो सर्वत्र स्वस्तिके स्थानमें ''बाढम्'') कहकर 'ॐ द्यौस्त्वा'० तथा 'ॐ देवस्यत्वा०'इन दो मन्त्रोंको पढता हुआ कन्याका हाथ ग्रहण कर अपने दक्षिणबगलमें बैठा लेवे ॥ तत्पश्चात् कन्यादाता कुशजलादि हाथमें ले

लान्यादाय । ॐ अद्यकृतैतत्कन्यादानप्रतिष्ठार्थं यथाशक्ति सुवर्णम् अग्निदैवतं (तन्मूल्योपकल्पितं द्रव्यं वा) अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकशर्मणे वराय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे । इति सुवर्णं गोमिथुनं वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् ॥ सामर्थ्ये सत्यन्यान्यपि कन्यार्थे कनकं धेनुं दासीं रथं महीं गृहान् महिषीम् अश्वं गजं शय्यां महादानानि च द्रव्यदेवतानामान्युक्त्वा दापयेत् ॥ १ ॥ ततो वरः-ॐ स्वस्ति इत्युक्त्वा तथा ॐ कोदात्कस्माऽअदात्कामोदात्कामायादात् । कामोदाताकामं प्प्रतिग्ग्रहीताकामैतत्ते । (य० अ० ७ मं० ४८) इति मंत्रं पठित्वा स्वीकुर्यात् । (केचन कन्यादानान्ते वरादीनपि प्रार्थयन्ति यथात्र टिप्पण्यां लिखितोस्ति । ततश्चात्र वहुकुले कन्यावन्धुबान्धवादयस्त-

'अमुक पदस्थानोंमें गोत्रादिनामोंको कहता हुआ 'ॐ अद्यकृतैतत्०' से 'संप्रददे' पर्यन्त संकल्प पूरा कर यथाशक्ति सुवर्ण या एक गौ और एक बैल वरको कन्यादानकी दक्षिणामें देवे । सामर्थ्य हो तो और भी कन्याके लिये सुवर्ण आदि गहने, गौ, दासी, रथ पालकी आदि सवारी पृथ्वी, मकान, भैंस, घोडे, हाथी, शय्या और भी महादानोंको टिप्पणीमें लिखे द्रव्य देवताओंके नामोंको कहकर देवें ॥ और वर 'ॐ स्वस्ति' ऐसा कह तथा 'ॐ कोऽदात्०' इस मन्त्रको पढकर स्वीकार करे । (और इस समय कोई वरप्रार्थनादि कम भी करते हैं जिसका प्रयोग नीचे टिप्पणीमें लिखा है

---

१ रजतं चन्द्रदैवतम्, ताम्रपात्रं सूर्यदैवतम्, कांस्यपात्रं चन्द्रदैवतम्, गां रुद्रदैवताम्, अश्वं गन्धर्वदैवतम्, महिषीं यमदैवताम्, शय्यां गन्धर्वदैवताम्, अन्नं प्रजापतिदैवतम् । इत्यादि द्रव्यदेवतानामानि ॥

२ कन्यादानानन्तरं कन्यादाता वरादीन् प्रार्थयेत् । तत्रादौ वरप्रार्थना—

स्वकीयवंशसम्भूता गणवर्षाणि पालिता ।
तुभ्यं वर मया दत्ता पुत्रपौत्रप्रवर्द्धिनी ॥ १ ॥

थान्येऽपि जना वरवध्वोः पादपूजनं विधाय स्वसामर्थ्यानुसारेण द्रव्या-दिकं वरवध्वर्थे प्रयच्छन्ति । केचन होमान्ते प्रयच्छन्ति । सेयं देशाचारतो व्यवस्था ज्ञातव्या । इति) ॥

अथ गोदानानि—तत्र वरः कन्यादानादिग्रहणजनितदोषापनु—

कि, कन्यादान करनेके बाद कन्यादाता 'स्वकीयवंश' आदि तीन श्लोकोंद्वारा वर और ईश्वरकी प्रार्थना तथा वरसे प्रतिज्ञावचन करनेको 'धर्मेचार्थे०' आदि दो श्लोकोंको कहे । और वर भी इसका प्रतिवचन कन्यादाताके सम्मुख 'धर्मार्थ०' इस श्लोकको कहे—अर्थात् आपने जैसा मुझसे कहा है मैं वैसाही करूँगा कि इस धर्मपत्नीको अपनी परछाईंके समान सदाही साथमें लेकर धर्म, अर्थ काम सम्बंधी कर्तव्योंको करूँगा और इस पत्नीकी उपेक्षा कभी नहीं करूँगा ऐसा कहे ॥ इसके पीछे बहुतोंके बन्धुबान्धव व्यवहारी लोग इसी समय कन्या वरभी पाँपुजी करके यथासामर्थ्य द्रव्यादि वरवधूको देते हैं, और कहीं होमान्तमें ऐसा करते हैं । इस कर्मको अपने कुल देशानुसार करना चाहिये) ॥

यद्यपि ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रियादिको दान लेनेका अधिकार नहीं है तथापि

-ईश्वरञ्च प्रार्थयेत्—

त्रैलोक्यनाथ देवेश सर्वभूतदयानिधे ।
दानेनानेन मे प्रीतो भव शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २ ॥
श्रुत्वा कन्याप्रदानञ्च पितरः प्रपितामहाः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ ३ ॥ इति ॥

ततः प्रतिज्ञावचनं वरेण कारयेत्—

धर्मे चार्थे च कामे च त्वयेयमतिचारतः ।
न त्याज्याऽऽज्याहुतिरिव भूमौ संसारभूतिदा ॥ १ ॥
यस्त्वया धर्म्मश्चरितः कर्तव्यश्चानया सह ।
धर्मे चार्थे च कामे च नातिचार्य्या त्वया क्वचित् ॥ २ ॥

ततो वरस्य प्रतिवचनम्

धर्मार्थकामकैः कार्य्यैर्देहच्छायेव सर्वदा ।
अहं नातिचरामीह यदुक्तं भवता मयि ॥१॥ इतिवरोपि वदेत् ।

त्तये यथाशक्ति गास्तासां मूल्योपकल्पितानि द्रव्याणि वा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् । तद्यथा-वरः कुशादीन्यादाय ॐ विष्णुः० इति मासाद्युच्चार्य अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा मम कन्यादानादिग्रहणजनितदोषनिरसनपूर्वकश्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा दीर्घायुर्बलपुष्टतादिशुभफलप्राप्तये यथासंख्यकाः गाः रुद्रदैवताः साङ्गतादक्षिणासहिताः (तन्मूल्योपकल्पितानि द्रव्याणि वा) यथायथानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथायथाकाले दातुमहमुत्सृजे । इति दत्त्वा प्रार्थयेत्—

या लक्ष्मीर्लोकपालानां या च देवी प्रतिष्ठिता ।
सा देवी धेनुरूपेण मम पापं व्यपोहतु ॥ इति ॥

अथ निष्क्रमणम्—तत्र वरस्तां पाणौ गृहीत्वा-यदैषीत्याथर्वणऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । अनुष्टुप्छन्दः । निष्क्रमणे विनियोगः । ॐ यदैषि मनसा दूरं दिशोनुपवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकर्णः सत्वामन्मनसां करोतु श्री अमुकी देवि ॥ पारस्कर गृ० १ । ४ । १६ ॥ अत्र वधूनामोच्चारणं संबोधनान्तं वरेण कर्त्तव्यम्-यथा-गङ्गे देवि इति पठन्निकन्याका दानलेनेके समान विवाहके समय अन्य आभूषणादि द्रव्योंका भी दान क्षत्रियादि ले सकते हैं । और दान लेनेके दोषनिवारणार्थ गोदानादि उपाय भी धर्मशास्त्रमें कहे हैं, सो यथाशक्ति प्रत्यक्ष गौओंका या उनके मूल्यद्रव्योंका दान इस प्रकार करे कि, वर कुशादि हाथमें ले 'विष्णुः' इत्यादि अमुक शब्दोंके स्थानोंमें मासादिकोंका नाम कहते हुये 'दातुमहमुत्सृजे' पर्यन्त कहकर प्रत्यक्ष अथवा तन्मूल्य संकल्प करके ब्राह्मणोंको देवे. और हाथ जोड 'या लक्ष्मीः' श्लोकको पढ प्रार्थना करदेवे । इति ॥

तत्पश्चात् अपने दहिने बगलमें बैठीहुई कन्याका दहिना हाथ वर अपने हाथसे पकडके 'ॐ यदैषि' मन्त्र पढता हुआ मण्डपसे निकलकर अग्निके समीप लेजावे और मन्त्रके अन्तमें कन्याका नाम जैसे 'श्रीललिते देवि' देवी सहित संबोधनान्त उच्चारण करे ॥ इसी समयसे अग्निवेदीके दक्षिणदि-

ष्क्रोमति । अथाभिषेककलशधारणम्—तत्र वेदिदक्षिणस्यां दिशि वारिपूर्णं दृढकलशं ऊर्द्धं तिष्ठतः मौनिनः पुरुषस्य स्कन्धे अभिषेकपर्यन्तं धारयेत् ॥ ततः परस्परं समीक्षेथाम् इति कन्याप्रदप्रैषानन्तरम्—अघोरचक्षुरित्यादीनां चतुर्णां प्रजापतिर्ऋषिः । कुमारी देवता । आद्यस्य त्रिष्टुप्छन्दः । द्वितीयस्यानुष्टुप्छन्दः । तृतीयचतुर्थयोः त्रिष्टुप्छन्दः । समीक्षणे विनियोगः । ॐ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥ सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयोअग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ २ ॥ सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददद्ग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ३ ॥ सा नः पूषा शिवतमा मैरयसा न ऊरू उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै ॥ ४ ॥ इति वरपठितमन्त्रान्ते परस्परं निरीक्षणम् ॥ ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चादग्नेः अहतवस्त्रवेष्टिततृणपुलके कटे वा दक्षिणं चरणं दत्त्वा वधूं दक्षिणतः कृत्वा ताम् उपवेश्य स्वयञ्चोपविश्य वरः कुशादीन्यादाय देशकालौ संकीर्त्य

शामें जलसे भरे घटको कन्धेपर लिये कोई पुष्ट मनुष्य मौन होकर खडा रहे। यह मांगलिकार्थ दृढ घट है इसीके जलसे अभिषेक होगा। तदनन्तर कन्यादाताके 'परस्परं समीक्षेथाम्' ऐसा कहने पर विनियोग सहित 'ॐ अघोरचक्षु०' इत्यादि चार मन्त्रोंको वर पढचुके तब वर कन्याको और कन्या वरको परस्पर देखें। तत्पश्चात् अग्निको दहिनेकर घूमताहुआ अग्निके पश्चिममें आकर एक नवीन वस्त्रसे लपेटी तृणोंकी पूंजी, अथवा चटाईपर पहिले वधूका दहिना पाँव रखाकर पूर्वमुख बैठावे, तब उस बैठीहुई वधूके बांये बगलमें स्वयम् वरभी पूर्वमुख होकर बैठजावे (२टिप्पणीमें आपस्तंबके सूत्रका

१ निष्क्रामादायुःश्रीवृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभिः । इति स्मृतिसंग्रहे ।

२ अथैनामुत्तरया दक्षिणे हस्ते गृहीत्वाऽग्निमभ्यानीयापरेणाग्निमुदगग्रं कटमास्तीर्य तस्मिन्नुपविशत उत्तरो वरः (इत्यापस्तंबीय२पटलस्य४खंडे ९ सूत्र)म्

प्रतिगृहीताया अस्या भार्यायाः पत्नीत्वसिद्धये वैवाहिकहोममहं करिष्ये इति संकल्प्य ब्रह्मवरणं कुर्यात्। पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय–ॐ अद्यकर्तव्यविवाहहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्म कर्तुम् अमुकगोत्रम् अमुकशर्म्माणम् ब्राह्मणम् एभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिः ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। इति ब्रह्मणे दद्यात्। ॐ वृतोऽस्मि इति ब्रह्मवचनम्। (वरेण) यथाविहितं कर्म कुरु इत्युक्ते, ॐ करवाणि इति ब्रह्मा वदेत्। ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य ब्रह्माणम् अग्निप्रदक्षिणक्रमेण आनीय अस्मिन्कर्मणि त्वं भी यही अर्थ है) और हाथमें कुश जल ले देश कालका उच्चारण करके 'प्रतिगृहीताया०' इत्यादि कहे अर्थात् प्रतिग्रह कीहुई इस स्त्रीको पत्नीत्वसिद्धिके लिये मैं वैवाहिकहोम करूंगा ऐसे संकल्प करके, पुनः ब्रह्माका वरण करे–[1] इस विवाह यज्ञमें वरण किया हुआ एक ब्रह्माही सब विधिको देखता है। योग्य ब्राह्मण नहीं मिलनेसे कुशाहीका ब्रह्मा बनाकर स्थापन करना। दहिने तरफको लपेटकर पचास कुशोंसे बनाया हुआ पुंजका ब्रह्मा और बांये तरफ लपेट पच्चीस कुशोंसे बनाया हुआ पुंजका विष्टर होताहै। या कुशोंको चोटीके समान लपेटकर उसके अगले छोरमें ग्रन्थि लगाकर बनालेना॥ इति॥)–सो इस प्रकार कि, वरणकी सामग्री कुशजलसहित पुष्प चन्दन तांबूल और वस्त्रादि हाथमें लेकर 'ॐ अद्य०' इत्यादि यथास्थान नाम-गोत्रोंको पूरा कहताहुआ संकल्प पढ ब्राह्मणको वरणकर्ता वस्त्रादिक दे देवे, और ब्रह्माभी 'ॐ वृतोऽस्मि' ऐसा कहे। पुनः वरके 'यथा वि०' इत्यादि कहनेपर ब्रह्मा 'ॐ करवाणि' ऐसा कहे। तब वर अग्निसे

१ तत्र ब्रह्मणावेक्षो विधिः (इत्यापस्तंबीय २ पटलस्य २ खंडे १० सूत्रम्) विवाहादियज्ञे एकःकृतवरणो ब्रह्मा एव सर्वविधिनिरीक्षको भवति इति सूत्रार्थः।

२ योग्यपुरुषालाभे कुशनिर्मितं ब्रह्माणं स्थापयेदिति गौणः पक्षः।

पंचाशद्भिर्भवेद्ब्रह्मा तदर्द्धेन तु विष्टरः। दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु विष्टरः। वेण्या वा वर्तुलं कृत्वा वेण्यग्रे ग्रन्थिबन्धनम्॥ इति।

मे ब्रह्मा भव इत्यभिधाय । ॐ भवानि इति तेनोक्ते कल्पितासने उत्तराभिमुख उपवेशयेत् । पुनश्च वरणसामग्रीं गृहीत्वा-आचार्यमपि केचन वृण्वन्ति । तद्यथा-ॐ अद्य कर्तव्यविवाहहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूप-आचार्यकर्म कर्तुं अमुकगोत्रम् अमुकशर्माणं ब्राह्मणम् एभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिः आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे ॐ वृतोऽस्मि इति प्रतिवचनम् । यथाविहितं कर्म कुरु इति वरेणोक्ते । करवाणि इति आचार्यो वदेत् । (कश्चिदत्र देवताभिधानकरणं लिखितं यथात्र टिप्पण्याम् अस्ति)

दक्षिणमें शुद्धासन बिछाकर उसपर पूर्वाग्र कुशोंको फैलाय अग्निके पूर्वतरफ ब्रह्माको ले आकर 'अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव' ऐसा कह ब्रह्माके 'भवानि' ऐसा कहनेपर उसी बिछाये आसनपर ब्रह्माको उत्तराभिमुख बैठा देवे । विवाह हवनकर्ममें तो एक ब्रह्माहीका वरण मुख्य कहा है, किन्तु आचार्यका भी वरण कोई करदेतेहैं । सो इस प्रकार कि, फिरसे पुष्प चंदनादि वरण सामग्री ले 'ॐ अद्य०' इत्यादिद्वारा आचार्यवरण करे । आचार्यके 'वृतो०' कहनेपर, वर 'यथावि०' कहे और आचार्य 'करवाणि' ऐसा कहें ॥

---

१ आदौ द्रव्यपरित्यागः पश्चाद्धोमो विधीयते । इति स्मृतिसंग्रहे । ततो वरो देवताभिधानं करोति । देवताभिधानं यथा-हस्ते जलमादाय विवाहकर्मणाऽहं यक्ष्ये, तत्र प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोममग्निं वायुं सूर्यमग्नावरुणावग्नावरुणावग्निं वरुणं सवितारं विष्णुं विश्वान्देवान्मरुतः स्वर्कान् वरुणं प्रजापतिं स्विष्टकृतमृताषाढमृतधामानमग्निं गन्धर्वमोषधीश्चाप्सरसो मुदः सꣳहितं विश्वसामानं सूर्यं गन्धर्वं मरीचरप्सरस आयुः सुषुम्णं सूर्यरश्मिं चन्द्रमसं गन्धर्वं नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरीरिषिरं विश्वव्यचसं वातं गन्धर्वमथोऽप्सरस ऊर्जोभुज्युं सुपर्णं यज्ञं गन्धर्वंदक्षिणानप्सरसस्तावान् प्रजापतिं विश्वकर्माणंमनस गन्धर्वमृक्सामान्यप्सरसएष्टीश्चित्तं चित्तिमाकूतमाकूतिं विज्ञातं विज्ञातिं मनसं शकरीः

तत्पश्चात् स्मृतिसंग्रहके इस प्रमाणानुसार कि, देवताओंके नामसे पहिले होम्य द्रव्यका परित्याग कर देवे, पीछे होमका विधान आरम्भ करे । वर हाथमें कुशा जल लेकर 'विवाहकर्मणाऽहं इत्यादिसे 'आज्येनाहं यक्ष्ये' पर्यन्त

ततः कुशकण्डिकाकरणम् ॥

तत्र प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणम्— बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तम् उत्तराग्रान्, ब्रह्मणोऽग्नि-

तदनन्तर कुशकण्डिका इस प्रकार करना कि, प्रणीतापात्रको आगे रखके जलसे पूरा भर,कुशोंसे आच्छादित करके, ब्रह्माकी ओर देखकर अग्निसे उत्तरमें कुशोंपर स्थापित कर देवे । तत्पश्चात् परिस्तरण अर्थात् अग्निके सब ओर कुशोंको इस तरह बिछावे कि, बर्हिषश्चतुर्थभाग अर्थात् ८१ कुशोंके चौथाई २० कुशोंको अग्निकोणसे ईशानकोण पर्यन्त उत्तराग्र, दूसरा २०

दर्शं पौर्णमासं बृहतं रथन्तरम्प्रजापतिं जयानिन्द्रमग्निं भूतानामधिपतिमिन्द्रं ज्येष्ठानामधिपतिं यमं पृथिव्या अधिपतिम्वायुमन्तरिक्षस्याधिपतिं सूर्यं दिवोधिपतिं बृहस्पतिं चन्द्रमसं नक्षत्राणामधिपतिं बृहस्पतिं ब्रह्मणोऽधिपतिं मित्रं सत्यानामधिपतिं वरुणमपामधिपतिं समुद्रं स्रोतसामधिपतिमन्नं साम्राज्यानामधिपतिं सोममोषधीनामधिपतिं सवितारं प्रसवानामधिपतिं रुद्रं पशूनामधिपतिं त्वष्टारं रूपाणामधिपतिं विष्णुं पर्वतानामधिपतिं मरुतो गणानामधिपतीन् पितॄन पितामहान् परानवरान्ततान् ततामहान् अग्निमग्निमग्निं वैवस्वं मृत्युं आज्येनाहं यक्ष्ये ॥ इति जलमुत्सृजेत् । अथ कन्या देवताभिधानं करोति । जलं गृहीत्वा—अर्यमाणमग्निमग्निमर्यमाणमग्निमग्निमर्यमाणमग्निमग्निं भग लाजैरहं यक्ष्ये ॥ इति जलमुत्सृजेत् । पुनर्वरो जलमादाय— प्रजापतिमग्निं स्विष्टकृतमाज्येनाहं यक्ष्ये । इति जलमुत्सृजेत् । इति ॥

—कहकर जल भूमिमें छोड देवे । ऐसेही कन्या भी हाथमें कुशादि लेकर 'अर्यमाण० इत्यादिसे 'लाजैरहं यक्ष्ये' पर्यन्त कह जल देवे । पुनः वर वैसेही हाथमें जल लेकर 'प्रजा०' इत्यादिसे 'यक्ष्ये०' पर्यन्त कहकर जल छोड देवे ॥

कुशोंका भाग ब्रह्मासे अग्निपर्यन्त पूर्वाग्र,तीसरा२०कुशोंका भाग नैर्ऋत्यकोणसे वायव्यकोण पर्यंत उत्तराग्र और चौथा २० कुशोंका भाग अग्निसे प्रणीतापर्यंत

पर्यन्तम् पूर्वाग्रान्, नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् उत्तराग्रान्, अग्नितः प्रणीता-पर्यन्तम् पूर्वाग्रान् । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुश-त्रयम् । पवित्रकरणार्थं साग्रम् अनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयम् । प्रोक्षणी-पात्रम् । आज्यस्थाली । सम्मार्जनार्थं कुशत्रयम् । उपयमनार्थं वेणी-रूपं कुशत्रयम् । समिधस्तिस्रः । स्रुवः । आज्यम् षट्पञ्चाशदुत्तरवरमुष्टिशतद्व-यावच्छिन्नामतण्डुलपूर्णपात्रम् । पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासा

पूर्वाग्र बिछा देवे । तथा एक कुशसे वाम हस्त खाली नहीं करे । (सर्वत्रही हवनवेदीमें इसीप्रकार कुशा बिछानेका विधान मानवगृह्यसूत्र दशमखण्डके तृतीय सूत्रमें कहा है जिसका अर्थ यह है कि, वेदीसे उत्तर और दक्षिणमें पूर्वको अग्रभाग करके, तथा अग्निके पूर्व और पश्चिम दिशामें उत्तराग्र कर कुशोंको बिछावै) तत्पश्चात् अग्निसे उत्तरमें पश्चिम दिशासे पूर्वके तरफ क्रमसे पात्रा-सादन करे । सो इस प्रकार कि, पवित्र छेदनार्थ तीन कुश, पवित्र बनानेके लिये एक कुशमेंसे बीचोंबीचवाले दो पत्र अग्रभागसहित निकाले, जिन दो पत्रोंके बगलमें तीसरा और कोई पत्र नहीं लगा रह गया हो ऐसे दोनों कुशपत्र, प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थली, संमार्जनके लिये तीन कुश, उप-यमनके अर्थ चोटीके समान गुथे अग्र छोरमें ग्रन्थि लगे अर्थात् वणी-रूप तीन कुश, अंगुष्ठके समान मोटी, छिलका लगी, विना चिरी, बिना घुनी, ऐसी प्रादेशमात्र लम्बी कटी हुई तीन समिधा (छिउल आदिकी ३ लकडी) स्रुवा, आज्य, वरकी दोसौ छप्पन मुट्ठी चावलोंका पूर्णपात्र इन सबोंका

---

१ उदक्प्राक्तूलान्दर्भान्प्रकृष्य दक्षिणांस्तथोत्तरानग्रेणाग्निं दक्षिणैरुत्तरान-वस्तृणाति ॥ इति ॥ मानवगृह्यसूत्रस्य १० खण्डे ३ सूत्रम् ॥ रिक्तहस्तं न कुर्यादेकेन ॥

२ वेण्या वा वर्तुलं कृत्वा वेण्यग्रे ग्रन्थिबन्धम् । इति ॥

३ नांगुष्ठादधिका कार्या समित्स्थूलतरा क्वचित् । अवियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न स्फारिताः । इति ।

दनीयम्॥ अथ तस्यामेव दिशि असाधारणवस्तून्युपकल्पनीयानि । तत्र शमीपालाशमिश्राः लाजाः । दृषंदुपलम् । कुमारीभ्राता । शूर्पम् । दृढ पुरुषः । उदकुम्भः । आचार्यदक्षिणा । अन्यदपि, तदुपयुक्तमालेपनादिद्रव्यम् ॥ ततः पवित्रच्छेदनकुशैः प्रादेशमिते पवित्रे छित्त्वा ततः सपवित्रदक्षिणकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकाङ्गुष्ठाभ्याम् उत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनम् । ततः प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्ते करणम् ।अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनम् । पुनः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणम्, प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनम् । ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानम् । आज्यस्थाल्याम्

स्थापन पवित्रछेदन कुशोंसे पूर्वपूर्वक्रमसे करे । तथा इनसे पूर्वमें शमी और पलाशके पत्तोंसे मिश्रित लाजा (भुंजे धानका लावा), लोढासहित शिला[1], कन्याका भ्राता, शूप, दृढपुरुष, जलभरा घट, आचार्यकी दक्षिणा, औरभी आलेपनादिद्रव्योंको पूर्वपूर्वमें स्थापन करदेवे ॥ तत्पश्चात् पवित्रछेदनके तीन कुशोंसे अग्रसहित प्रादेशमात्र नपेहुये पवित्रके दो कुशपात्रको काटकर इन नापकर कटीहुई पवित्रकनामकी दो कुश पत्तियोंको लेकर बाकी कटे व काटनेवाले कुशोंको ईशानकोणके तरफ फेंकदेवे । फिर इस दो पवित्रपत्रोंको लियेहुये दहिने हाथसे प्रणीताका जल तीनबार लेकर प्रोक्षणीपात्रमें छोडे । पुनः दोनों हाथके अनामिका और अंगुष्ठसे, उत्तराग्र पकडेहुये दो पवित्रक कुशपत्रोंसे प्रोक्षणीका जल तीन बार ऊपरको उछाले । फिर बायें हाथमें प्रोक्षणीपात्रको लेकर दहिने हाथकी अनामिका और अंगुष्ठसे पकडे हुये पवित्र पत्रोंद्वारा उसके जलको तीनबार ऊपरकी तरफ उछाले । और फिर प्रणीताके जलसे प्रोक्षणीको प्रोक्षणकर, इस प्रोक्षणीके जलसे यथाक्रम स्थापित सब वस्तुओंको एक एकका सेचन कर, फिर इस प्रोक्षणीपात्रको अग्नि और प्रणी-

१ सिल लोढा इति लोके

आज्यनिर्वापः । आज्याधिश्रयणम् । ततो ज्वलत्तृणादिना प्रदक्षिणक्रमेण पर्यग्निकरणपूर्वकं हविर्वेष्टयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः । ततः स्रुवप्रतपनं कृत्वा सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेन अभ्युक्ष्य पुनः प्रताप्य अग्नेर्दक्षिणतः कुशोपरि निदध्यात् । तत आज्यस्याग्नेरवतारणम्, तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम् । आज्यमवेक्ष्य सति अपद्रव्ये तन्निरसनम् । पुनः प्रोक्षण्युत्पवनं कृत्वा तत उपयमनकुशान् वामहस्तेनादाय उत्थाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा घृताक्ताः तिस्रः समिधस्तूष्णीमेकैकाम अग्नौ क्षिपेत् । तत उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेण. ईशानादि उदगपवर्गमग्निं पर्युक्षणं कृत्वा । प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणा

ताके बीचमें रखदेवे । तत्पश्चात् आज्यस्थालीमें घीको छोड वेदीके अग्निपर तपनेके लिये रखदेना, और जलतेहुये कुशों या तृणोंको अग्निपर तपतेहुये घृतके सब ओर प्रदक्षिणक्रमसे घुमाकर अग्निमें छोडदेना । फिर स्रुवाके मुखको नीचे कियेहुये अग्निपर तीन वार तपाना और तब सम्मार्जकुशोंके अग्रभागसे स्रुवाके भीतर तथा मूलोंसे बाहर सम्मार्जन कर पुनः प्रणीताजलसे पवित्रोंद्वारा स्रुवाको सिञ्चन कर और फिर अग्निपर तीनबार तपाय अग्निसे दक्षिणमें कुशोंके ऊपर धर देवे । तब घृत पात्रको अग्निपरसे उतार घृतको पवित्रों द्वारा प्रोक्षणीके तुल्य ऊपरको चलाकर घृतको देखे, उसमें कोई अन्य वस्तु पडी हो तो उसको निकालके फेंक देवे । पुनः प्रोक्षणीपात्रके जलको पवित्रोंद्वारा तीन वार ऊपरको उछाले । उपयमन अर्थात् वेणीरूप कुशोंको वायें हाथमें ले खडा हो, प्रजापतिका ध्यान मनमें करता हुआ घृतसे लिपीहुई तीन समिधाओंमेंसे एक एकको तीनबारमें विना मन्त्रादि कुछ बोलेही अग्निमें छोडदेवे । फिर वैठ कर पवित्रसहित प्रोक्षणीजलसे ईशान कोणसे लेकर उत्तरदिशापर्यन्त प्रदक्षिणक्रमसे अग्निके सब ओर पर्युक्षण कर, प्रोक्षणीका जल सब गिरादेवे, और पवित्रोंको प्रणीतापात्रमें धरदेवे । फिर अपने दक्षिण

अन्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् । तत्राघारादारभ्य चतुर्दशाहुतिषु तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥ आघाराद्याः १४ आहुतयः । प्रजापतय इति प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । यजुश्छन्दः । होमे विनियोगः । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा ॥ १ ॥ इन्द्रायेति प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । यजुश्छन्दः । होमे विनियोगः । ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय न मम । इत्याघारौ ॥ २ ॥ अग्नय इति प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । यजुश्छन्दः । होमे विनियोगः ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥ सोमायेति प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । यजुश्छन्दः । होमे विनियोगः । ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय न मम ॥ इत्याज्यभागौ ॥ ४ ॥

जानुको भूमिपर टेकेहुये कुशोंद्वारा ब्रह्मासे अन्वारब्ध हुआ वर सम्यक् प्रज्वलित अग्निमें (जैसा १ टिप्पणीमें है) स्रुवाद्वारा निम्नलिखित घृतकी आहुति वर देवे । (आचार्य विनियोग सहित मन्त्र पढे । आघारसे लेकर प्रत्येक

---

१ योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः । मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चैव जायते ॥ तस्मात्ससिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथंचन । मुखेनैव धमेदग्निं न कुर्याद्व्यजनादिना । अन्धोऽबुधः सधूमे तु जुहुयाद्यो हुताशने । यजमानो भवेदन्धः सपुत्र इति च श्रुति ॥

जो मनुष्य अंगारसे रहित और विना प्रज्वलित हुये अग्निमें होम करता है, उसको मन्दाग्नि रोग और दरिद्रता होजाती है । इस कारण प्रज्वलित अग्निमेंही होम करे, विना प्रज्वलितसें कभी भी नहीं करे और धौंकनीद्वारा मुखसेही फूंककर अग्निको जलावे, व्यजन (पंखा) आदिसे नहीं, क्योंकि विराट् भगवानके मुखसेही अग्नि उत्पन्न हुआ है मुखादग्निरजायत' । जो अज्ञानी यजमान धूम उठते हुये अग्निमें होम करता है, वह पुत्रोंके सहित अन्धा व मन्द दृष्टि होजाता हे इससे सम्यक् प्रज्वलित अग्निमेंही होम करे ।

२ आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च । वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः । अविदित्वा तु यः कुर्य्याद्यजनाध्ययनं जपम् । होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं लभेत् ॥ मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम् ॥

मन्त्र तथा आहुतिका प्रयोग ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग ब्राह्मणको अवश्य

(केऽप्यत्र कलशप्रतिष्ठां पूजां च कुर्वन्ति । सा तु देशाचारतो ज्ञातव्या । ततः—व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्वायुः सूर्यो देवता । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि । आज्यहोमे विनियोगः ।) ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये न मम ॥ ५ ॥ ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे न मम ॥ ६ ॥ ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय न मम ॥ ७ ॥ एता महाव्याहृतयः ॥ त्वन्नोऽअग्न इति वामदेव ऋषिरग्नीवरुणौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । त्रिपशौ होमे विनियोगः । ॐ त्वन्नोऽअग्नेव्वरुणस्यविद्वान्देवस्यहेडोऽअवयासिसीष्ठाः यजिष्ठोवह्नितमःशोशुचानोविश्वाद्वेषा॑ᳬसिप्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा (य० अ० २१ मंत्र ३) इदमग्नीवरुणाभ्याम् न मम ८ ॥ सत्वन्नो अग्न इति वामदेव ऋषिः । अग्नीवरुणो देवते त्रिष्टुप्छन्दस्त्रिपशौ होमे विनियोगः। ॐ सत्वन्नोऽअग्नेऽवमोभवोतीनेदिष्ठोअस्याऽउषसोव्युष्टौ । अवयक्ष्वनोव्वरुणᳬरराणोवीहिमृडीकᳬसुहवोनऽएधिस्वाहा (य० अ० २१ मं० ४) इदमग्नीवरुणाभ्याम् न मम ॥ ९ ॥ अथाश्वाग्ने चौदह आहुति अग्निमें छोडनेके पीछे स्रुवामें बचे हुये घृतबिन्दुओंको प्रोक्षणीपात्रमें गिराता जावे । ये चौदहकी संख्या इस प्रकार है कि—दो आघाराहुति, दो आज्यभागाहुति, तीन व्याहृति और पांच सर्वप्रायश्चित्ताहुति इन १२ के पश्चात् प्राजापत्य और स्विष्टकृत् मिलाके चौदह आहुति होती हैं) आघार और आज्यभागहोमके पश्चात् कोई कोई कलशप्रतिष्ठा पूजा करते हैं। इसकी व्यवस्था देशानुसार जानना चाहिये । प्रजापतिका मनसे ध्यान ‘ प्रजापत० ’ इत्यादि विनियोगसहित ‘ ॐ प्रजापतये स्वाहा ’ इस प्रथमाहुतिको छोडे । और ऐसेही मूलमें लिखे विनियोगसहित सभी मन्त्रोंद्वारा आहुतियोंको देताहुआ हर एक आहुतियोंके अन्तमें “ न मम ” यह त्याग-

---

जानकरही मन्त्र कहना चाहिये । क्योंकि मन्त्रके ऋष्यादि विना कहे जो कोई यजन अध्ययन, जप, होम और जलसे अघमर्षणादि कर्म करता है उसको कर्मका फल अल्पही प्राप्त होता है । विज्ञ यजमान मन्त्रके देवताका ध्यान करता हुआ ओंकारादि स्वाहान्त शुद्ध मन्त्रोच्चारणद्वारा स्पष्ट और कुछ उच्चस्वरसहित मुखसे स्वाहा शब्द निकलकर पूरा होतेही अग्निमें आहुति छोड देवे ।

इति वामदेवऋषिरग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः । ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्वमयाऽअसि । अयानोयज्ञंवहास्ययानोधेहिभेषजᳬस्वाहा । इदमग्नये न मम १० ॥ येते शतमिति वामदेव ऋषिः । वरुणः सविता विष्णुर्विश्वे मरुतः स्वर्कादेवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः । ॐ येतेशतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशावितितामहान्तः । तेभिर्न्नोऽअद्यसवितोतविष्णुर्विश्वेमुञ्चन्तुमरुतःस्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम । ११ ॥ उदुत्तममिति शुनः शेप ऋषिः । वरुणो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । पाशान्मोके विनियोगः ॐ उदुत्तमम्वरुणपाशमस्मदवाधमंव्विमध्यमᳬश्रथाय । अथावयमादित्यव्व्रतेतवानागसोऽअदितयेस्याम स्वाहा । (य० अ० १२ मं० १२) इदं वरुणाय न मम ॥१२॥ एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये न मम १३॥ ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते न मम १४ ॥ उदकोपस्पर्शनम् ॥ अतोऽग्रेऽन्वारम्भं विना जुहुयात् ॥ अथ राष्ट्रभृतः १२ ॥ (ऋताषाडिति प्रजापतिर्ऋषिः । ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वो देवता । यजुश्छन्दः । होमे विनियोगः) ॐ ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्व्वस्तसनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गन्धर्वाय न मम ॥१॥ (पुनः ऋताषाडिति प्रजापतिर्ऋषिः औषधयोप्सरसो मुदो देवताः। यजुश्छन्दः । होमे विनियोगः) ॐ ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्व्वस्तस्यौषधयोप्सरसोमुदोनामताभ्यःस्वाहा (य० अ० १८ मंत्र ३८) इदमोषधीभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यो न मम ॥ २ ॥ (सᳬंहित इति प्रजापतिवाक्यवरही स्वयं बोले,क्योंकि यहाँ वरही होमकर्त्तायजमान है । इन१४आहुतियोंके बाद ब्रह्माके अन्वारम्भ किये विनाही आहुतियाँ देनी चाहियें । और

ऋषिः। स ँहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वो देवता यजुश्छन्दो होमे विनियोगः) ॐ सुᳬहितोव्विश्वसामा। सूर्य्योगन्धर्व्वः सनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट्। इदᳯसᳯहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय न मम ॥ ३ ॥ (पुनः स ँहित इति प्रजापतिर्ऋषिः। मरीचयोऽप्सरस आयुवो देवताः। यजुश्छन्दो होमे विनियोगः) ॐ सुᳬहितो व्विश्वसामा। सूर्य्योगन्धर्व्वस्तस्यमरीचयोऽप्सरसऽआयुवो नाम ताब्भ्यःस्वाहा (य० अ० १८ मं० ३९)। इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यो न मम ॥४॥ सुषुम्ण इति प्रजापतिर्ऋषिः। सूर्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वो देवता। यजुश्छन्दो होमे विनियोगः) ॐसुषुम्म्णःसूर्य्यरश्म्मिश्चन्द्रमागन्धर्व्वःसनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट्। इदं सुषुम्णाय सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय न मम ॥ ५ ॥ (पुनः सुषुम्णइति प्रजापतिर्ऋषिः नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो देवताः। यजुश्छन्दो होमे विवियोगः) ॐ सुषुम्म्ण ः सूर्य्यरश्म्मिश्चन्द्रमागन्धर्व्वस्तस्यननक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयोनामताब्भ्यःस्वाहा (य० अ० १८ मंत्र ४०)। इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरीभ्यो न मम ॥ ६ ॥ (ईषिर इति प्रजापतिर्ऋषिः इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वो देवता यजुश्छन्दः। होमे विनियोगः) ॐ इषिरोव्विश्वव्यचावातोगन्धर्व्वःसनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट्। इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय न मम ।७॥ (पुनः इषिर प्रजापतिर्ऋषिरापोऽप्सरसऊर्ज्जो देवताः। यजुश्छन्दः होमे विनियोगः) ॐ इषिरोव्विश्वव्यचाव्वातोगन्धर्व्वस्तस्यापोऽअप्सरसऽऊर्ज्जोनामताब्भ्यःस्वाहा (य०अ०१८मं० ४१) इदमद्भ्योऽप्सरोभ्य ऊर्ग्भ्यो न मम ॥८॥ (भुज्युरिति प्रजापतिर्ऋषिः। भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वो देवता होमे विनियोगः।) ॐ भुज्ज्युः

सुपर्णोयज्ञोगन्धर्वःसनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट्। इदंभुज्यवेसुपर्णाययज्ञायगन्धर्वायनमम॥९॥ (पुनः भुज्युरिति प्रजापतिर्ऋषिः। दक्षिणाप्सरसस्तावानाम देवताः। यजुश्छन्दः। होमे विनियोगः) ॐ भुज्युःसुपर्णोयज्ञोगन्धर्वस्तस्यदक्षिणाऽअप्सरसस्तावानामताभ्यः स्वाहा (य० अ० १८ मन्त्र ४२) इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यस्तावाभ्योनमम॥१०॥ (प्रजापतिरिति प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वो देवता यजुश्छन्दः होमे विनियोगः) ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा। मनोगन्धर्व्वःसनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट्। इदं प्रजापतयेविश्वकर्मणेमनसेगन्धर्वायनमम॥११॥ (पुनः प्रजापतिरिति प्रजापतिर्ऋषिः। ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो देवताः यजुश्छन्दः होमे विनियोगः) ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा। मनोगन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयोनामताभ्यःस्वाहा (य० अ० १८ मन्त्र ४३)। इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्यएष्टिभ्योनमम॥१२॥ इति राष्ट्रभृतः॥

अथ जयाहोमः॥१३॥ चित्तं चेति परमेष्ठी ऋषिः। चित्तं देवता। यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ चित्तं च स्वाहा। इदं चित्ताय न मम॥१॥ (चित्तिश्चेति परमेष्ठी ऋषिः। चित्तिर्देवता यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ चित्तिश्च स्वाहा। इदं चित्त्यै न मम॥२॥ (आकूतं चेति परमेष्ठी ऋषिः। आकूतं देवता। यजुश्छन्दः। होमे विनियोगः।) ॐ आकूतञ्च स्वाहा। इदमाकूताय न मम॥३॥ (आकूतिश्चेति परमेष्ठी ऋषिराकूतिर्देवता। यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ आकूतिश्च स्वाहा। इदमाकूत्यै न मम॥४॥ विज्ञातं चेति परमेष्ठी ऋषिः विज्ञातं देवता यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ विज्ञातं च स्वाहा। इदं विज्ञाताय न मम॥५॥ (विज्ञाति श्चेति परमेष्ठी ऋषिः विज्ञातिर्देवता—

बीचमें जहां उदकोपस्पर्शन लिखा है वहां वहां दहिने हाथसे वरको प्रणीताका जलस्पर्श करलेना चाहिये। राष्ट्रभृत नामक होमकी १२ आहुति, जयाहोमकी १३

यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ विज्ञातिश्च स्वाहा। इदं विज्ञात्यै न मम ॥ ६ ॥ (मनश्चेति परमेष्ठी ऋषिः मनो देवता यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ मनश्च स्वाहा। इदं मनसे न मम ॥ ७ ॥ (शक्करीश्चेति परमेष्ठी ऋषिः। शक्कर्यो देवता। यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ शक्करीश्च स्वाहा। इदं शक्करीभ्यो न मम ॥ ८ ॥ (दर्शश्चेति परमेष्ठी ऋषिः। दर्शो देवता। यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ दर्शश्च स्वाहा। इदं दर्शाय न मम ॥९॥ (पौर्णमासं चेति परमेष्ठी ऋषिः पौर्णमासं देवता यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ पौर्णमासं च स्वाहा। इदं पौर्णमासाय न मम ॥१०॥ बृहच्चेति परमेष्ठी ऋषिः बृहद्देवता यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ बृहच्च स्वाहा। इदं बृहते न मम॥११॥ (रथन्तरञ्चेति परमेष्ठी ऋषिः रथन्तरं यजुश्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ रथन्तरञ्च स्वाहा। इदं रथन्तराय न मम ॥ १२ ॥ प्रजापतिरिति प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्जयानिन्द्रो देवता। यजुश्छन्दः होमे विनियोगः) ॐ प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाजयेषु। तस्मै विशः समनमंतु सर्वाः स उग्रः स इ हव्यो बभूव स्वाहा। इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय न मम ॥ १३ ॥ इति जयाहोमः ॥ उदकोपस्पर्शनम् ॥ अथाभ्यातानाष्टादशाहुतयः ॥ १८ ॥ तत्राग्न्यादित्रयाणां होमः ॥ (अग्निर्भूतानामिति प्रजापतिर्ऋषिः अग्निर्भूतानामधिपतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः।) ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या७स्वाहा। इदमग्नये भूतानामधिपतये न मम ॥ १ ॥ (इन्द्रो ज्येष्ठानामिति प्रजापतिर्ऋषिः इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः) ॐ इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या५ स्वाहा। इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये न मम ॥ २ ॥ (यमः पृथिव्या

इति प्रजापतिर्ऋषिः यमः पृथिव्या अधिपतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः) ॐ यमः पृथिव्या अधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या॰ स्वाहा । इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये न मम ॥ ३ ॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः । (वाय्वाद्येकादशहोमः) (वायुरन्तरिक्षस्येति प्रजापतिर्ऋषिः । वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या॰ स्वाहा । इदं वायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये न मम ॥१॥ (सूर्य्यो दिव इति प्रजापतिर्ऋषिः सूर्य्यो दिवोधिपतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ सूर्य्यो दिवोधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या॰ स्वाहा । इदं सूर्य्याय दिवोधिपतये न मम ॥ २ ॥ (चन्द्रमा नक्षत्राणामिति प्रजापतिर्ऋषिः चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः समावत्वस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या॰ स्वाहा इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये न मम ॥ ३ ॥ (बृहस्पतिर्ब्रह्म इति प्रजापतिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या॰ स्वाहा । इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये न मम ॥ ४ ॥ (मित्रः सत्यानामिति प्रजापतिर्ऋषिः । मित्रः सत्यानामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ मित्रः सत्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या॰ स्वाहा । इदं मित्राय सत्यानामधिपतये न मम॥५॥ अभ्यातान अर्थात् अग्न्यादिकी ३, वायुआदिकी ११ और त्वष्टादिकी ४

(वरुणोऽपामिति प्रजापतिर्ऋषिः वरुणोऽपामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ वरुणोऽपामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं वरुणायापामधिपतये न मम ॥ ६ ॥ (समुद्रः स्रोतसामिति प्रजापतिर्ऋषिः। समुद्रः स्रोतसामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः ।) ॐ समुद्रः स्रोतसामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं समुद्राय स्रोतसामधिपतये न मम ॥७॥ 'ॐ अन्नᳪ साम्राज्यानामिति प्रजापतिर्ऋषिः । अन्नᳪ साम्राज्यानामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ अन्नᳪ साम्राज्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये न मम ॥ ८ ॥ (सोमओषधीनामिति प्रजापतिर्ऋषिः । सोमओषधीनामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः । ॐ सोमओषधीनामधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं सोमायौषधीनामधिपतये न मम ॥९॥ (सविता प्रसवानामिति प्रजापतिर्ऋषिः । सविता प्रसवानामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ सविता प्रसवानामधिपति समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यः-स्यां देवहूत्याᳪ स्वाहा । इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये न मम ॥ १० ॥ (रुद्रः पशूनामितिप्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रः पशूनामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ॐ रुद्रः पशूनामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा । इदं रुद्राय पशूनामधिपतये न मम ॥ ११ ॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ।

(त्वष्टादिचतुर्णां होमः)

त्वष्टा रूपाणामिति प्रजापतिर्ऋषिः । त्वष्टा रूपाणामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः ।) ॐ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा । इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये न मम ॥ १ ॥ (विष्णुः पर्वतानामिति प्रजापतिर्ऋषिः । विष्णुः पर्वतानामधिपतिर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः ।) ॐ विष्णुः पर्वतानामधिपति समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ᳪ स्वाहा । इदं विष्णवे पर्वतानमधिपतयेः न मम ॥ २ ॥ (मरुतो गणानामिति प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो गणानामधिपतयो देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः) ॐ मरुतो गणानामधिपतयस्तेमावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ᳪ स्वाहा । इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यो न मम ॥ ३ ॥ (पितरः पितामहा इति प्रजापतिर्ऋषिः । पितरःपितामहाःपरेऽवरेततास्ततामहा देवतास्त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः ।) ॐ पितरः पितामहाः परेऽवरेततास्ततामहा इहमावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ᳪ स्वाहा । इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यो न मम ॥ ४ ॥ अत्र प्रणीतोदकोपस्पर्शनम् ॥ इत्यष्टादशाभ्याताननामहोमाः ॥

(पुनरग्न्यादिचतुर्णां होमः)

(अग्निरेतु इति प्रजापतिर्ऋषिरग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः) ॐ अग्निरेतु प्रथमो देवतानाᳪ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयᳪराजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयᳪस्त्री पौत्रमघन्नरोदात्स्वाह (इन चारमेंसे दूसरी विष्णुकी आहुति लोकाचारसे कोई घृतके साथ गुडादि मिष्ट मिलाकर देते हैं और कुछ नेग ब्राह्मणोंको देते हैं) ये अभ्याताननामक

इदमग्नये न मम ॥ १ ॥ (इमामग्निरिति प्रजापतिर्ऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः ।) ओ३म् इमामग्निस्त्रायतांगार्हपत्यःप्रजामस्यैनयतुदीर्घमायुः । अशून्योपस्थाजीवतामस्तुमातापौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियꣳ स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ २ ॥ (स्वस्तिनोग्न इति प्रजापतिर्ऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः होमे विनियोगः) ओ३म् स्वस्ति नो अग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथायजत्र । यदस्यांमहिदिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रꣳस्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥ (सुगन्नुपन्थानमिति प्रजापतिर्ऋषिः । वैवस्वतो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः) ओ३म् सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्ध्येह्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृतंम आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा । इदं वैवस्वताय न मम ॥ ४ ॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शनम् ॥ ततो वध्वक्षणोर्वस्त्रपटं तूष्णीं प्रक्षिप्य मृत्योरेको होमः । (परंमृत्योरिति शंकशुक ऋषिः । मृत्युर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । होमे विनियोगः) ओ३म् परंम्मृत्योऽअनुपरेहिपन्थांयस्तेऽअन्यऽइतरोदेवयानात् । चक्षुष्मतेशृण्वतेतेब्रवीमिमानःप्रजाꣳरीरिषोमोतवीरान्स्वाहा (य० अ० ३५ मंत्र) इदं मृत्यवे न मम ॥ १ ॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शनम् ॥

होम १८ और अग्न्यादि ४ आहुति देनेके पश्चात् 'परंमृत्यो०' मन्त्रद्वारा एक आहुति देतेसमय अन्तरपट अर्थात् वधूको वस्त्रके परदेमें करलेना चाहिये, क्योंकि जो वरवधूको विना अन्तरपट किये मृत्युकी आहुति देता है तो वरका अशुभ और वधूवरकी आयु घट जाती है, इससे अन्तरपट अवश्य करना चाहिये । इस आहुतिको कोई आचार्य संस्रवप्राशनकर्मके अन्तमें कर्तव्य मानते हैं । इन पूर्वोक्त ६२ (बासठ) आहुतियोंका विवाहसंबन्धी होम कहाता है ॥

---

१ मृत्योर्होमन्तु यः कुर्यादन्तर्धानं विना वरः ।
अशुभं जायते तस्य दंपत्योरल्पजीवनम् ॥

२ परमृत्यो-इत्याहुतिं केचिदाचार्या संस्रवप्राशनान्ते कर्त्तव्यमिति मन्यन्ते ।

अथ लाजाहोमः—तत्र वधूमग्रतः कृत्वा वरो वधूश्च द्वावपि प्राङ्मुखौ स्थितौ भवतः । ततो वराञ्जलिपुटोपरि संलग्नवध्वञ्जलिस्थघृताभिघारितवधूभ्रातृदत्तशमीपलाशमिश्रैर्लाजैर्वधूकर्तृको मंत्रपाठपूर्वको होमः । तत्र मंत्राः—अर्यमणमित्याथर्वण ऋषिरग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दो लाजाहोमे विनियोगः । ॐ अर्यमणं देवं कन्याअग्निमयक्षत । स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मापतेः स्वाहा । इदमर्यम्णे देवाय न मम ॥ १ ॥ (इयंनार्युपब्रूत इत्याथर्वण ऋषिरग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः लाजाहोमे विनियोगः) ॐ इयंनार्युब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ २ ॥ (इमांल्लाजानित्याथर्वण ऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । लाजाहोमे विनियोगः) ॐ इमांल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामिय५ स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥ सकृद्गृहीतांल्लाजान् तिष्ठन्ती वधूस्त्रिवारमुक्तमन्त्रैर्बद्धाञ्जलिना जुहुयात् । ततो वरो वधूदक्षिणहस्तं

अब लाजाहोम इसप्रकार करना चाहिये कि, वधूको कुछ आगे करके वधूवर दोनों पूर्वाभिमुख खडे हों, वरके अञ्जलीके ऊपर संलग्न वधूकी अंजलीमें शमी और पलाशपत्रोंसे मिला घृत लगाहुआ लाजा (धानका लावा)को, वधूका भाई सूर्पके कोणोंद्वारा भरदेवे । तब आगे लिखे विनियोग सहित 'ॐ अर्यमणं०' इत्यादि तीन मंत्रोंको वधू पढै और वर स्वयं खडा हुआ, खडी हुई वधूकी एकवारमें भरीहुई अञ्जलीसे हरएक मन्त्रके अन्तमें तृतीयांश लाजोंकी

१ भृष्टव्रीहिभिर्भवेल्लाजाः शमीपालाशमिश्रिताः ।
ताभिर्होमं वधूः कुर्यात्पतिभ्रातृसहाऽग्रया ॥
एवमन्यत्रापि—" लाजा भ्राता ब्रह्मचारी वाऽञ्जलिनाञ्जल्योरावपति ॥ "
मानवगृह्य० (पु० १ खं० ११ सू० ११)

अपने सगे भाई और पतिके सहित वधू पतिसे आगे होकर शमी तथा पलाशपत्र मिश्रित धान भुने हुये लावोंकी आहुति करे। ऐसाही अन्यत्रभी है । वरके अंजुलीपर मिली कन्याके अंजुलीमें धानके लावोंको कन्याका भाई अथवा विद्यार्थी ब्रह्मचारी अपने अंजुलीसे छोडै । औरभी आपस्तंब गृ० के २ पटल ५ खंड ५ सूत्रकाभी ऐसाही अर्थ है॥

साङ्गुष्ठं गृह्णाति । (गृभ्णामीत्यादीनाञ्चतुर्णां याज्ञवल्क्यभरद्वाजाथर्वणप्रजापत्या ऋषयः। भगाद्या देवताः। तत्राद्यानां त्रयाणां त्रिष्टुबुष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि । चतुर्थस्य यजुश्छन्दः । पाणिग्रहणे विनियोगः) ॐ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ अमोहमस्मि सात्व ५ सात्वमस्यमो अहम् । सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ॥ तावेहि विवहावहै सहरेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान्विन्दावहै बहून् ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ५ शृणुयाम शरदः शतम् ॥ इति हस्तग्रहणे वरस्य मन्त्रपाठः ॥ अथ वधूं प्राङ्मुखीमग्नेरुत्तरतः प्राङ्मुखो वरः पूर्वोपकल्पितमश्मानं दक्षिणपादेनारोहयति ॥(आरोहेममित्याथर्वणऋषिः । वधूर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः अश्मारोहणे विनियोगः । ॐ आरोहेममश्मानमश्मेव त्व ५ स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ इति मन्त्रेण आरूढायामेव तस्यां वरो गाथां गायति । (सरस्वतिप्रेदमिति विश्वावसुऋषिः । सरस्वती देवता त्रिष्टुप्छन्दः । गाथागाने विनियोग ।)ॐ सरस्वति प्रेदमवसुभगे वाजि- आहुति तीनवार अग्निमें वधूसे छोडादेवे । 'न मम' इस त्यागवाक्यकोभी वधूही स्वयं बोले । इन तीन आहुतियोंके अंतमें वधूके अंगुष्ठसहित दहिने हाथको वर पकडकर, विनियोग सहित 'ॐ गृभ्णामि०' इत्यादि चार मन्त्रोंको पढे । तत्पश्चात् अग्निसे उत्तरमें पूर्वाभिमुख खडाहुआ वर पहिलेसे स्थापित पाषाण शिलापर अपने बाँयें हाथसे वधूका दक्षिणपग धराता हुआ विनियोगसहित 'ॐ आरोहेममश्मानं०' मन्त्र पढे । और शिलापर जब वधू पग धरलेवे तब वर विनियोगसहित 'ॐ सरस्वस्तिप्रेहमव०' इत्यादि 'उत्तम

१ वरस्तु वामहस्तेन वधूपादं च दक्षिणम् । शिलामारोहयेत्प्राज्ञो मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥ शक्तिरूपा शिला प्रोक्ता शिवरूपः शिलापतिः । तत्रांगुष्ठद्वयस्पर्शात्कन्या तु विधवा भवेत् । इति ॥ वर अपने बाँयें हाथसे वधूके दहिने पगको, शिलापर मन्त्रोच्चारणपूर्वक धरावे । कन्या दोनों पग शिलापर नहीं धरे, ऐसा करनेसे शक्तिरूपा शिला (शिल) और शिवरूप शिलापति (लोढा) के रुष्ट होनेसे कन्या विधवा होजाती है ।

नीवति । यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः ॥ १ ॥ यस्यां भूत९ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥ २ ॥ (केप्यत्र विशेषरूपेण वैदिकंगाथागानं लौकिकं गाथागानं च कुर्वन्ति तत्तु टिप्पण्यां लिखितमस्ति) ततोऽग्रे वधूः यशः ' पर्यन्त गाथागान मन्त्र पढे । इसके अन्तमें कोई कोई औरभी (जैसा टिप्पणीमें वैदिक तथा लौकिक गाथागान लिखे हैं उनको भी पढते हैं ।) गाथागानके पश्चात् टिप्पणीके अनुसार वधू आगे और वर पीछे चलतेहुये,

---

१ वैदिकगाथागानम् यथा—रैभ्यासी दनुदेयी नाराशं सीन्योचनी । सूर्य्या या भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥ १ ॥ त्रित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् । द्यौर्भूमिः कोश आसीद्य दयान् सूर्यापतिम् ॥ २॥ स्तोमाआसन्प्रतिधयः करीरं छन्दओपशः । सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥ ३ ॥ सोमोः वधूपुरभवदश्विनास्तामुभावरा । सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥४॥ मनो अस्या अन आसीद्द्यौरासीदुतच्छदिः।शुक्रावनड्वाहवास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥ ५ ॥ ऋ १० । ८५ । ६–१० ॥ शुचीते चक्रे यात्यायानो अक्ष आहतः । अनो मनस्मयं सूर्या रोहत्प्रयती पतिम् ॥ ६ ॥ ऋ १० । ८५ । १२ इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् । न ह्यस्या अपरश्चन जरसामरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥ ऋ १० । ८६ । ११ ।

२ लौकिकगाथागानम् । यथा—

राघवेन्द्रेयथा सीता विनताकश्यपे यथा । पावके च यथास्वाहा तथात्वंमयि भर्तरि १
अनिरुद्धे यथैवोपा दमयन्ती नले यथा । अरुन्धती वसिष्ठे च तथा त्वं मयि भर्तरि २
सुदक्षिणा दिलीपे तु वसुदेवे च देवकी । लोपामुद्रा यथाऽगस्त्ये तथा त्वं मयि भर्तरि ३
शन्तनौ च यथा गङ्गा सुभद्रा च यथार्जुने । धृतराष्ट्रे च गान्धारी तथा त्वं मयि भर्तरि ४
गौतमे च यथाऽहल्या द्रौपदी पाण्डवेषु च । यथावालिनि तारा च तथा त्वं मयिभर्तरि ५
मन्दोदरी रावणे च रामे यद्वत्तु जानकी । पाण्डुराजे यथा कुन्ती तथा त्वं मयि भर्तरि ६
अत्रौ यथाऽनसूया च जमदग्नौ च रेणुका । श्रीकृष्णे रुक्मिणी यद्वत्तथा त्वं मयि भर्तरि७
शम्बरे तपनी यद्वद् दुष्यन्ते च शकुन्तला । मेरुदेवी यथा नाभौ तथा त्वं मयि भर्तरि ८
रेवती बलभद्रे च साम्बे च लक्ष्मणा यथा । रुक्मिसुता कृष्णपुत्रे तथा त्वं मयि भर्तरि ९
जानकी च यथा रामे उर्मिला लक्ष्मणा यथा । कुशे कुमुद्वती यद्वत् तथा त्वं मयि भर्तरि ॥ १० ॥ इति ॥

२ कामस्त्वमोघबाणैः स्वैः प्रहरेदतिदारुणैः । तस्मादग्रे भवेत्कन्या बाणभीतिप्रशान्तये ॥ १ ॥ कन्यकाग्रे वरं कृत्वा ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । विधवा

पश्चाद्वरः प्रणीतादिसहितम् अग्निं प्रदक्षिणीकुरुतः। तत्र वरपठनीयो मन्त्रः—(तुभ्यमग्न इत्याथर्वण ऋषिरग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः परिक्रमणे विनियोगः।) तुभ्यमग्ने पर्य्यवहन्त्सूर्य्यां वहतुनासह। पुनः पतिभ्यो जायां दाऽअग्ने प्रजया सह ॥ ततः पश्चादग्नेः प्राङ्मुखौ स्थित्वा लाजाहोम—साङ्गुष्ठहस्तग्रहण—अश्मारोहण—गाथागान—अग्निप्रदक्षिणानि पुनरपि द्विः तथैव कर्त्तव्यानि। एतेन नव लाजाहुतयः संपद्यन्ते। सांगुष्ठग्रहणत्रयम्, गाथागानत्रयम्, प्रदक्षिणात्रयञ्च संप-

प्रणीतापात्रसहित (१टिप्पणीके अनुसार) अग्निकी प्रदक्षिणा दोनों करैं, चलता हुआ वर विनियोगसहित 'ॐतुभ्यमग्ने०' मन्त्र पढते जावे। तदनन्तर अग्निसे पश्चिममें पूर्वाभिमुख वधू वर दोनोंही पूर्ववत् वधूको आगे करके खडे होकर लाजाहोम अंगुष्ठसहित हस्तग्रहण, अस्मारोहण, गाथागान और प्रणीतादिसहित अग्निका परिक्रमण इनसब कर्मोंको उन उनके उक्त मंत्रोंसे दूसरी और तीसरी बार भी वैसा ही वैसा करे। ऐसा तीन बार करनेसे लावाकी नौ आहुति हो जाती हैं और सांगुष्ठ हस्त-

---

जायते नारी निषेधस्तेन हेतुना ॥२॥ अग्रे तु शुभदा पत्नी माङ्गल्ये सर्वकर्मणि। पदेपदेऽश्वमेधश्च धनायुःपुत्रवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

लाजाहोमके समय कामदेव अपने तीव्र बाणोंका प्रहार वरपर करताहै इस लिये वरके आगे कन्या होजावे कि, जिससे कामदेवके अमोघ बाणोंका भय वरपर नहीं होकर शांत होजावे ॥ १ ॥ लाजाहोमके समय यदि कोई अज्ञानी ब्राह्मण कन्याके आगे वरको करदेवे तो कन्या विधवा होजाती है, इसलिये वरका आगे होना मनाहै ॥२॥ सभी माङ्गलिक कर्मोंमें पत्नीको पति अपने आगे कियेरहे तो वोह पत्नी शुभफल देनेवाली और पदपदमें अश्वमेधका फल तथा धन, आयुष्य और पुत्रोंकी वृद्धि होती है३

१ लाजानाज्यं स्रुवं कुम्भं ब्रह्माणमृत्विजं गुरुम्।
एतान् हि बाह्यतः कृत्वा शेषाणान्तु प्रदक्षिणा ॥ इति।

अग्निपरिक्रमाके समय लावा (जिनको हवनार्थ कन्याका भाई सूपमें लिये हैं) आज्य (होमकेलिये आज्यस्थालीका घृत) स्रुवा, अभिषेकघट, ब्रह्मा, ऋत्विज् और गुरु इन्ही सातोंको बाहर छोडके बाकी प्रणीतादि विवाहसाधनोंकी परिक्रमा करना वधूवरको अनुचित नहीं है ॥

द्यते । ततस्तृतीयपरिक्रमणानन्तरं कन्याभ्राता शूर्पकोणेन अवशिष्टान् सर्वान् लाजान् भगिन्यञ्जलौ आवपेत् । सा च तिष्ठन्ती सर्वान् सहैव जुहुयात् । ॐ भगाय स्वाहा । इदं भगाय न मम ॥ ततश्चतुर्थभ्रमणं कुर्यात् । तत्र " वरवध्वोश्चतुर्थे तु भ्रमणे ग्रन्थिबन्धनम् " इति वाक्यस्मरणात् । फलद्रव्यदूर्वाक्षतादिभिर्वरवध्वोर्ग्रन्थिबन्धनम्-

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥

इति मन्त्रेण कुर्यात् । ततोऽग्रे वरः पश्चात् ग्रन्थिबन्धनयुता वधूर्भूत्वा तूष्णीं परिक्रमणं कुर्यातास् । ततो वरः उपविश्य ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आज्येन प्राजापत्यं जुहुयात् । ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । (इति मनसा) अत्र प्रोक्षणीपात्रे हुतशेषाज्यप्रक्षेपः। ततः-

ग्रहण, गाथागान और प्रदक्षिणा तीन तीन होजाते हैं । तब तृतीय परिक्रमाके अन्तमें पूर्ववत् अग्निसे पश्चिम वधूवरके खडे होनेपर कन्याका भाई सूपके कोने शेष बचे सब लाजाओंको भगिनीके अञ्जलीमें गिरादेवे और वधू 'ॐ भगाय०' मन्त्र पढके एकही वारमें सब लाजोंकी आहुति अग्निमें छोडकर 'न मम०' कहदेवे । तत्पश्चात् चौथी भौंरी विना मन्त्रादि बोलेही करे, 'वरवध्वोश्चतुर्थे भ्रमणे ग्रन्थिबन्धनम्' इस लौकिकवाक्यानुसार कन्याकी ओढनी वस्त्राञ्चलके कोनेमें फल, द्रव्य, दूर्वाक्षतादि बांधे और वरके उपन्नाके कोणके साथ 'मङ्गलं' मन्त्रद्वारा ग्रन्थिबन्धन करके आगे वर पीछे वधू चलतेहुए विना मंत्रके तूष्णीं चौथी परिक्रमा करे । देशाचार तथा कुलाचारके अनुसार ऐसेही और तीन परिक्रमा करके सात भँवरीकी गिनती पूरी करते हैं । सोभी शास्त्रविरुद्ध इस कारण नहीं है कि, शास्त्रोक्त चारका बाधक सात परिक्रमा नहीं होता, क्योंकि सातके अन्तर्गतही चार भ्रमण होजाता है । तदनन्तर वर बैठकर ब्रह्मासे अन्वारब्ध हुआ 'ॐ प्रजाप०'मन्त्रको मनमें कहकर घृतसे प्राजापत्याहुति एक अग्निमें देवे और श्रुवाके शेष घृतबिन्दुको प्रोक्षणीपात्रमें गिरा देवे । तत्पश्चात् वेदीसे उत्तरभूमिपर आलेपन 'हरिद्रा' आदिसे बनेहुये ऐपन द्वारा

आलेपनेनोत्तरोत्तरक्रमेण कृतसप्तमण्डलेषु प्रत्येकं वक्ष्यमाणमन्त्रैर्वध्वा सप्तपदान्याक्रमणं वरः कारयेत्। तत्र मन्त्राः—प्रथमे ॐ एकमिषे उत्तरोत्तरक्रमसे बनाये सात मण्डलोंपर 'ॐ एकमिषे०' इत्यादि आगे कहे सात मन्त्रोंसे एक एक मन्त्रक्रमसे वर कहता हुआ × दक्षिणसे आरम्भकर हर एक मण्डलमें वधूको सात पग सातोंमें चलावे। सातों मन्त्र ये हैं जिनको

१ पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे। (मनु० अ० ८ श्लो० २२७)॥

विवाहप्रयोगमें जितने मन्त्र हैं, वे सभी कन्यामें स्त्रीत्व पूरा होजानेहीके लिये कहगये हैं, और सप्तपदीके सातवें मण्डलमें पग रखनेहीसे कन्यापन छुटकर उसमें स्त्रीत्वभाव पूर्णरूपसे पूरा होजाता है, विद्वानोंको ऐसाही जानना चाहिये॥

स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे।
भर्तृगोत्रेण कर्त्तव्या दानपिण्डोदकक्रियाः॥

विवाह होनेसे सप्तपदीके सातवें पदमें पिताके गोत्रसे छूटकर कन्या, पतिगोत्र वाली स्त्री हो जाती है, इसी समयसे पिण्ड तथा जलदान आदि सभी कर्म्म पति-गोत्रसे होना चाहिये॥

* वध्वा दक्षिणपादानि सप्तैव प्रक्रमेच्च सा।
याम्यां दिशं समारभ्य प्रक्रमेदुत्तरोत्तरम्॥ इति॥

वरको चाहिये कि दक्षिण दिशासे आरम्भकर क्रमसे बनेहुये सातों मण्डलोंपर वधूको सात पग चलावे॥ इति॥

२ तथैवाह सप्तपदाक्रमणे पारस्करः। अथैनामुदीचीं सप्तपदानि प्रक्रामयति, एकमिष इत्यादिसप्तभिर्मन्त्रैः। एतेषु मन्त्रेषु, सखे इति वक्ष्यमाणं संबोधनपदं सप्तस्वपि संबध्यते। यथा—

इसी प्रकार सप्तपदाक्रमणमें पारस्कारने कहा है कि, इस वधूको दक्षिणसे उत्तर दिशामें क्रमपूर्वक बनेहुये सात मण्डलोंपर 'ओं एकमिषे०' इत्यादि सात पग रखताहुआ वर चलावे; और इन मन्त्रोंमें "सखे" ऐसा जो एकपद कहा है वह संबोधनका है, उसे सातों मन्त्रोंके साथ लगाकर अर्थ करे। जैसा कि भावार्थसहित सातों मन्त्रोंका भाषामें भी अर्थ भाष्यके अनुसार लिखा है जो क्रमसे कन्या तथा सभी लोगोंको वरपक्षके पंडित सुनाय देवें। यथा—

हे सखे त्वाम् एकपदं विष्णुर्नयतु, किमर्थम् इषे=ईप्सिताय, जगत्प्रभुर्विष्णुः त्वामेकं पदम् अभीष्टलाभार्थं नयत्वित्याशंसावाक्यार्थः॥ १॥

हे सखे! पहिले मण्डलमें दाहिना पग तुम धरो इससे तुम्हारे मन चाहे फलोंको विष्णुभगवान् तुमको देवेंगे॥ १॥

विष्णुस्त्वा नयतु १ द्वितीये—ॐ द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु २ । तृतीये—ॐ त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु ३ । चतुर्थे—ॐ चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु ४ । पञ्चमे—ॐ पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ५ । षष्ठे—ॐ षड् ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ६ । सप्तमे—ॐ सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु ७ । इति । (वरकथनानुसार वर क्रमसे कहे । ('वरके कथनानुसार वधूभी हरएक मण्डलोंपर पहिले दक्षिण

—हे सखे त्वां द्विपदे विष्णुर्नयतु, किमर्थं ऊर्जे=बलाय ॥ २ ॥

हे सखे ! दूसरे मण्डलमें दाहिना पग तुम धरो, इससे तुम्हारे शरीरादिमें विष्णुभगवान् सुन्दर बल उत्पन्न करेंगे ॥ २ ॥

हे सखे त्वां त्रीणि पदानि विष्णुर्नयतु, किमर्थं रायस्पोषाय धनविवृद्धये ३ ॥

हे सखे ! तीसरे मण्डलमें दहिना पग तुम धरो, इससे विष्णुभगवान् विशेपरूपसे तुम्हारे धनकी वृद्धि करेंगे ॥ ३ ॥

हे सखे चत्वारि पदानि त्वां विष्णुर्नयतु किमर्थं मायोभवाय, मायः सौख्यं तस्य भवः=उत्पत्तिस्तदर्थम् ॥ ४ ॥

हे सखे ! चौथे मण्डलमें तुम दाहिना पग धरो इससे विष्णुभगवान् तुम्हारे लिये सभीप्रकारके सुखोंको उत्पन्न करेंगे ॥ ४ ॥

हे सखे पञ्चपदानि त्वां विष्णुर्नयतु किमर्थं पशुभ्यो=गवादिभ्यः ॥ ५ ॥

हे सखे ! पाँचवें मण्डलमें तुम दाहिना पग धरो इससे विष्णुभगवान् तुम्हारे गऊ आदि पशुओंकी वृद्धि करेंगे ॥ ५ ॥

हे सखे त्वां षट्पदानि विष्णुर्नयतु किमर्थं ऋतुभ्यः=ऋतुसमयप्राप्तये ॥ ६ ॥

हे सखे ! छठे मण्डलमें तुम दाहिना पग धरो इससे विष्णुभगवान् तुमको ऋतुका समय उत्तम प्राप्त करावेंगे ॥ ६ ॥

हे सखे त्वां सप्तपदानि विष्णुर्नयतु सा त्वं सप्तपदा भव=भूरादिसप्तलोककस्था भव, तथा मामनुव्रता भव=मम व्रतमनुपालयन्ती भव, भूरादिसप्तलोकप्राप्तये पतिव्रतत्वाय च सप्तमं पदं विष्णुर्नयतु इत्याशंसावाक्यार्थः ॥ ७ ॥

हे सखे ! सातवें मण्डलमें तुम दाहिना पग धरो इस पग धरनेमें तुम पृथिवी आदि सातलोकोंके सुख भोगनेवाली और सदा हमारी आज्ञाकारिणी रहो, तथा तुमको विष्णुभगवान् सप्त लोकोंके सुखभोग देवें और हमारेहीमें प्रीति रखनेवाली पतिव्रता करदेवे ॥ ७ ॥ इति ।

नुसारतो वधूरपि प्रत्येकमण्डले प्रथमं दक्षिणपदं ततो वामपदं विन्यसन्ती टिप्पण्यां लिखित "धनं धान्यम्" इत्यादि सप्तप्रतिवचनश्लोकान् प्रतिपादन्यासे क्रमशः समुच्चारयन्ती च गच्छेत् । इत्यपि केषाञ्चि-
पग, फिर वामपगभी रखती हुई और टिप्पणीमें " धनं धान्यम् " इत्यादि सात प्रतिवचन श्लोकोंको हरएक पद रखनेमें क्रमसे कहती चली-

---

१ अथ वधूकृतप्रतिज्ञात्मकसप्तप्रतिवचनश्लोकाः भाषार्थसहिताश्च ॥

धनं धान्यं च मिष्टान्नं व्यञ्जनाद्यश्च यद्गृहे ।
मदधीनञ्च कर्तव्यं वधूराद्यपदे वदेत् ॥ १ ॥

पहिले मण्डलपर पग रखते समय वरसे वधू (कहती है, कि इस प्रथममण्डलपर पग रखनेमें वरसे) यह प्रार्थना करती है कि, जो कुछ घरकी वस्तु धन,अन्न, मिष्टान्न और व्यञ्जनादि हों उनको मेरेही आधीन करना चाहिये, और मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि उचितही रीतिसे सभोंका खर्च करूँगी ॥ १ ॥

कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा ते मञ्जुभाषिणी ।
दुःखे धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये सा वदेद्वचः ॥ २ ॥

दूसरे मण्डलमें पग रखनेपर वरसे वधू यह प्रतिज्ञा करती है कि, मैं धैर्य्य और सुखमें प्रसन्नता तथा सदाही आप सबोंसे प्रियवचन बोलती हुई कुटुंबकी रक्षा करूँगी२

तव भक्तिरता नित्यं क्रीडिष्यामि त्वया सह ।
त्वदन्यं न नरं मन्ये तृतीये सा वदेद्वचः ॥ ३ ॥

तीसरे मण्डलमें पग रखनेपर वरसे वधू यह प्रतिज्ञा करती है कि, मैं आपके सिवाय किसी दूसरेको पुरुषही नहीं मानूँगी और आपहीके भक्तिमें सदा रत रहती हुई आपके साथ क्रीडा करती रहूँगी ॥ ३ ॥

लालयामि च केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये सा पदे वदेत् ॥ ४ ॥

चौथे मंडलमें पग रखनेपर वरसे वधू प्रतिज्ञा करती है कि-मैं आपके चरणोंसे लेकर शिरके केशोंपर्य्यन्त सर्वाङ्गकी सेवा गन्ध, माल्य, अनुलेपन और सुवर्णादि आभूषणों करके शृंगार करती हुई सदाही प्यार करती रहूँगी ॥ ४ ॥

आर्ते आर्ता भविष्यामि सुखदुःखविभागिनी ।
तवाज्ञां पालयिष्यामि पञ्चमे सा पदे वदेत् ॥ ५ ॥

पाँचवें मण्डलमें पग रखनेपर वरसे वधू प्रतिज्ञा करती है कि-मैं आपके दुःखसे दुःखी और सुख होनेमें सुखीरहती हुई सदाहीआपकी आज्ञाका पालनकरती रहूंगी॥५॥

न्मतम् । एषु सप्तसु मण्डलेषु वध्वाः क्रमशो दक्षिणपादन्यासस्यैव सप्ततया परिगणनम्, न तु वामपादन्यासस्यापि । इयमेव च सप्तपदी एतस्याः सप्तममण्डले पादन्यासादेव कन्यायां दारत्वभाव उपजायते । अपिच वरपक्षीयः पण्डितः वरोच्चारितसप्तमन्त्राणां टिप्पण्यां लेखानुसारतः तथा कन्यापक्षीयः पण्डितः कन्योच्चारितसप्तप्रतिवचनटिप्पण्यां लेखनानुसारतश्च अर्थं लौकिकभाषया सर्वानपि श्रावयेताम् । इत्यपि विधिः ॥) ततोऽग्रेः पश्चादुपविश्य पुरुषस्कन्धस्थितकुम्भादाम्रपल्लवेन जलमानीय तेन वक्ष्यमाणमन्त्रं पठन् वरो वधूमेनां मूर्द्धन्यभिषिञ्चति । (आप इति प्रजापतिऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । सुप्रतिष्ठाछन्दः । मूर्द्धाभिषेचने विनियोगः ।) ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमाः जावे। ऐसाभी किसीका मत है । इन सात मण्डलोंमें क्रमसे वधूके दक्षिण-पाद रखनेहीकी सात गणना होती है, वामपाद रखनेकी नहीं । यही सप्त-पदी है और इसके सातवें मंडलमें पग रखनेसे, कन्यामें दारत्वभाव निश्चित होजाता है और वरपक्षके पंडित वरके कहे सात मन्त्रोंका टिप्पणीमें लिखे अनुसार तथा कन्यापक्षके पंडित कन्याके कहे सात प्रतिवचन टिप्पणीमें लिखे अनुसार लौकिकभाषा अर्थ सभोंको सुनावें यहभी विधि है) तदनन्तर अग्निसे पश्चिममें वधूसहित पूर्वाभिमुख बैठा हुआ वर दृढ पुरुषके कन्धेपरसे जलसहित अभिषेककलशको सामने रखवायके, विनियोग सहित 'ॐ आपः शिवा०' मन्त्र पढके उस कलशमेंसे आम्रके पत्तों अथवा कुशोंद्वारा जल लेलेकर

यज्ञे होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह ।
धर्मार्थकामकार्येषु वधूः षष्ठे पदे वदेत् ॥ ६ ॥

छठे मण्डलमें पग रखनेपर वरसे वधू यह प्रतिज्ञा करती है कि-धर्म, अर्थ और कामके सभी कर्मोंके करनेमें तथा यज्ञ, होम और दानादि करते समय भी सदा आपके साथही मैं रहूंगी ॥ ६ ॥

अत्रांशे साक्षिणो देवा मनोभावप्रबोधिनः ।
वञ्चनं न करिष्यामि सप्तमे सा वदेत्पदे ॥ ७ ॥

सातवें मण्डलमें पग रखनेपर वरसे वधू यह प्रतिज्ञा करती है कि-शास्त्रानुसार अब मैं आपकी पत्नी (दारा) होगई और मनके भावोंको जाननेवाले देवताओंकी साक्षी मैं देती हूं कि, जितने वचनोंको मैंने कहा, वे सभी सच्चे मनसे कहे हैं और मैं आपसे कभीभी छल कपट नहीं करूँगी ॥ ७ ॥

तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ पुनस्तथैवानीतजलेन वक्ष्यमाणमन्त्रैरात्मानमप्यभिषिञ्चति । (आपोहिष्ठेत्यादित्र्यृचस्य सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीच्छन्दः । आपो देवता । मूर्द्धाभिषेचने विनियोगः ।) आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातन । महेरणायचक्षसे । योवःशिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः । तस्मा॥अरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजनयथाचनः (य० अ० ११ मंत्र ५०–५२) इति तिसृभिः ॥ अथैनां सूर्यमुदीक्षस्वेति प्रैषपूर्वकमाज्ञापयेद्वरः । ॐ तच्चक्षुरित्यनेन मंत्रेण वधूः सूर्यं पश्यति ॥ ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येमशरदः शतञ्जीवेमशरदः शतꣳ शृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाःस्यामशरदः शतम्भूयश्चशरदः शतात् ॥ (य० अ० ३६ मन्त्र २४) अस्तमिते सूर्य्ये विवाहश्चेत्तदा ध्रुवमुदीक्षस्वेति पतिप्रैषानन्तरम् ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि । इति वधूः पठित्वा ध्रुवं पश्यति । ततो वरः ॐ ध्रुवैधिपोष्यामयि । मह्यन्त्वादाद्बृहस्पतिर्मयापत्याप्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥ इति पठित्वा वधूं पृच्छेत् । सूर्य्यः उदीक्षितः वा ध्रुवः उदीक्षितः इति पृष्टा सा

वधूके शिरपर अभिषेक करे । फिर उसी प्रकार अपने शिरपरभी विनियोग सहित ' ॐ आपोहि०' इत्यादि तीन मन्त्रोंद्वारा अभिषेक करे । तत्पश्चात् वरके 'सूर्यमुदीक्षस्व' ऐसा कहनेपर ' ॐ तच्चक्षुर्देव०' मन्त्र पढती हुई वधू सूर्य्यभगवान्‌का दर्शन करे । यदि रात्रिमें विवाह हो तो वरके 'ध्रुममुदीस्व' ऐसा कहनेपर 'ॐ ध्रुवमसि ध्रुवंत्वा पश्यामि' इतना मन्त्र पढती हुई वधू ध्रुवका दर्शन करे । तब बाकी 'ॐ ध्रुवैधि०' इत्यादि मन्त्र वर पढकर वधूसे सूर्यः उदीक्षितः' सूर्यको देखा, अथवा 'ध्रुवः उदीक्षितः' ध्रुवको देखा ऐसा

१ "सूर्य्यावलोकनादायुरभिवृद्धिर्भवेद्ध्रुवा" इति । स्मृतिसंग्रहे ।

यदि न पश्यति तथापि "पश्यामि" इति ब्रूयात् ॥ ततो वरो वधूदक्षिणांसोपरि हस्तं नीत्वा ममव्रते इति मंत्रेण तस्या हृदयमालभेत् । ॐ ममव्रतेतेहृदयंदधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ इति ॥ (पारस्कर गृ० सू० १ । ८ । ८ तथा मानवगृ सू० १ । २० । १३) (हृदयालभने संजाते वरस्य दक्षिणभागे एवोपविष्टा वधूः 'तीर्थव्रतोद्यापन०' इत्यादि टिप्पण्यां लिखितक्रमेण सप्तप्रतिज्ञावचनानि वरंप्रति ब्रूते। तेषामर्थं कृत्वा कन्यापक्षीयः पुरोहितः सर्वाञ्जनान् श्रावयति च इत्यपि देशकुलाचारतो भवति।) पूछे । यदि सूर्य अथवा ध्रुव नहीं भी वधूको दीखे हों तोभी वरके पूछनेपर, 'पश्यामि' देखती हूं, ऐसाही वधू कहे । तत्पश्चात् वर वधूके दहिने कन्धेपरसे हाथ लेजाकर वधूके हृदयका स्पर्श करके 'ॐ मम व्रते' मन्त्रको पढे ॥ (हृदय स्पर्श हो जानेपर वरके दक्षिणमेंही बैठीहुई वधू टिप्पणीमें 'तीर्थव्रतोद्यापन०' इत्यादिक्रमसे लिखे सात श्लोकोंद्वारा प्रतिज्ञावचनोंको वरसे कहती है । और लौकिक भाषामें सातोंके अर्थ सर्वजनोंको सुनाते हैं । यहभी देशकुलाचारके अनुसार होता है ।) वरके वाम भागमें वधूको बैठादेवे । तद-

---

१ वरके वामभागमें जानेके लिये परम दानभावसे कन्या हाथ जोड वरसे नीचे लिखे इन सात वचनोंको कहती है कि—

तीर्थव्रतोद्यापनयज्ञदानं मया सह त्वं यदि कर्म कुर्य्याः ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी ॥ १ ॥

प्रथम यह कि तीर्थयात्रा, व्रतादि उद्यापन, यज्ञ और दानादिकर्मोंको यदि आप मुझे साथमेंही लियेहुये करना स्वीकार करें, तो मैं आपके वामभागमें जाऊँ ॥ १ ॥

हव्यप्रदानैरमरान् पितॄंश्च कव्यप्रदानैर्यदि पूजयेथाः ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं द्वितीयम् ॥ २ ॥

दूसरा वचन यह कहती है कि, देवताओंकेलिये हव्यदान और पितरोंकेलिये कव्यदानादि कर्मोंके करनेमें मुझे संग रखना यदि आप स्वीकार करें तो मैं आपके वामाङ्गमें जाऊँ ॥ २ ॥

कुटुम्बरक्षाभरणे यदि त्वं कुर्य्याः पशूनां परिपालनञ्च ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं तृतीयम् ॥ ३ ॥

वरस्य वामभागे वधूमुपवेशयेत् । वामभागे उपविष्टामेनामभिमन्त्रयति वरः । (सुमङ्गलीरितिप्रजापतिर्ऋषिर्वधूर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः । अभिमन्त्रणे विनियोगः ।) ॐ सुमङ्गलीरियंवधूरिमा१७समेतपश्यत । सौभाग्यमस्यै नन्तर वामभागमें बैठीहुई वधूकी ओर देखता हुआ अथवा वधूके मस्तकपर अपना दहिना हाथ रखकर वर विनियोगसहित 'ॐ सुमङ्गली०' इस मंत्र

—तीसरा वचन यह कहती है कि, यदि अपने कुटुम्बियों और गऊ आदि सभी पशुओंका यथोचित पालन पोषण करना मेरे आधीन रखना आप स्वीकार करें तो मैं आपके वामाङ्गमें जाऊँ ॥ ३ ॥

आयव्ययौ धान्यधनादिकानां पृष्ट्वा निवेशं च गृहे निदध्याः ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं चतुर्थम् ॥ ४ ॥

चौथा वचन यह कहती है कि, अन्न तथा धन आदि और जो कुछ घरमें आवें उन सबको संचित रखना और मेरी सलाहसे उचितरूपमें खर्च करना यदि ऐसा आप स्वीकार करें तो मैं आपके वामाङ्गमें जाऊँ ॥ ४ ॥

देवालयारामतडागकूपवापीर्विदध्या यदि पूजयेथाः ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च पञ्चमम् ॥ ५ ॥

पाँचवाँ वचन यह कहती है कि यदि आप देवालय, बाग, तालाव, कूप या बावली आदि तैयार करावें तो उनके प्रतिष्ठापूजनादि कर्मोंमें मुझे भी साथ रखना स्वीकार करें तो मैं आपके वामाङ्गमें जाऊँ ॥ ५ ॥

देशान्तरे वा स्वपुरान्तरे वा यदा विदध्याः क्रयविक्रयौ त्वम् ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च षष्ठम् ॥ ६ ॥

छठवाँ वचन यह कहती है कि, अपने देश अथवा विदेशमें यदि कोई व्यापारी वस्तुओंके खरीदने तथा बेचनेका प्रबन्ध हो तो उसमें मेरी भी सहायता आप स्वीकार करें तो मैं आपके वामाङ्गमें जाऊँ ॥ ६ ॥

न सेवनीया यदि पारकीया त्वया भवोद्भाविनिकामिनीति ।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च सप्तमम् ॥ ७ ॥

सातवें वचनमें वधू वरसे यह प्रार्थना करती है कि दूसरे पुरुषकी स्त्री चाहे कितनीही सुन्दरी हो किन्तु उसका सेवन नहीं करनेकी प्रतिज्ञा यदि आप करें तो मैं आपके वामाङ्गमें जाऊँ ॥ ७ ॥

ततो वरस्त्वेकवचनद्वारा कन्योक्तं स्वीकुर्य्यात् । वरवचनं यथा-

पूर्वोक्त सात वचनोंके स्वीकार करनेमें वर एक श्लोक यह कहे कि-

मदीयचित्तानुगतं च चित्तं सदा मदाज्ञापरिपालनञ्च ।
पतिव्रताधर्म्मपरायणस्त्वं कुर्य्याः सदा सर्वमिमं प्रयत्नम् ॥ १ ॥

दत्त्वायाऽथास्तं विपरेतन ॥ इत्यभिमन्त्रयेत् । (अस्मिन्नभिमन्त्रणावसर एव वध्वाः सीमन्ते ललाटे च वरः वक्ष्यमाणमन्त्रान्पठन् सिन्दूरं ददाति । तत्र सिन्दूरदानमन्त्रः—ॐ त्वाममद्य संवितर्वाममुश्वोदिवेदिवे व्याम-स्मभ्यश्ठसावीः । व्वामस्यहिक्षयस्यदेवभूरेरयाधियावामभाजःस्याम ॥ (य० अ० ८ मं० ६) ॐ दक्षिणत उहैक उपदधातितदेताःपुण्या-लक्ष्मीर्दक्षिणतोदधमइति ॥ तस्माद्यस्यदक्षिणतोलक्ष्मभवतितंपुण्यलक्ष्मी-कइत्याचक्षतऽउत्तरतः स्त्रियाउत्तरतआयतनाहिस्त्रीतत्तत्कृतमेवपुरस्तात्त्वै-वेनाउपदध्याद्यत्राहैवशि रस्तदेवहनूतज्जिह्वाथैताः पुण्यालक्ष्मीर्मुखतो-धत्ते (?) तस्माद्यस्य मुखेलक्ष्मभवतितंपुण्यलक्ष्मीकइत्याचक्षते ॥ इति सिन्दूरदानम्) ॥ पुनर्वधूं वरस्य दक्षिणभागे उपवेशयन्ति तत्रैव पति-पुत्रान्विताश्चतस्त्रः स्त्रियः सुभगास्तस्यै वध्वै सौभाग्यं दद्युः । ताभिर्वक्त-

इस मन्त्र द्वारा वधूको अभिमंत्रित करे । (और इसी अवसरमें 'ॐवाममद्य० इस एक मन्त्रको अथवा 'इत्याचक्षते' पर्यन्त सिन्दूरदानके और भी मन्त्रोंको कहकर वधूके मांग और माथामें वर सिन्दूर लगावे) पुनः वधूको वरके दक्षि-णभागमें बैठालकर सुमङ्गली अर्थात् पतिपुत्रोंवाली सौभाग्यवती स्त्री सुमङ्गली कही जाती है, ऐसी ४ स्त्रियां वधूके समीप आय सुवर्णशलाकादिद्वारा वधूके सिन्दूर लगावें इसके अनन्तर विवाहस्थानसे पूर्व या उत्तर किसी परदेवाले

—मेरे चित्तके अनुसार तुम अपनाभी चित्त रखतीहुई सदाही हमारी आज्ञाका पालन आदि पतिव्रताधर्ममें परायण रहनेका प्रयत्न करती रहना तो सभी उचित होगा ॥ १ ॥

इति मिथः प्रतिज्ञां कुरुताम् । एतेषामभिप्रायांस्त्वाचार्य्यो वरवधूभ्यां सर्वांश्च श्रावयेत् ॥ एवं कन्यावरयोर्वचनप्रतिवचने जातेऽग्रेतनं कर्म कुर्यात् ॥

वरका पुरोहित इसकाभी भाषार्थ सुनाय देवे और आगेका कर्म्म आरम्भ करावे। इति।

१ पतिपुत्रान्विता भव्याश्चतस्रः सुभगाः स्त्रियः ।
सौभाग्यमस्यै दद्युस्ता मंगलाचारपूर्वकम् ॥
पतिपुत्रवती नारी सुरूपगुणशालिनी ।
अविच्छिन्नप्रजा साध्वी सदया सा सुमंगली ॥

ण्यवाक्यम् । यथा—ॐ गौर्य्याः सावित्र्यास्तव सौभाग्यं भवतु । इति वधूदक्षिणकर्णे ताभिर्वक्तव्यमिति ॥ अथ बलवान कश्चिद्ब्राह्मणो वरो वा वधूमुत्थाप्य प्रागुदग्वाऽनुगुप्तागारे लोहितानडुच्चर्मणि प्रागग्रानुदगग्रान्वा कुशानास्तीर्य तदुपरि, अथवा आस्तृतकुशेष्वेव समुपवेशयेत् । (इहगाव इति प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताऽनुष्टुप्छन्दः । उपवेशने विनियोगः ।) ॐ इहगावोनिषिदन्त्विहाश्वाइहपूरुषाः । निषीदन्तु इहसहस्त्रं दक्षिणोयज्ञइहपूषानिषीदतु॥इति मन्त्रेण॥अथ स्विष्टकृद्धोमः-ॐअग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम।स्रुवावशिष्टाज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ।

घरमें लाल लोमवाले बैलके पूरे चमडे उत्तर या पूर्व सिरहना कर ऊपर बाल रहें, ऐसे बिछे हुयेपर कुशोंको बिछावे, यदि ऐसा वृषभचर्म नहीं हो तो, केवल पूर्वाग्र बिछाये कुशोंहीपर कोई बलिष्ठ ब्राह्मण अथवा वरही वधूको उठालेजाकर विनियोग सहित 'ॐ इहगावो०' मन्त्र पढकर बैठावे । तत्पश्चात् ब्रह्मासे कुशाद्वारा अन्वारब्ध हुआ वर घृतसे स्रुवाद्वारा 'ॐ अग्नये०' मन्त्रसे स्विष्टकृत् एक आहुति देके, स्रुवाका शेष घृतबिन्दु प्रोक्षणीपात्रमें गिरावै ॥

---

१ पश्चादग्नेरोहिते चर्मण्यानडुहे प्राग्ग्रीवे लोमतो दर्भानास्तीर्य्य तेषु वधूमुपवेशयत्यपि वा दर्भेष्वेव । (मा० गृ० ११ खण्डे १९ सूत्रम्)

अग्निसे पश्चिम लाल बैलके चर्मको पूर्व शिर ऊपर लोमका भाग करके बिछाय उस. पर कुशोंको फैलाय, उसपर वधूको बिठावे अथवा चर्म न हो तो कुशोंहीपर बैठावे ॥

२ पाकयज्ञान्समासाद्य एकाज्यानेकबर्हिषः । एकं स्विष्टकृतं कुर्य्यान्नानासत्यपि दैवते ॥ (इति मा० गृ० सूत्र २ पुरुषस्य १८ खण्डान्ते लिखित सूत्रम् सर्वकर्मणि ग्राह्यम)

जिन पाकयज्ञोंमें प्रधान देवता अनेक हों उनमेंभी एकही घी रक्खे, एक परत कुश बिछावे और सबकी एकही स्विष्टकृत् आहुति करे । किन्तु कई देवताओंके लिये इन कामोंको पृथक् पृथक् न करे । यह परिभाषासूत्र सर्वत्रके लिये है ॥

अयं च होमो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृकः । ततः संस्रवप्राशनम् ॥ आचम्य ततः ब्रह्मणे पूर्णपात्रदक्षिणादानम्—ॐ, अद्यकृतैतद्विवाहहोमकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतम् अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे । इति ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् । ॐ स्वस्ति इति प्रतिवचनम् । ततः आचार्यदक्षिणादानम्- ॐ अद्यकृतैतद्विवाहहोमकर्मणि आचार्यकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यम् अग्निदैवतं द्रव्यम् अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे इत्याचार्याय दक्षिणां दद्यात् । ॐ स्वस्ति दम्पत्योरविच्छिन्ना प्रीतिरस्तु । वंशाभिवृद्धिरस्तु । सदा शुभं भूयात् इत्याचार्यो वदेत् ॥ ततो ब्रह्मग्रन्थिविमोकः॥ततः अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां प्रणीतापात्रस्थिते पवित्रे गृहीत्वा प्रणीताजलेन ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयःसन्तु । इति शिरः संमृज्य । ॐ दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तुयोऽस्मान्द्वेष्टियञ्चवयन्द्विष्मः (य० अ० ३५ मन्त्र १२) इत्यैशान्यां दिशि प्रणीतान्युब्जीकरणम् । तत आस्त-

तत्पश्चात् वर, प्रोक्षणीपात्रमें गिरायेहुये संस्रवका प्राशन कर हाथ धोय आचमन करे । और ब्रह्माका पूर्णपात्र दक्षिणादि हाथमें ले 'ॐ अद्य०' इत्यादि गोत्र नाम कह 'संप्रददे' पर्यन्त पूरा सङ्कल्प कर ब्रह्माको पूर्णपात्र दक्षिणा दे देवे । और ब्रह्मा 'ॐस्वस्ति' ऐसा कह ले लेवें । पुनः वर आचार्यकी दक्षिणादि हाथमें ले 'ॐ अद्य' इत्यादि गोत्र नाम कह 'संप्रददे' पर्यन्त पूरा संकल्प कर आचार्यको दे देवे । और आचार्य 'ॐ स्वस्तिदंपत्यो०' इत्यादि वाक्योंको कहकर वर और वधूको आशीर्वाद देता हुआ दक्षिणादि ले लेवे । फिर कुशनिर्मित ब्रह्माका मोचन कर देवे ॥ तत्पश्चात् प्रणीतामें धरे पवित्रकके दो कुशपत्रोंको वर अपने अनामिकांगुष्ठोंसे ग्रहणकर 'ॐसुमित्रिया०' मन्त्र पढ इन पवित्रोंद्वारा प्रणीताजलसे अपने शिरपर मार्जन करे, और 'ॐ दुर्मित्रिया०' मन्त्रसे प्रणीताको ईशानकोणमें औंधा कर देवे । फिर

रणक्रमेण पवित्रसहितसर्वबर्हिरुत्थाप्य आज्येनाभिघार्य हस्तेनैव बर्हिर्होमः। तत्र मन्त्रः—ॐ देवागातुविदोगातुं वित्त्वागातुमित। मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञꣳस्वाहा व्वातेधाः स्वाहा (य० अ० ८ मं० २१)। इदं वाताय न मम॥ तत उत्थाय वधूदक्षिणहस्तेन स्रुवस्पृष्टघृतपुष्पफलैः पूर्णाहुतिं वरः कुर्य्यात्। तत्र मन्त्रः (मूर्द्धानन्दिव इति भारद्वाजऋषिः। वैश्वानरो देवता। त्रिष्टुपूछन्दः पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः) ॐ मूर्द्धानन्दिवोऽअरतिम्पृथिव्यावैश्वानरमृतऽआजातमग्निम्। कविꣳसम्म्राजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्तदेवाःस्वाहा। (य० अ० ७ मं० २४) इदमग्नये न मम॥ तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना—ॐ त्र्यायुषंजमदग्नेः—इतिललाटे। ॐ कश्यपस्यत्र्यायुषम्—इति ग्रीवायाम्। ॐ यद्देवेषुत्र्यायुषम्—इतिदक्षिणांसे। ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्—इति हृदि (य०अ०३मं०६२) इति ललाटादौ भस्म योजयेत्। एवं वध्वा अपि कुर्य्यात्, तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः।ततो ब्राह्मणभोजनसंकल्पं कुर्य्यात्। यथा—कृतस्तरणक्रमसे पवित्रोंसहित सब कुशोंको उठाके उनमें आज्यस्थालीसे घी लगाकर 'ॐ देवागातु०' मन्त्रद्वारा ' न मम' पर्यन्त कहकर हाथसेही होम कर देवे तदनन्तर वधूसहित वर खडा हो स्रुवाको घृतसे पूरित और पुष्पादिसहित नारियल या सुपारीसे युक्तकर वधूके दहिने हाथसे स्पर्श कराये हुये स्रुवाद्वारा घृतादि द्रव्योंसे 'ॐ मूर्द्धानं०' आदिसे 'न मम' पर्यन्त पढ पूर्णाहुति करदेवे। पुनः वधू और वर अपने अपने स्थानोंपर बैठ, वर स्रुवाद्वारा हवनाग्निसे भस्म ले अपने दहिने हाथकी अनामिकांगुलिके अग्रभागसे 'ॐ त्र्यायुषं०' से अपने ललाटमें, 'ॐ कश्यप०' से कण्ठमें, 'ॐ यद्देवेषु०' से दहिने कन्धेमें और 'ॐ तन्नो०' से हृदयमें भस्म लगावे। इसीके अनुसार वधूकेभी ललाटादिमें भस्म लगावे,परन्तु वधूके अङ्गोंमें लगातेसमय 'तन्नो'केस्थान में 'तत्ते' ऐसा कहे। तदनन्तर विवाहाङ्गभूत यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनका कुश-

स्यास्य विवाहहोमाख्यस्य कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयिष्ये । तथैव भूयसीं दक्षिणाञ्च संकल्पयेत् । यथा— ॐ अद्य विवाहकर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च दातुमहमुत्सृजे ॥ ततो वरपिताऽन्यो वा ब्राह्मणः आशीर्वादात्मकं दूर्वाद्रव्यसहितनारिकेलादिफलं वध्वै दद्यात् । तत्र मंत्रः—ॐ श्रीर्व्वर्च्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानम्महीयते । धान्यंधनंपशुं बहुपुत्रलाभं शतसम्वत्सरं दीर्घमायुः ॥

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥ इति ॥

ततो द्रव्यादिभिर्नापितादींश्च संतोष्य वध्वा सहितो वरः कौतुकागारं व्रजेत् ॥ इति ॥

जल ले 'ॐ अद्य' इत्यादि कहकर संकल्प करे । पुनः कुशादि ले 'ॐअद्य०' इत्यादि कह भूयसी दक्षिणाभी सङ्कल्प करदेवे । तत्पश्चात् वरके पिता आदि कोई बडे, अथवा ब्राह्मण वधूके संमुख खडे हो, द्रव्यसहित दूर्वा और नारियलका गोला आदि हाथमें लेकर 'ॐ श्रीर्वर्चस्व' इत्यादि वैदिक मन्त्र तथा 'मन्त्रार्थाः' इत्यादि पौराणिक श्लोकको कह वधूके गोदमें छोडदेवें । और नापितादिकोंकोभी द्रव्यादि देकर सन्तुष्ट करनेके बाद, आगे वर और पीछे वधू होकर कौतुकागार (कोहवर) में जावै ॥

---

१ मानवगृह्यसूत्रेषु प्रथमपुरुषस्य द्वादशखण्डोक्तानि कौतुकागारकर्मप्रयोगानुसारक्रमेणात्र प्रमाणार्थं लिखितानि सूत्राणि । यथा—

"अथाभ्यञ्जति । अभ्यज्य केशान् सुमनस्यमानाः प्रजावरीर्यशसे बहुपुत्रा अघोराः । शिवा भर्तुः श्वशुरस्यावदायायुष्मती, श्वश्रुमतीश्चिरायुः । इति (३ सूत्रम्) । अत्रैव सीमन्तं करोति । त्रिश्वेतया शलल्या समूलेन दर्भेण वा सेनाहनामेत्येतया । (२ सूत्रम्) जीवोर्णयोपसमस्यति । समस्य केशानवृजिनानघोरान् शिवा सखीभ्यो भव सर्वाभ्यः । शिवा भव सुकुलोह्यमाना शिवा जनेषु सहवाहनेषु । इति (४ सूत्रम्) ॥ तस्य स्वस्ति वाचयित्वा, समाना वा

अथ कौतुकागारकृत्यम्।

कौतुकागारं गतो वधूसहितो वरस्तत्र स्थितश्च मानवगृह्यसूत्रेषु प्रथमपुरुषस्य द्वादशखण्डोक्ततृतीयद्वितीयचतुर्थषष्ठपञ्चमसप्तमेति क्रमेणोक्तसूत्रविधिना यत् टिप्पण्यां कौतुकागारप्रयोगं लिखितं

अब कौतुकागारका कृत्य इस प्रकार करना चाहिये कि, वधूसहित वर कौतुकागारमें पहुंच आसन पर बैठ, और मानव गृह्यसूत्र प्रथम पुरुषके द्वादश खण्डमें कौतुकागारके कर्तव्यकर्मोंका जैसा टिप्पणीमें प्रमाणार्थ तीसरी, दूसरा चौथा, छठा, पांचवां और सातवां सूत्रप्रयोगानुसार क्रमसे लिख दिया है इसी विधिसे जो कौतुकागारप्रयोग (टिप्पणीमें लिखा) है प्रथम उसको वर और

–आकूतानीति सह जपति। (६ सूत्रम्)॥अथैनौ दधिमधु समश्नुतो यद्वा हविष्यंस्यात्) इति (६ सूत्रम) ॥ उभौ सह प्राश्नीतः। इति (७ सूत्रम्) ॥" इति। इन सात सूत्रके अर्थ आगे लिखे "कौतुकागारकर्मप्रयोग" के देखनेसे स्पष्ट होजायंगे॥

१ अथ मानवगृह्यसूत्रोक्तविधिना कौतुकागारकर्मप्रयोगः॥ कौतुकागारं गतो वधूसहितो वरस्तत्र स्वस्याग्रतः आसनोपरि वधूमुपवेश्य सुगन्धिततैलेन तस्याःकेशानभ्यञ्जेत्। तत्र मंत्रः–ओं अभ्यज्य-केशान् सुमनस्यमानाःप्रजावरीः यशसे वहुपुत्रा अघोराः। शिवा भर्त्तुः-श्वशुरस्यावदायायुष्मतीःश्वश्रुमर्तीश्चिरायुः इति। ततः कङ्कतिकादिना तस्य केशानसुसज्जितान् कृत्वा. त्रिभिः श्वेतशल्लकी कण्टकैः, समूलदर्भेण वा तान केशान्-भागद्वये विभज्य शिरसि सीमन्तं कुर्य्यात् तत्र मंत्रः–ओं सेनाहनाम० इत्यादि पूर्णमंत्रं पठेत्। ततो जीवितमेषोर्णासूत्रैः केशानां वेणीः निर्माय ताः सर्वाः एकत्रैव वध्नीयात्। तत्र मन्त्रः ओं. समस्य केशानवृजिनानघोरान् शिवा सखीभ्यो भव सर्वाभ्यः।शिवा भवं सुकुलोह्यमाना शिवाजनेषु सहवाहनेषु। इति। तदनन्तरं वरः एकं ब्राह्मणं प्रति 'स्वस्ति ब्रू ३–हि, (इत्यत्र ऊकारस्य प्लुतोच्चारणपूर्वकं ब्रूयात्। ब्राह्मणः ', स्वस्ति' इति वदेत्। ततो ब्राह्मणेन सह वरोऽपि समाना वा आकूतान' इति पूर्णमंत्रं पठेत्। ततो वधूवरावुभावपि सहैव एकस्मिन्नेव पात्रे दधि मधु प्राश्नीताम्। यद्वा हविष्यान्नं प्राश्नीताम् इति। ततो ग्राम्यवचनमपि मूलोक्तप्रकारेण कुर्य्यात्॥

मानवगृह्यसूत्रोंमें कहे कौतुकागारकर्मप्रयोग इस प्रकार है कि–वधूके सहित वर कोहवरमें पहुंच यहाँ आसनपर अपने सामने वधूको बैठाकर उसके केशोंमें सुगन्धित तैल "ओं अभ्यज्य०" मन्त्र पढकर लगावे। फिर कङ्घी आदिसे वालोंको सुरझाय

तत्कर्माऽग्रे सम्यक्कृत्वैव ततो ग्राम्यवचनमपि कुर्यात् अर्थात् तत्रत्याः स्त्रियः यथाकुलदेशाचारं गौरीपूजनं वधूवरक्रीडनं दधिमधुप्राशनादिकं च कारयन्ति । तथा एकस्मिन् दीपे पृथक् प्रज्वलितवर्तिकाद्वयं च सुवर्णशलाकादिना मेलयन्ति, तदर्थं द्रव्यदानादिना वरं संतोषयन्ति च । एवं सूत्राद्युक्तप्रयोगं कृत्वैव शुभसंस्कारो भवति । परश्चात्र प्रयोगस्याऽनभिज्ञत्वात् लौकिकाचारमात्रमेव स्त्रियः कारयन्ति । किन्तु वैदिको लौकिकश्च कर्म कुर्यादिति सिद्धान्तः ॥ ततो विवाहदिवसाच्च-

वधू कौतुकागार (कोहवर) में करके तत्पश्चात् ग्राम्य वचन अर्थात् कोहवरमें एकत्रितहुई स्त्रियां वरवधूसे लोकाचारके अनुसार गौरीपूजन, दोनोंका आपसमें कुछ क्रीडन, दधि और मिठाईका आपसमें प्राशन कराती हैं और एक दीपकमें अलग अलग जलतीहुई दो बत्तियोंको सोनेकी सलाई आदिसे दोनों बत्तियोंको एकत्रित कराकर एक ज्योति कराय देती हैं और ऐसा करनेके लिये वरको वस्त्र आभूषण द्रव्य आदि देकर संतुष्ट करती हैं, इस प्रकार सूत्रादिमें कहे रीतिसे कर्म करनेहीमें सुन्दर संस्कार होकर उत्तम प्रभाव होता है । परञ्च प्रयोगोंको नहीं जाननेके कारणही स्त्रियां लौकिकाचारमात्र ही करा

—तथा झाडकर साहीके तीन सफेद कांटोंसे, या जडदार कुशके मूलसे शिरमें माँगका काढना और " ओं सेनाहनाम " इस मन्त्रको पूरा पढ़देना । फिर सब बालोंकी चोटी बनावे और जीतेहुये मेढाके ऊनोंसे बने डोरोंके साथ ' ओं समस्य ' मन्त्रको पढताहुआ सबका जूडा बाँधदेवे । इसके बाद किसीएक ब्राह्मणसे वर कहे "स्वस्तिब्रू३हि" इस ब्रू ३ के ऊकारका उच्चारण वर प्लुत करे अर्थात् ऊँचे स्वरसे कहे । और ब्राह्मण " स्वस्ति " ऐसा कहदेवे । फिर ब्राह्मणके साथ वरभी " ओं समानावा आकूतानि " इस मन्त्रको पढे । तत्पश्चात् वर और वधू एकहो पात्रमें धराहुआ दही और मीठा मिलाकर अथवा हविष्यान्न एक साथही खावे । फिर हाँथ मुख धोकर, ग्राम्यवचन आगे लिखे अनुसार सभी कर्मोंयो पूरा करदेवे । इति कौतुकागारकर्मप्रयोगः ॥

१ ग्राम्या वृद्धाः स्त्रियः ता यद्देशजातिकुलाहाराद्यनुसारेण, शास्त्रेष्वनुक्तमपि ब्रूयुस्तदपि विवाहविषये कर्त्तव्यम्, इति पारस्करगृह्यसूत्रेप्युक्तम् ॥

पारस्करगृह्यसूत्रमें लिखा है कि, जाति और कुलरीतिके अनुसार, गाँवँकी वृद्धा स्त्रियाँ विवाहविषयमें जो कहें, यदि वह शास्त्रमें नहींभी हो, तो भी करना चाहिये, इति ।

तुर्थे दिने रात्रौ चतुर्थीहोमकर्म कुर्यात्। तथा विवाहदिवसादेव संवत्सरं द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रं वा अक्षारलवणाशिनौ अधःशायिनौ निवृत्तमैथुनौ भवेताम्। यदास्मिन्नेवावसरे वधूप्रवेशोऽपि भवेत् तदा चतुर्थीकर्मान्ते वधूप्रवेशमपि अग्रेलिखितप्रयोगाऽनुसारेण द्वावपि कृत्वा मण्डपोद्वासनं कुर्यात्। यद्यस्मिन् समये वधूप्रवेशं नेच्छेत्तदा चतुर्थीकर्मान्ते मण्डपोद्वासनं कुर्यात्। तस्य प्रयोगं तु वधूप्रवेशप्रयोगान्ते लिखितमस्ति ॥ इति श्रीचिकित्सकचूडामणि॰ विरचितविवाहसोपाङ्गविधौ विवाहदिनकृत्यप्रयोगः ॥

देती है। किन्तु वैदिक तथा लौकिक दोनोंही कर्म करना चाहिये यही सिद्धान्त है ॥ जैसे कौतुकागार प्रयोगमें वधूके केशोंमें तैल लगाना, कंघीसे झाडना, साहीके कांटे या कुशमूलसे मांग काढकर चोटी गूथना और जीते हुये मेढाके ऊनसे बने डोरोंसे जूडा बांधना और दधि मीठा प्राशन आदि पूर्णरूपसे सभी कर्मोंके करनेमें सुविधा नहीं होनेसे केवल वरके हाथोंसे सभी स्थानोंको स्पर्श कराकर मन्त्रोंको पढ़ना भी होजानेसे कुछ उत्तमही संस्कार हो जायगा और क्रमसे लोग पूर्णरूपसे करने लगेंगे इत्यादि। इस प्रकार विवाह दिनका कार्य पूराकरके विवाह दिनसे चौथे दिन रात्रिके समय चतुर्थी होम कर्म करना। तथा विवाह दिनहीसे एक वर्ष, बारह दिन, छः दिन अथवा कमसे कम तीन दिन तक वर वधू दोनोंही क्षार लवणादि नहीं खावें, चारपाई आदि ऊंचेपर नहीं अर्थात् नीचे सोवें, और निवृत्त मैथुनादि ब्रह्मचारी रहें यदि इसी अवसरमें वधूप्रवेशभी करना हो तो आगे लिखे वधूप्रवेश प्रयोगके अनुसार करके मण्डपोद्वासन करें। अथवा वधूप्रवेश करनेका विचार नहीं हो तो चतुर्थी होमकर्म पर्यन्त अवश्यही करके मण्डपोद्वासन जैसा कि इस पुस्तकमें वधूप्रवेशकर्मके अन्तमें आगे मण्डपोद्वासनप्रयोग लिखा गया है उसी प्रकार करना चाहिये। यह विवाहदिन कृत्य प्रयोग पूरा हुआ ॥ इति बालबोधिनीटीकायां विवाहदिनकृत्यम् ॥

१ संवत्सरं न मिथुनमुपेयाताम्, द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः। (पारस्कर गृह्य सू॰ १। ८। २१ ॥) इति।

श्रीः

अथ चतुर्थीहोमकर्मावश्यकत्वे मीमांसा ।

तत्र विवाहाच्चतुर्थेऽहनि रात्रौ चतुर्थीहोमकर्म कुर्यादिति यः सिद्धान्त-स्तस्यानेकदेशेष्वनेककुलेषु च लोप एव दृश्यते । कर्म्मलोपत्वात् संस्कारेऽपि भ्रष्टतादिदुर्गुणं भाति ॥ यद्यपि शास्त्रेष्वेवमप्यस्ति । यथा—

मुख्यकाले यदावश्यं कर्म कर्तुं न शक्यते ।
गौणकालेऽपि कर्तव्यं गौणोऽप्यत्र दृशो भवेत् ॥

इति प्रमाणमण्डनवाक्यमनुसृत्य "काललोपो यदि भवेत्कर्म्मलोपं न कारयेत्" इति मत्वा केषाञ्चित्कुले विवाहदिन एव गृहाभ्यन्तरे विवाहमण्डपे वा चतुर्थीहोमकर्म कुर्वन्ति, इत्यपि सामान्य एव पक्षः । उत्तमस्त्वग्रे वक्ष्यमाणप्रमाणानुसार एव भवति । यथाहानेकप्रमाणानि । लघ्वाश्वलायनस्मृतौ विवाहप्रकरणे (१५ श्लो० ६३)

विवाहमें चतुर्थी होमकर्म करना परमावश्यक है । इसका विचार इस प्रकार है कि, विवाहके चौथेदिन रात्रिके समय चतुर्थीहोम कर्म करना, यह जो शास्त्रका सिद्धान्त है, इसका लोप अनेक देशों और कुलोंमें देखाजाता है । और कर्म लोप होनेसे संस्कारोंमेंभी भ्रष्टतादि दुर्गुण अनेक देखे जाते हैं । यद्यपि शास्त्रोंमें ऐसा भी कहा है कि-जैसे जिसकर्म करनेके लिये जो काल निश्चित है, यदि उस कालमें किसी कारण वह कर्म नहीं करसके, तो दूसरे ही कालमें उस कर्मको कर लेना. क्योंकि, लाचारीके कारण दूसरा कालभी कर्म करनेमें मुख्यकालके सदृश ही हो जाता है । इस प्रमाणमण्डनवाक्यानु-सार तथा " काल लोप यदि हो भी जाय परन्तु कर्मका लोप नहीं करना " इस प्रमाणको मानकर किसी किसीके कुलमें विवाहके दिनही घरके भीतर या विवाह मण्डपहीमें चतुर्थी होमकर्म लोग कर देते हैं । इस प्रकार करनाभी सामान्य पक्ष है । प्रमाणानुसार करनेसे उत्तमपक्ष होता है, और वे प्रमाण इस प्रकार हैं । जैसे—लघुआश्वलायनस्मृति विवाह प्रकरण १५ के ६३ वें श्लोकमें कहा है कि, विवाह होजानेपर वर और वधू ब्रह्मचर्यव्रतसहित नियम

दम्पती नियमेनैव ब्रह्मचर्यव्रतेन तु।
वैवाहिकगृहे तौ च निवसेतां चतुर्दिनम् ॥ १ ॥
विवाहे चैव निवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु।
एकत्वमागता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥२॥इति भवदेवभट्टधृतमनुः॥
चतुर्थीहोममन्त्रेण त्वङ्मांसहृदयेन्द्रियैः।
भर्त्रा संयुज्यते पत्नी तद्गोत्रा तेन सा भवेत् ॥ ३ ॥ इति बृहस्पतिः॥

हरिहरभाष्ये तथा पारस्करगृह्यसूत्रस्य जयरामकृतभाष्येऽपि तथैव चतुर्थीकर्मणः प्राक् तस्याः (कन्यायाः) भार्यात्वमेव नोत्पन्नम्, विवाहैकदेशत्वाच्चतुर्थीकर्मणः। इति। अतस्तदकरणे विवाहकर्मणः पूर्णता न भवति। इत्यादि वाक्यप्रमाण्याद्विवाहाच्चतुर्थेऽहनि रात्रौ चतुर्थीहोमकर्मावश्यं कर्तव्यममिति सिद्धान्तः।

इति चतुर्थीकर्ममीमांसा ॥

पूर्वक विवाहके ही घरमें चार दिन ठहरे रहैं। और भवदेवभट्ट धृत मनुका कथन है कि, विवाह निवृत्त होनेपर चौथे दिन रात्रिमें पतिके देह, गोत्र और सूतकमें स्त्रीकी एकता होजाती है। इसी प्रकार बृहस्पतिका बचन है कि, चतुर्थी होमके मन्त्रोंसे त्वचा, मांस और हृदयोंके द्वारा पत्नीका पतिसे संयोग होता है, इसीसे वह पत्नी पतिगोत्रा होजाती है। औरभी हरिहरभाष्यमें तथा पारस्कर गृह्यसूत्रके जयरामकृतभाष्यमें भी ऐसा ही कहा है कि, विवाह कर्म हो जानेपर भी चतुर्थीहोम संस्कार होनेके पहिले कन्यामें भार्यात्वधर्म नहीं उत्पन्न होता. क्योंकि, विवाहसंस्कारका पूरा करनेवाला चतुर्थीहोम एक प्रधान अङ्ग है, इसलिये विना चतुर्थीहोम किये विवाहसंस्कार ही पूर्ण नहीं होता, और पाणिग्रहण करनेवाले पतिकी वह कन्या भार्या नहीं होती ॥ बस, ऊपर लिखे इन प्रमाणोंद्वारा निश्चित:हुआ कि, विवाह होनेके दिनसे चौथेही दिन रात्रिके समय चतुर्थी होम प्रयोग अवश्य करना, यही सिद्धान्त सर्वशास्त्रोंका निश्चय है।

इति बालबोधिनीटीकायां चतुर्थीकर्म मीमांसा ॥

श्रीः ।

अथ चतुर्थीकर्मप्रयोगः ।

विवाहदिवसाच्चतुर्थदिनस्यापररात्रे गृहाभ्यन्तर एव कार्यम् । तद्यथा–वरो वद्ध्वा सह तैलाद्युद्वर्तनपूर्वकं युगकाष्ठासनोपर्युपविश्य मङ्गलं स्नात्वा अहते शुद्धे वाससी परिधाय गृहं प्रविश्य धृतकुङ्कुमादितिलको वेदिसमीपे शुभासने वरः पूर्वाभिमुख उपविश्य स्वस्य दक्षिणतो ग्रन्थिबन्धनयुतां वधूं चोपवेश्य आचम्य प्राणानायम्य हस्ते पुष्पाक्षतद्रव्याण्यादाय 'ॐ सुमुखश्चैक०' इत्यारभ्य 'विघ्नस्तस्य न जायते । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ध्यायामि' इत्यन्तमुक्त्वा गणपतिस्मरणं कुर्यात् । ततो हस्ते कुशादीन्यादाय प्रतिज्ञासंकल्पं कुर्यात् । ॐ अद्ये त्यादिदेशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्र अमुकशर्म्मा मम अस्या भार्यायाः सोमगन्धर्वाग्न्युपभुक्तदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहैकदेशं चतुर्थीकर्माहं करिष्ये । इति ॥ (केषांचिन्मतेऽत्र गणपत्यादिदेवतानां पूजनमपि भवति तत्र प्रतिज्ञासंकल्पे विशेषः । यथा–अस्मिन्कर्मणि

अब चतुर्थीहोमप्रयोग लिखते हैं–विवाहदिनसे चौथे दिनकी अर्द्धरात्रि बीत जानेपर घरके भीतरही चतुर्थीकर्म करे अर्थात् पृथक् मण्डपादि नहीं बनावे । वधूसहित वर तैल उबटन आदि शरीरमें लगवाकर दो काष्ठके पीढों पर दोनोंही बैठ मंगलस्नान कर नवीन अहत लक्षणवाले दो दो वस्त्र धारण कर घरके भीतर पूजास्थानमें जाकर वेदीके समीप सुन्दर आसनपर वर पूर्वाभिमुख स्वयं बैठ, अपने दक्षिण गांठ बंधीहुई पत्नीको बैठाय, केसरादिसे अपने तिलक लगाये हुये जलसे ३ आचमन कर, हाथ धोय, प्राणायाम कर, हाथोंमें पुष्प अक्षत और द्रव्य ले गणपतिस्मरण 'ॐ सुमुखश्चै०' से 'ध्यायामि०' पर्यन्तकह पुष्पादि आगे छोडदेवे पुनः वर हाथमें कुशजलादि ले, देश कालादिका कीर्तनकर, केवल चतुर्थीहोम करने अथवा गणेशादिके स्थापन पूजनसहित जैसा कर्तव्य हो मूलमें लिखे अनुसार वैसाही प्रतिज्ञा

निर्विघ्नताप्राप्तये गणपत्यादिदेवतानामादौ पूजनञ्च करिष्ये । इत्यूह्यः॥) ततो वरवृतिप्रयोगे यथालिखितं गणेशगौरीकलशादिस्थापनपूजनं तथैव वरेण कृत्वा कुशकण्डिकामारभेत् । यदि विवाहमण्डप एव कृतं भवेत्तदा तु पूर्वावाहितानामेव गणेशादीनामावाहनातिरिक्तपूजनं कृत्वा कुशकण्डिकां कुर्यात् । इति ॥

अथ कुशकण्डिकारम्भः । तद्यथा—वरः स्वहस्तपरिमितां चतुरस्रां वेदीं कुशैः परिसमुह्य तान्कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फ्येन स्रुवमूलेन वा प्रागग्रप्रादेशमात्रोत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य तत्र तूष्णीं कांस्यपात्रेणाग्निमानीय स्वाभिमुखं ॐ शिखिननामानमग्निं स्थापयामि । इति वेद्यां निदध्यात् । तद्रक्षार्थं किंचिदिन्धनादिकं तत्र नियुज्य ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय ॐ अस्यां रात्रौ कर्त्तव्यचतुर्थीहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्त्तुम् अमुकसंकल्प करे ।) और इस पुस्तकके वरवृतिप्रयोगमें लिखे अनुसार गणेश, कलश गौरी आदिकोंका यथोचित पूजन करके कुशकंडिका आरम्भ करे । यदि विवाह मण्डपहीमें होवे तो प्रथमहीके स्थापित गणेशादिकोंका पूजन करके कुशकण्डिका करना चाहिये । कुशकण्डिका इस प्रकार करें कि, वर अपने एक हाथकी नपीहुई चौकोनी वेदीको, कुशोंसे परिसमूहन (चारों तरफसे बोहार देना) कर, कुशोंको ईशान दिशामें छोडकर, जलमिले गोवरसे वेदीको लीपके स्फ्य अथवा स्रुवाके मूलसे प्रादेशमात्र पूर्वाग्र उत्तर उत्तर क्रमसे तीन रेखा लिखकर, लिखेहुये इन ३ रेखाओंपरसे अनामिका और अंगुष्ठ द्वारा वही उत्तरोत्तर लेखन क्रमसे मट्टी उठाकर फिर जलसे रेखा वेदीपर अभ्युक्षण करदेवे । ये पञ्चभूसंस्कार कहाते हैं ॥ तत्पश्चात् कांस्यपात्र द्वारा कांस्यपात्र ही ढांकेहुये तूष्णीं अग्निको लाकर अपने संमुख वेदीपर 'ॐशिखि०' वाक्य कहकर स्थापित करके अग्निरक्षार्थ कुछ इन्धनादि लगादेवे, तब हाथमें पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रादि ब्रह्मावरणकी सामग्री कुश सहित ले 'ॐ अस्यां०' इत्यादि संकल्प पढके ब्रह्माका वरण करे ।

गोत्रम् अमुकशर्माणम् ब्राह्मणम् एभिः पुष्पचन्दनादिभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे इति ब्रह्माणं वृणुयात् । ॐ वृतोस्मि इति प्रतिवचनम् । यथाविहितं कर्म्म कुरु—इति वरेणोक्ते ॐ करवाणि--इति ब्राह्मणो वदेत् । ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान् कुशाना-स्तीर्य ब्रह्माणम् अग्निप्रदक्षिणक्रमेण आनीय ॐ अत्र त्वं मे ब्रह्मा भव--इत्यभिधाय ॐ भवानि--इति ब्राह्मणेनोक्ते कल्पितासने उदङ्मुखं ब्रह्माणं उपवेशयेत् । ततः पृथूदकपात्रम् अग्नेरुत्तरतः प्रतिष्ठाप्य प्रणीतापात्रं पुरतः । कृत्वा वारिणा सम्यक् परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ ततः परिस्त-रणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तम् (उत्तराग्रान्) ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम् (पूर्वाग्रान्) नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् (उत्तराग्रान्) अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् (पूर्वाग्रान्) । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम् पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयम्

तब ब्रह्मा 'वृतोऽस्मि' कहें, फिर 'यथाविहि०' ऐसा वरके कहनेपर ब्रह्मा 'करवाणि' कहें । तब अग्निसे दक्षिणमें शुद्ध आसन बिछाके, उसपर पूर्वाग्र कुश बिछाकर, ब्रह्माको अग्निके पूर्वसे दक्षिणमें लाकर 'अत्रत्वंमे०' ऐसा कहके, ब्रह्माके 'भवानि' कहनेपर, उक्त आसन पर ब्रह्माको उत्तराभिमुख बैठावे । तब जलसे भरे एक बडे पात्रको अग्निसे उत्तरमें रखके प्रणीतापात्रको आगेकर जलसे भरके, उसके ऊपर कुशोंको बिछाय, ब्रह्माके मुखको देखके अग्निसे उत्तरमें कुशोंपर धर देवे । तब ८१ कुशोंको चारभागकर एक एक भाग क्रमसे वेदीके पूर्वदिशामें अग्निकोणसे ईशानकोणपर्यन्त उत्तराग्र, दक्षिणमें ब्रह्मासे अग्निपर्यन्त पूर्वाग्र, पश्चिममें नैर्ऋत्यकोणसे वायुकोणतक उत्तराग्र और उत्तरमें अग्निसे प्रणीतापर्यन्त पूर्वाग्र, इस प्रकार कुशोंका चारोंभाग वेदीके चारोंतरफ परिस्तरण करे । तदनन्तर अग्निसे उत्तरमें पश्चिमदिशाके तरफसे इस प्रकार पात्रासादन आरम्भ करे । पवित्र छेदनार्थ तीन कुश, एक कुशमेंसे

प्रोक्षणीपात्रम् आज्यस्थाली चरुस्थाली स्रुवसंमार्जनार्थं कुशत्रयम् उपग्रहार्थं वेणीरूपं कुशत्रयम् प्रादेशमितपलाशसमित्त्रयम् स्रुवः आज्यम् स्थालीपाकार्थं तण्डुलम् दुग्धञ्च ब्रह्मदक्षिणार्थं षट्पञ्चाशदुत्तरवरमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नामतण्डुलपूर्णपात्रम् एतानि पवित्रच्छेदनकुशानाम् पूर्वं पूर्वंदिशि क्रमेणासादनीयानि । स्थालीपाकाय तण्डुलानाम् आसादनम्, चरुपात्रस्य च । ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे प्रादेशमिते प्रमाय छिन्द्यात् । तानपास्य पवित्राभ्यां प्रणीतोदकं उत्पूय सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय उदगग्रे पवित्रे व्यस्तहस्तयोरंगुष्ठानामिकाभ्यां आदाय तन्मध्येन प्रोक्षण्युदकं भूमौ त्रिः क्षिप्त्वा पवित्रे प्रोक्षण्यां निधाय तत्पात्रं दक्षिणहस्तेनादाय वामे निधाय दक्षिणहस्तानामिकांगुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किञ्चित्

बीचोंबीचके दो पत्ते जिनके बीचका कोई पत्र रह नहीं गया हो. प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली, चरुस्थाली, स्रुव, संमार्जनार्थ तीन कुश, उपग्रहके लिये वेणीरूप तीन कुश, प्रादेशमात्रके तीन समिधा, स्रुवा, घृत, खीर बनानेको चावल दुग्ध, ब्रह्माके दक्षिणार्थ वरकी दोसो छप्पन मुट्ठी चावलोंसे भरा पूर्णपात्र, इन सभोंको पवित्रच्छेदन कुशके पूर्वपूर्व क्रमसे धरे और स्थालीपाकके लिये चावल धरे । एवं चरुपात्रकोभी धरदेवे । फिर पवित्रच्छेदन तीन कुशोंसे पवित्रकवाले दो कुश पत्रोंको प्रादेशमात्र चोटीके तरफसे बराबर कर नापके काटदेवे और प्रादेशमात्रके कटे दो कुशपत्रोंको रखकर बाकी कटे और काटनेवाले कुशोंको ईशानदिशाकी तरफ फेंकदेवे । फिर दोनों पवित्रोंद्वारा प्रणीताके जलको ऊपरके तरफ तीन बार उछालके पुनः पवित्रसहित दक्षिण हाथसे प्रणीताके जलको तीन बार प्रोक्षणी पात्रमें छोडदेना । तब दोनों हाथकी अलग अलग अनामिका और अंगुष्ठद्वारा उत्तराग्र पवित्रकके दोनों छोरोंको पकडकर पवित्रकके बीच भागसे प्रोक्षणीका जल तीन बार पृथ्वीपर छिडकके, पवित्रोंको प्रोक्षणीपात्रमें रखदेवे और प्रोक्षणीपात्रको दहिने हाथसे उठाकर बायें हाथमें रख, दक्षिण हाथके अनामिका और अंगुष्ठसे प्रोक्षणीके

उर्द्ध्वं उत्क्षिप्य प्रणीताजलेन प्रोक्षणीमभिषिच्य तज्जलेन यथासादितं द्रव्यं प्रत्येकं सकृत्प्रोक्ष्य पवित्रशेषजलसहितपात्रम अग्निप्रणीतयोर्मध्ये निधाय आज्यस्थाल्याम आज्यं निरूप्य चरुस्थाल्यां तण्डुलान्त्रिःक्षिप्य पृथूदकपात्राज्जलमानीय तेन तण्डुलान त्रिः प्रक्षाल्य तत्र प्रणीतोदकम दुग्धञ्च प्रक्षिप्य स्वयं चरुम ब्रह्मणा च आज्यम् गृहीत्वा प्रदक्षिणी-कृत्य अग्निपूर्वेण नीत्वा दक्षिणत आज्यम उत्तरतः पायसं चरुम् श्रप-णार्थम् युगपत् अग्नौ निधाय । उल्मुकं सहविष्काग्नेः प्रदक्षिणम भ्राम-यित्वा अग्नौ क्षिपेत् । ततः स्रुवम अवाङ्मुखम् अग्नौ त्रिः प्रतप्य उत्तानम् स्रुवम् संमार्जनकुशैः अग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः संमार्ज्य प्रणी तोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्य स्वस्य दक्षिणतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः पाके वृत्ते स्वयम आज्यम् उद्वास्य चरोः प्रदक्षिणं कारयित्वा पूर्वे कुछ जलको ऊपरके तरफ छिडके। फिर प्रणीताके जलसे प्रोक्षणीको सींचकर, पुनः प्रोक्षणीके जलसे पवित्रोंद्वारा स्थापन क्रमसे आज्यस्थाली आदि हर एक वस्तुको एक एक वार सभीको संचित करके, अग्नि और प्रणीताके बीच असंचर स्थानमें प्रोक्षणीपात्रको रख देवे, तब आज्यस्थालीमें घृत छोडदेवे और चरुस्थालीमें खीर बनानेवाला चावल छोडकर पृथूदक पात्रमेंसे जल ले चावलोंको तीनवार सुन्दर धोयकर, फिर इसमें प्रणीतामेंसे जल और दूध जो अलग धरा है खीर पकनेके अंदाजसे छोडदेवे । तत्पश्चात् चारुपात्रको वर और आज्यस्थालीको ब्रह्मा उठाकर अग्निके पूर्वसे घुमातेहुये दोनों एकसाथही अग्निपर दक्षिणभागमें घृत और घृतसे उत्तरमें चरु पकनेको धरदेवे । फिर जलतेहुये कुशोंको पकतेहुये घृत और चरु दोनोंहीके ऊपर एकसाथ प्रदक्षिण घुमाकर अग्निमें जलतेहुये कुशोंको छोडदेवे । तत्पश्चात् स्रुवाका मुख नीचेकर अग्निमें तीनवार तपावे, फिर स्रुवाका ऊपर मुख करके संमार्जन कुशोंके अग्रभागसे भीतर और मूलसे वाहर स्रुवाका संमार्जन करके, प्रणीताके जलसे स्रुवाका अभ्युक्षण कर पुनः अग्निपर तीनवार तपाय, अपने दक्षिणभागमें कुशोंपर स्रुवाको धर देवे । फिर खीर और घृत ठीक पकजाने

णानीय अग्निपश्चिमे प्रणीतोत्तरतः निधाय ततः पायसचरुम् उद्वास्य आज्यपश्चिमेन नीत्वा आज्यस्योत्तरतो निधाय प्रोक्षणीतः पवित्रे समानीय आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम्। पवित्रे प्रोक्षण्यां निधाय आज्यम् अवेक्ष्य सति अपद्रव्ये तन्निरस्य प्रोक्षणीत्रिरुत्पवनं विधाय। उपयमन-कुशान् वामहस्तेनादाय उत्तिष्ठन् प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा घृताक्ताः समिधस्तिस्रः तूष्णीं अग्नौ क्षिपेत्॥ ततः उपविश्य सपवित्रहस्तेन प्रोक्षणीजलेन प्रदक्षिणक्रमेण अग्निं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रोक्षणीपात्रे धृत्त्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवे-णाज्याहुतीर्जुहुयात्॥ तत्राघारादारभ्य आहुतिचतुष्टये तत्तदाहु-त्यनन्तरं स्रुवावस्थितघृतशेषं प्रोक्षण्यां क्षिपेत्। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम (इति मनसा)॥ १॥ ॐ इन्द्राय

पर वर आज्यस्थालीको उतार चरुके बांयेंतरफसे पूर्वतरफ घुमाय अग्निके पश्चिमसे लाकर प्रणीताके उत्तरभागमें धरदेवे। पुनः पायस चरुकोभी उतार आज्यस्थालीके पश्चिम तरफसे घुमाताहुआ लेजाकर घृतके उत्तरभागमें धर देवे। प्रोक्षणीपात्रसे पवित्रक उठाय उसके द्वारा आज्यस्थाली घृतको तीनवार ऊपरके तरफ उछाल, फिर प्रोक्षणीमें पवित्रक रख, घृतको देखें, उसमें अन्यवस्तु हो तो उसको निकाल देवे। फिर प्रोक्षणीके जलको तीनवार उत्पवन कर, वेणीरूप उपयमनकुशोंको बायें हाथमें ले खडाहो प्रजापतिका मनसे ध्यान करता हुआ, घृतमें डुबोई तीन समिधा, मौन हो एक एक करके अग्निमें छोड देवे। फिर बैठ, पवित्रसहित दक्षिणहस्त द्वारा प्रोक्षणीके जलको अग्निके चारों तरफ गिराता हुआ घुमाकर, प्रोक्षणीमें पवित्रक धरदेवे। फिर कुशद्वारा ब्रह्मासे अन्वारब्ध हुआ वर दहिने पांवके घोंट्को भूमिमें लगाये हुये, खूब जलते हुये अग्निमें स्रुवाद्वारा घृतकी आघारादि आहुति देवे। पहिली चार आहुतियोंमें स्रुवाके शेषघृतबिन्दुको प्रोक्षणीपात्रमें गिराता जावे और सर्वत्र त्यागवाक्य वर स्वयं बोले। विना बोले मनहीमें वाक्य कहकर प्रजापतिकी पहिली आहुति देवे। यह 'ॐ प्रजापतये' से

स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम ॥ २ ॥ इत्याघारौ ॥ ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥ ॐ सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम ॥४॥ इत्याज्यभागौ । तत आज्याहुतिपञ्चकं स्थालीपाकाहुतौ च प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥ ततो ब्रह्मणान्वारम्भं विना ॐ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम उपधावामि यास्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ १ ॥ ॐ वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम उपधावामि यास्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । इदं वायवे न मम ॥ २ ॥ ॐ सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम उपधावामि यास्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यैनाशयस्वाहा इदं सूर्याय न मम ॥ ३ ॥ ॐ चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम उपधावामि यास्यै गृहघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । इदं चन्द्राय न मम ॥ ४ ॥ ॐ गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम उपधावामि यास्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । इदं गन्धर्वाय न मम ॥५॥ ततो घृताऽभिघारितस्थालीपाकेन स्रुवाद्वारा ब्राह्मणाऽन्वारब्धो जुहुयात् । ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ॥ ६ ॥ (इति मनसा) इति हुतशेषस्य स्रुवाऽवस्थितचरोः घृतस्य च

दो आघार और ' ॐ अग्नये० ' से दो आज्यभाग चारों आहुतियोंके देने बाद आगेकी ॐ अग्नेप्रायश्चित्ते०' इत्यादि पांच घृतकी आहुति ब्रह्माके अन्वारब्ध विनाही देवे । परञ्च स्रुवामें बचे घृतबिन्दुओंको इन पांचों आहुतियोंमें प्रत्येकके अन्तमें प्रोक्षणीमें छोडता जावे पुनः कुशोंद्वारा ब्रह्माका स्पर्श कियेहुये वर आगे कही सब आहुति देवे । घृत मिले हुये चरुको स्रुवामें ले, मनमें 'ॐ प्रजापतये०' इस वाक्यको कहकर प्रजापतिकी छठवीं एक आहुति अग्निमें

प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । अतोऽग्रे आहुतिनवके हुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । अयमपि होमो ब्रह्मणाऽन्वारब्धकर्तृकः । तत आज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ॥ १ ॥ तत आज्येन ॐ भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ १ ॥ ॐ भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम ॥ २ ॥ ॐ स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय न मम ॥ ३ ॥ एता महाव्याहृतयः ॐ त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषाᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा (य० अ० २१ मंत्र ३)। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ १ ॥ ॐ सत्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठोअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्वनो वरुणᳬ रराणो वीहि मृडीकᳬ सुहवोनऽएधि स्वाहा (य० अ० २१ मं० ४)। इदमग्नये न मम ॥ २ ॥ ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्वमित्वमया असि । अयानोयज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजᳬस्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ ३ ॥ ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ४ ॥ ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳬ श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा (य० अ० १२ मन्त्र १२)। इदं वरुणाय न मम ॥ ५ ॥ एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञका आहुतयः ।

छोडदेवे और इस आहुतिके बचे हुये चरु तथा घृतका प्रोक्षणीमें छोड देवे ॥ तदनन्दर आज्य और चरु दोनोंसे 'ॐ अग्नये स्वि०' इससे स्विष्टकृत् आहुति करे । तत्पश्चात् तीन व्याहृति और पांच सर्वप्रायश्चित्तकी ये सब आठ और

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ॥ १ ॥ इति मनसा । इदं प्राजापत्यम् । इति नवाहुतयः । ततः संस्रवं प्राश्य आचम्य ब्रह्मणे पूर्णपात्रं दद्यात् । ॐ अस्यां रात्रौ कृतैतच्चतुर्थीहोमकर्म्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थम् इदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतम् अमुकगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय पूर्णपात्रदक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे इति दक्षिणां दद्यात् ॐ स्वस्ति इति प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मग्रन्थिविमोकः । ततः ॐ सुमित्रिया नऽआप ऽओषधयः सन्तु । इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन शिरः संमृज्य । ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयन्द्विष्मः । (य० अ० ३८ मंत्र २३) इत्यैशान्यां दिशि प्रणीतां न्युब्जीकुर्यात् । ततः स्तरणक्रमेण बर्हिः उत्थाप्य घृताक्तं कृत्वा हस्तेनैव जुहुयात् । ॐ देवागातुविदोगातुंवित्त्वागातुमित । मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञ७ स्वाहा वातेधाः स्वाहा (य० अ० ८ मं० २१) इदं वाताय न मम ॥ ततः पृथूदकपात्रस्थजलमादाय आम्रपल्लवेन

एक प्रजापतिके लिये. ये नौ आहुति घृतसे करके स्रुवावस्थित हुतशेष घृतबिन्दु प्रोक्षणीमें गिराता जावे ॥ तदनन्तर संस्रवप्राशन कर, हाथ धो, आचमन करके, हाथमें कुश जल सहित पूर्णपात्र ले ' ॐ अस्यां रात्रौ० ' इत्यादि पढ ब्रह्माको दक्षिणा पूर्णपात्र देवे । और ब्रह्मा 'ॐ स्वस्ति' कहकर स्वीकार करलेवे । फिर ब्रह्मग्रंथि खोलकर 'ॐ सुमित्रियान० ' मन्त्र पढके पवित्रोंद्वारा प्रणीताके जलका शिरपर मार्जन करके शेष जल सहित प्रणीताको ' ॐ दुर्मित्रिया०' मन्त्र पढ ईशानकोणमें औंधा कर देवे । फिर स्तरण किये क्रमसे कुशोंको उठाय, घी लगाय खडे होकर ' ॐ देवागातु० ' मन्त्र पढ हाथसेही होम करदेवे । तत्पश्चात् पृथूदकपात्रमेंसे जल ले आमके पत्तोंद्वारा वर अपनी

मूर्ध्नि वरः वधूम् अभिषिञ्चति । तत्र मन्त्रः—ॐ या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नी तत एनां करोमि सा जीर्यत्वं मया सह श्री अमुकी देवी । (अत्र वधूनामोच्चारणं प्रथमान्तं वरेण कर्तव्यम् यथा गङ्गादेवी इति) ततो वधूं स्थालीपाकं प्राशयति वरः—ॐ प्राणैस्ते प्राणान्सन्दधामि १ ॥ ॐ अस्थिभिस्ते अस्थीनि सन्दधामि २ ॥ ॐ मांसैस्ते मांसानि सन्दधामि ३ ॥ ॐ त्वचा ते त्वच७ सन्दधामि ४ ॥ इति मन्त्रचतुष्टयेन प्रतिमन्त्रान्तेऽन्नम् प्राशयेत् । ततो वधूहृदयं स्पृशन् वरः पठेत्—ॐ यत्तेसुशीमेहृदयंदिविचन्द्रमसिश्रितम् । वेदाहंतन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेमशरदः शत७शृणुयामशरदः शतम् इति ॥ अथ कङ्कणमोक्षणादीनि तथा ब्रह्मग्रन्थिविमोकादीनि च आचारप्राप्तानि कुर्यात् । कङ्कणमोचने मन्त्रः

कङ्कणं मोचयाम्यद्य रक्षां वै न कदाचन ।
मयि रक्षां स्थिरां दत्वा स्वस्थानं गच्छ कङ्कण ॥

ततः उत्थाय वधूदक्षिणहस्तस्पृष्टस्रुवेण घृतफलपुष्पपूर्णेन पूर्णाहुतिं कुर्यात्--ॐ मूर्द्धानंदिवोऽअरतिम्पृथिव्यावैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविᳬ सम्म्राजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्ज--

वधूके शिरपर 'ॐ यातेपति०' मन्त्र पढके अभिषेक करे और मन्त्रके, अन्तमें वधूका देवीशब्दान्त नामोच्चारण करे। विधानसे भिन्न प्रसंगमें पत्नीका नाम लेना निषिद्ध है । फिर होमसे शेष बचे चरुमेंसे चार ग्रास'ॐप्राणैस्ते०' इत्यादि चार मन्त्रोंसे वर अपने ही हाथसे पत्नीको खिलावे फिर वधूके हृदयका स्पर्श कियेहुये 'ॐ यत्तेसुशीमे०' मन्त्रको पढे । फिर 'कंकणं मो०' इस मन्त्रको पढके प्रथम बांधे कङ्कणका मोचन करे । औरभी कुलाचार प्राप्त कर्मोंको करके तब फल, पुष्प और घृतसे भरे हुये स्रुवाको वधूके दहिने हाथसे स्पर्श कराये हुये लेकर, वधूसहित खडे होकर 'ॐ मूर्द्धानं०' मन्त्रसे पूर्णाहुति करके अपने अपने स्थानोंपर बैठ जावें ।

नयन्तदेवाꣳस्वाहा । (य० अ० ३३ मन्त्र ८) इति मंत्रेण पूर्णाहुतिः । ततः उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ॐ त्र्यायुषंजमदग्नेः इति ललाटे । ॐ कश्यपस्यत्र्यायुषम् । इति ग्रीवायाम् । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नोअस्तुत्र्यायुषम् ॥ इति हृदये । (य० अ० ३ मन्त्र ६२) एवं वध्वा अपि त्र्यायुषं कुर्यात् । तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः । तत आचार्याय वरां दक्षिणां दद्यात् । यथा—ॐ अद्यकृतैतच्चतुर्थीहोमकर्मपूर्णताप्राप्तये यथाशक्ति दक्षिणां अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे । इति ॥ भूयसीं दक्षिणाश्च दद्यात् । यथा—अस्मिन् चतुर्थीहोमकर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च दातुमहमुत्सृजे । इति ॥ ततो हस्ते जलं गृहीत्वा अनेन चतुर्थीहोमकर्मणा कर्माङ्गदेवता प्रजापतिः प्रीयतां न मम । इति जलमुत्सृजेत् । ततो यदा गृहाभ्यन्तरे गणपत्याद्यावाहनादिकं कृतश्चेत्तदा हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा—

ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

तदनन्तर स्रुवाद्वारा होमका भस्म लेके दहिने हाथकी अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे भस्मको 'ओंत्र्यायुषं०' से ललाटमें, 'ओं कश्यप०' से कण्ठमें, 'ओं यद्देवे०' से दहिने कन्धेमें 'ओं तन्नोअस्तु०' से हृदयमें लगावे । इसी क्रमसे वधूके ललाटादिमें भी 'भस्म लगावे, तब 'तन्नो' के स्थानमें 'तत्ते' ऐसा कहे । फिर हाथमें कुशजलादि ले 'ओं अद्य कृ०' इत्यादि कह आचार्य को दक्षिणा देवे, और लोगोंको भी भूयसी दक्षिणा 'अस्मिन् च०' इत्यादि कहकर संकल्प करके बांट देवे । फिर हाथमें जल ले 'अनेन चतु०' इस वाक्यको कहकर जल छोड देवे । यदि मण्डपसे भिन्न स्थानमें घरके भीतर

ओ गणपत्याद्यत्रावाहिता देवाः स्वस्थानं गच्छन्तु। इत्यक्षतान् प्रक्षिपेत् ॥ अथवा विवाहमण्डपे एव कृतं तदा तु गणेशादिविसर्जनं न कर्तव्यम्। इति ॥ अथ प्रार्थना-

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या व्रतपूजाक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ १ ॥

कर्मसम्पूर्णकामः विष्णुं स्मरेत् श्रीविष्णुः श्रीविष्णुः श्रीविष्णुः ॥ तत उत्तिष्ठेयाताम् ॥ इति ॥

इति श्रीचिकित्सकचूडामणि पं० ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठि-
विरचितविवाहसोपाङ्गविधौ चतुर्थीहोमकर्मप्रयोगः ॥

अथ मण्डपोद्वासनम्।

तत्रादौ मुहूर्तविचारः—"युग्मे घस्रे षष्ठहीने च पञ्चसप्ताहे स्यान्मण्डपोद्वासनं सत्" इति मुहूर्तचिन्तामणौ। अथ मण्डपोद्वासनप्रयोगः—एवं विचारिते ज्योतिःशास्त्रोक्तमण्डपोद्वासनशुभमुहूर्त्तदिने वरपिता कन्यापिता च स्वस्वगृहे सुस्नातः शुद्धे वाससी परिधाय कृतनित्यक्रियः मण्डपाभ्यन्तरे पूर्वस्थापित-

चतुर्थी कर्म होनेमें कलश गणेशादिका स्थापन किया हो तो हाथमें अक्षत ले 'ओं यान्तु दे०' इत्यादि पढ सभोंपर अक्षत छिडककर विसर्जन करदेवे। यदि मण्डपमें हुआ हो तो इस समय विसर्जन नहीं होगा ॥ फिर हाथ जोड 'ओं यस्य०' इस मन्त्रको पढ 'श्रीविष्णुः३' ऐसा स्मरणकर पूजास्थानसे वर वधू उठें ॥

इति बालबोधिनीटीकायां चतुर्थीहोमप्रयोगः॥

मण्डपोद्वासनप्रयोग—इसके करनेका शुभदिन मुहूर्तचिन्तामणिमें कहा है कि विवाहके दिनसे छठवां दिन छोडके बाकी सम दिनोंमें तथा विषममें केवल पांचवें और सातवेंही दिन ज्योतिःशास्त्रके अनुसार शुभ मुहूर्त होनेसे देवताओंका उत्तर पूजन कर विसर्जन और मण्डपका उद्वासन इस प्रकार करै कि, वरका पिता तथा कन्याका पिता अपने अपने घरोंमें स्नान कर, पवित्र वस्त्रके

गणेशकलशादिसन्निधौ शुभासने पूर्वाभिमुख उपविश्य स्वदक्षिणतो ग्रन्थिबन्धनयुतां पत्नीश्चोपवेश्य तथा वरपिता पुत्रम् (वधूप्रवेशे संजाते पुत्रदक्षिणे पुत्रेण ग्रन्थिबन्धनयुतां वधूमपि) ' कन्यापिताऽपि वरगृहं न गता कन्या चेत् तदा कन्यामपि पत्न्या दक्षिणे उपवेश्य। तत आचम्य ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॥ इति पत्न्यादिसहितमात्मानं पूजासंभारांश्च कुशजलैरासिञ्चेत्। ततो हस्ते द्रव्याक्षतपुष्पाण्यादाय—

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥ १॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेत् शृणुयादपि॥ २॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥ ३॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ।
अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥ ४॥

जोडे पहिन नित्यकृत्यसे निवृत्त हो मण्डपमें आय पूर्वस्थापित गणेशादिके समीप आसनपर स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ अपने दहिने वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित गांठ बंधी हुई पत्नीको और पत्नीके दहिने वरपिता पुत्रको (यदि वधू प्रवेश हुआ हो तो, पुत्रसे दहिने गांठ बंधी हुई वधूकोभी) बैठावे॥ और कन्यापिताभी इसी प्रकार अपने घरके मण्डपमें जाय आसनपर पूर्वाभिमुख सपत्नीक बैठ, यदि कन्या वरगृह नहीं गई, हो तो उससेभी माताके दहिने बैठावे॥ तत्पश्चात्. जलसे स्वयं तीन आचमन कर 'ॐ अपवित्रः' इत्यादि कह कुश द्वारा पूजनकी सामग्री और पत्न्यादिसहित अपने सब लोगोंपर जल छिडके। पुनः हाथोंमें द्रव्य, अक्षत और पुष्प ले 'ॐ सुमुखश्चैक०' इन श्लोकादि-

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यंबिके गौरि नारायणि नमोस्तु ते ॥ ५ ॥

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । इति पुष्पादिकं गणेशाग्रे क्षिप्त्वा कुशजलान्यादाय ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः मासादिक-मुच्चार्य अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा (वरपिता) अमुकगोत्रस्य मम पुत्रस्य अमुकशर्मणः (कन्यापिता) अमुकगोत्रोत्पन्नायाः मम अमुकी कन्यायाः विवाहाङ्गभूतमण्डपोद्वासनकर्मणि विवाहाङ्गभूतकर्माभ्यन्तरे गणपत्याद्यावाहितानां समस्तदेवानां यथोपस्थितोपचारैः उत्तरपूजन-पूर्वकं सर्वेषां विसर्जनम् तथा मण्डपोद्वासनञ्च कर्माहं करिष्ये इति ॥ ततो यजमानः यथायथास्थाने पूर्वस्थापितान् गणपत्यादिसर्वदेवान् तथा मातृकादींश्च नाममन्त्रैः यथावकाशं पृथक् पृथक् खण्डशो वा अथवा एकतन्त्रेण सर्वेषामुत्तरपूजनं कुर्यात् । पूजनं यथा--स्नानीयम् जलम् समर्पयामि । चन्दनाद्यनुलेपनं समर्पयामि । गौर्य्यादिभ्यो नमः सिन्दूरादिमङ्गलद्रव्याणि समर्पयामि । अक्षतान् समर्पयामि । पुष्पाणि माल्यानि च समर्पयामि । दूर्वाङ्कुरान् गणपतये नमः समर्पयामि । धूपम् आघ्रापयामि । दीपम् दर्शयामि । (हस्तौ प्रक्षाल्य) नैवेद्यं यथा भागं विभज्य निवेदयामि । मध्ये पानीयम् उत्तरापोशनम् हस्तप्रक्षाल-

कोंको पढ पुष्पादि गणेशपर छोडदेवे । फिर हाथमें कुशजलादि लेकर ' ॐ विष्णुः० ' इत्यादि मासादिकोंका उच्चारण कर वरपिता, तथा कन्यापिताके पृथक् पृथक् संकल्पमें कहे वाक्योंको कहकर प्रतिज्ञा संकल्प करे । तत्पश्चात् यजमान जिन जिन स्थानोंमें पहिले गणेशादि देवताओं तथा मातृकाओंका स्थापन पूजनादि किया है और विसर्जन नहीं हुआ है, उन सबोंका यथाव-काश अलग अलग वा खण्ड खण्ड अथवा एकही तन्त्रमें नाम मन्त्रों द्वारा जैसा मूलमें लिखा है सर्व्वोपचार द्वारा अथवा

नीयम् मुखप्रक्षालनीयं जलम् समर्पयामि । ताम्बूलानि पूगीफलानि समर्पयामि । दक्षिणां यथाभागं विभज्य समर्पयामि । एवं संपूजयेत् ॥

अथ पूर्वावाहितानां महागणपत्यादीनाम् आवाहनक्रमेण नामानि लिख्यन्ते । यथा—गणेशपिण्डे—ॐ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ॥ गोमयनिर्मितायाम् गौर्याम्—ॐ श्रीगौर्यै नमः ॥ मङ्गलकलशे—ॐ मङ्गलकलशाधिष्ठिताय गङ्गादितीर्थसहिताय अपांपतये वरुणाय नमः ॥ कलशसमीपे नवकोष्ठात्मके पीठे पर्णपुटे वा—ॐ अधिप्रत्यधिदेवसहितेभ्यो सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः ॥ मण्डपभूमौ—ॐ यज्ञमण्डपभूम्यै नमः ॥ मण्डपस्थले- ॐ ब्राह्मयादिस्थलमातृकाभ्यो नमः ॥ मण्डपे—ॐ नन्दिन्यादिमण्डपमातृकाभ्यो नमः ॥ मण्डपे अवलम्बितासु तृणनिर्मितासु पञ्चपिञ्जुलिकासु—ॐ वासिष्ठ्यादितृणमातृकाभ्यो नमः ॥ आम्रपल्लवादिनिर्मिते मण्डपादौ परिलंबिते तोरणे--ॐ धातृविधातृतोरणमातृकाभ्यां नमः ॥ ततो द्वारस्य दक्षिणे वामे च पार्श्वे भित्तौ—ॐ लक्ष्म्यादिद्वारमातृकाभ्यो नमः ॥ ततो गृहाभ्यन्तरे भित्तौ—ॐ गणेशेनाधिकाभ्यो गौर्यादिषोडशमातृकाभ्यो नमः ॥ तत्रैव षोडशमातृकासमीपभित्तौ—ॐ श्रीआदिघृतमातृकाभ्यो नमः ॥ ॐ दुर्गायै नमः । ॐ कीर्त्यादिगृहमातृकाभ्यो नमः । ॐ मोदादिविघ्नमातृकाभ्यो नमः । ॐ मत्स्यादिजलमातृकाभ्यो नमः । ॐ क्षमादिआभ्यन्तरमातृकाभ्यो नमः । ततो भाण्डेषु निमन्त्रितस्वकुलदेवादीनाम् । प्रथमभाण्डे—ॐ स्वकुलदेवादिभ्यो निमन्त्रितेभ्योनमः ॥ द्वितीयभाण्डे—ॐ कल्याण्यादिचराचरभूतान्तेभ्यो निमन्त्रितेभ्योनमः ॥ तृतीयभाण्डे—ॐ समस्तपितृभ्यो निमन्त्रितेभ्यो नमः । एतैर्नाममन्त्रैः सम्पूज्य कर्पूरनीराजनं कुर्यात् ।

तत्र मन्त्रः—कदलीगर्भसम्भूतकर्पूरञ्च प्रदीपितम्।

आरार्तिकमहं कुर्वे प्रीयन्तां सर्वदेवताः॥

ॐ सर्वेभ्योऽत्र पूजितेभ्यो कर्पूरनीराजनं समर्पयामि।

ततो हस्ताभ्यां पुष्पाण्यादाय—

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।

पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृह्यन्तां सर्वदेवताः।

ॐ सर्वेभ्योऽत्र गणपत्यादिपूजितेभ्यो देवेभ्यो नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। ततो हस्ते जलमादाय ॐ अनया उत्तरपूजया श्रीमन्महागणपत्यादिसर्वे देवाः देव्यादयश्च प्रीयन्तां न मम। इति जलमुत्सृज्य प्रार्थयेत्।

मन्त्रतन्त्रक्रियाहीनं विधिहीनञ्च यत्कृतम्।

क्षम्यन्तां तत्तु भो देवाः प्रसीदन्तु ममोपरि॥ १॥

भो गणपत्यादिदेवताः मम सकुटुम्बस्य आयुष्कर्तारःक्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारः पुष्टिकर्तारस्तुष्टिकर्तारो वरदातारो भवत। इति। ततो हस्तेऽक्षतानादाय विसर्जनमन्त्रान् पठित्वा सर्वत्रैवाक्षतान् प्रक्षिप्य गणपत्यादिकान् विसृजेत्। तत्र मन्त्राः—ॐ यज्ञयज्ञङ्गच्छयज्ञपतिङ्गच्छस्वांयोनिङ्गच्छस्वाहा। एषतेयज्ञोयज्ञपतेसहसूक्तवाकः सर्व्ववीरस्तञ्जुषस्वस्वाहा (य० अ० ८ मंत्र २२)

ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।

इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥

ॐ गणपतिसहिताः समस्तमातरः क्षमध्वम्। भो विवाहाङ्गभूतसर्वकर्मण्यावाहिताः गणपत्यादयो देवाः स्वस्थानं गच्छन्तु

पञ्चोपचारसे उत्तर पूजन करके अन्तमें प्रार्थना 'मन्त्रतन्त्र०' इत्यादिसे वरदातारो भवत' पर्यंत पूरा करे। फिर हाथमें अक्षतको ले 'ॐ यज्ञयज्ञं०' से 'स्वस्थानं गच्छन्तु' पर्यन्त पढ सभी देवस्थानोंमें अक्षतोंका प्रक्षेपण करता हुआ,

इति ॥ ततो हस्ते जलमादाय ॐ अनेन सर्वाङ्गपूर्णब्राह्मविधिना कृत (वरपिता) मम पुत्रस्य (कन्यापिता) मम कन्यायाः विवाहकर्मणा कर्माङ्गदेवता श्रीभगवान् प्रजापतिः प्रीयतां न मम । इति जलमुत्सृज्य हस्ते द्रव्याक्षतकुशादीन्यादाय—ॐअद्य पूर्व्वोच्चारितशुभदिने अमुकगोत्रः अमुकशर्म्मा मम (वरपिता) अमुकनामपुत्रस्य (कन्यापिता) अमुकीकन्याया विवाहाङ्गभूतमण्डपोद्वासनकर्मणः पूर्णतासिद्ध्यर्थं यथाशक्ति दक्षिणां अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे । इति दक्षिणां दद्यात् । ततो ब्राह्मणः " स्वस्ति " इत्युक्त्वा दक्षिणां स्वीकृत्य यजमानललाटे तिलकं कुर्यात् । तत्र मन्त्रौ– ॐ युञ्जन्तिब्ब्रध्नमरुषञ्चरन्तंपरितस्त्थुषः । रोचन्तेरोचनादिवि ॥ १ ॥ युञ्जन्त्यस्यकाम्म्याहरीव्विपक्षसारथे । शोणाधृष्ष्णूनृवाहसा ॥ २ ॥ (य० अ० २३ मंत्र ५, ६) ततो यजमानः प्रार्थयेत्–

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

कर्मसंपूर्णकामो विष्णुं स्मरेत् । श्रीविष्णुः श्रीविष्णुः श्रीविष्णुः ।

महागणपत्यादि सभी देवदेवियोंको विसर्जन करदेवे । तदनन्तर हाथमें जल ले 'ॐ अनेन सर्वाङ्ग' इत्यादि वाक्यमें (वरपिता "मम पुत्रस्य") और (कन्यापिता "मम कन्यायाः") ऐसे कहतेहुये 'प्रीयन्तां न मम' पर्यन्त वाक्य पूरा कह पृथ्वीपर जल छोड देवे ॥ पुनः हाथमें द्रव्य कुशादि लेकर 'ॐ अद्य०' इत्यादि वरपिता तथा कन्यापिता अपने अपने कहनेके अनुसार मूलमेंसे वाक्य कह गोत्रादिकोंका उच्चारण करताहुआ 'संप्रददे' पर्यन्त संकल्प कर ब्राह्मणको दक्षिणा देवे और ब्राह्मण 'स्वस्ति' ऐसा कह दक्षिणा ले यजमानके मस्तकमें 'ॐ युञ्जन्ति०' इन दो मन्त्रोंको पढताहुआ तिलक लगादेवे । तत्पश्चात् यजमान 'ॐ प्रमादा०' से 'श्रीविष्णुः ३' पर्यन्त

इति ॥ ततो द्रव्यादिभिर्नापितादीन् संतोष्य स्त्रिया ग्रन्थिविमोकं कृत्वा आसनात् पत्न्यादिभिः सहित उत्तिष्ठत् । इति ॥ एवं देवे विसर्जिते सर्वदेवादिनिर्माल्यवस्तूनि अर्थात् गणेशगौरीपिण्डे तृणमातृपिञ्जुलिकाः मण्डपतोरणानि भित्तौ संलग्नाः समस्तमातृपिण्डिकाः मङ्गलकलशस्थपल्लवादिकम् तथैवाऽन्यान्यपि पुष्पादिपरिक्षेपणीयवस्तूनि एकस्मिन् वंशपात्रे एकत्रितानि कुर्यात् । ततो वरेण कन्यया वा सहिता माता मङ्गलगानं कुर्वतीभिः सौभाग्यवत्यादिभिः स्त्रीभिः समेता सर्ववस्तुधृतवंशपात्रम् तथा जलसहितं मङ्गलकलशश्चाग्रे कृत्वा ग्रामाद्बहिर्नदीतडागादिजलाशयम् अथवा वनवाटिकादिकं प्रति गता तत्र स्थले आलेपनसिन्दूरादिद्वारा पृथिवीं संपूज्य तत्रैव वंशपात्रस्थवस्तूनि कलशजलञ्च यथाकुलाचारं प्रक्षिप्य पुनस्तथैव मङ्गल-

पढकर प्रार्थना करे। फिर द्रव्यादिद्वारा नापितादि भृत्योंको संतुष्ट करके स्त्रीके अञ्चलसे अपने उपवस्त्रकी ग्रन्थि खोल सब कोई पूजास्थानसे उठे ॥ इसी प्रकार वर तथा कन्या इन दोनोंहीके घर सब देवताओंके विसर्जन हो जानेके पीछे संपूर्ण देवताओंकी निर्माल्य वस्तु, जैसे गणेश गौरीकी पिण्डी, तृणमातृकाओंकी पुञ्जिका, मण्डपका बंधनवार, द्वारादि भित्तोंमें चिपकाई हुई सभी मातृकाओंकी पिण्डिका, मङ्गलकलशका पञ्चपल्लवादि तथा ऐसेही और भी जो पुष्पादि बाहर प्रक्षेप्य वस्तु हों उन सभोंको एकत्रितकर एक बांसकी दौरी आदिमें धरदेवे ॥ फिर अपने अपने घरोंमें विवाह भये वर तथा कन्याको साथ लिये वर अथवा कन्याकी माता सोहागिन आदि स्त्रियोंको साथ लिये मंगलगीत गाती बाजा बजाती बांसकी दौरी और जल सहित मंगलकलशको आगे किये गांवके बाहर नदी, तालाव आदि जलाशय या वनवाटिका आदिके किसी स्थानमें जाकर, वहां आलेपन सिन्दूरादि द्वारा पृथ्वीकी पूजा कर उसी स्थानमें दौरीकी सब वस्तु और कलशका जल छोडना आदि अपने

गानं कुर्वतीभिः सर्वाभिः सहैव यथादेशाचारं गृहमागच्छेत् । इति एवमेव वरगृहे कन्यागृहे च कृत्वा स्तम्भादिकमुत्पाट्य सर्वमण्डपमुद्वासयेत् ॥

इति श्रीचिकित्सकचूडामणि पं० ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठिविरचितविवाहसोपाङ्गविधौ मण्डपोद्वासनप्रयोगः ।

अथ वधूप्रवेशः ।

(गवना इति लोके प्रसिद्धः)

तत्रादौ वधूप्रवेशशब्दार्थः--नूतनपरिणीताया वध्वाः प्रथमतः क्रियमाणो भर्तृगृहे प्रवेशो वधूप्रवेश इति ॥

देशकुलाचारके अनुसार कर्मोंको कर पुनः वैसेही गाती बजाती सभोंके साथ अपने अपने घर यथाकुल देशाचार प्रवेश करें । इसी प्रकार दोनों घरोंमें होजानेके बाद खम्भा, मण्डप आदि सभी उखाड देवे । इति बालबोधिनीटीकायां मण्डपोद्वासनप्रयोगः ॥

वधूप्रवेशशब्दका अर्थ यह है कि—विहिता नवीन वधूका पहिले पहिल अपने पतिके गृहमें प्रवेश करना वधूप्रवेश कहाता है ॥

१ अथ मानवगृह्यकर्माद्युक्तवधूप्रवेशविधानसूत्राणि स्पष्टार्थसहितानि लिख्यन्ते-ततो यथार्थं कर्मसन्निपातो ।विज्ञेयः । (मा० गृ० · पुरु० ११ खं १ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थ--यस्य कर्मणो यत्र प्रयोजनं भवेत् तस्य कर्मणः तत्रैवाऽनुष्ठानं विज्ञेयम्, अर्थात् सूत्रकाराः सूत्रग्रन्थेषु क्वचित् क्वचित् अन्यत्र कर्त्तव्यकर्मणोऽन्यत्रैवोल्लेखनं करिष्यन्ति । किन्तु कर्मकाण्डिभिः कर्मानुक्रमविधायकसूत्रप्रमाणेन आदौ सूत्रार्थमनुसन्धाय, यस्य कर्मणो यत्राऽवसरो भवेत, तस्य कर्मणो यथास्थानं तत्रैव संयोजनपूर्विकां पद्धतिं निर्माय, ततः तया पद्धत्या सर्वं संस्कारादिकर्म प्रयोक्तव्यम् । इति ॥

मानवगृह्यकर्म आदिमें कहेहुये वधूप्रवेशविधानके सूत्रोंको स्पष्टार्थसहित लिखते हैं, जिनके अनुसार वधूप्रवेशप्रयोग यहां लिखा है ॥ मानवगृह्यसूत्र प्रथम पुरुष ११ खण्डके १ सूत्रमें कहा है कि जिस कर्मका जहां प्रयोजन हो उसी अवसरमें उसका अनुष्ठान करना चाहिये । अर्थात् सूत्रकार सूत्रग्रन्थोंमें कहीं कहीं अन्यत्र करनेके कर्मोंको अन्यत्रभी कहदेते हैं परन्तु कर्मकाण्डियोंको चाहिये कि, सूत्रार्थ समझ जिस अवसरमें जो कर्म होना चाहिये उसी स्थानपर उसका प्रयोग करें, अतः पहिले पद्धति तैयारकर उसीके अनुसार सभीकर्म प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

मुहूर्त्तचिन्तामणौ तस्य मुहूर्त्तमाह—

समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले।

शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम्॥ १॥

श्लोकार्थः--विवाहदिवसादारभ्याऽष्टिदिनान्तराले, कोऽर्थः षोडशदिनमध्ये समाद्रिपञ्चाङ्कदिने समदिनानि द्वितीयचतुर्थषष्ठाऽष्टमदशमद्वादशचतुर्द्दशषोडशानि तथा विषमेषु सप्तमपञ्चमनवमेषु दिनेषु वधूप्रवेशः शुभः। परस्तात् कोऽर्थः षोडशदिवसादनन्तरं वधूप्रवेशश्चेत्तदा विषमाब्दमासदिने विषमवर्षे विषममासे विषमदिने च कार्यः अक्षवर्षादिति पञ्चमवर्षादनन्तरं विषमवर्षादिनियमोऽपि नास्ति। किन्तु दोषरहितकाले वधूप्रवेशो विधेयः॥ १॥

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले।
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः॥ २॥

वधूप्रवेशका मुहूर्त्त भी मुहूर्तचिन्तामणिमें कहा है कि—विवाहदिनसे सोलह दिनोंके भीतर पहिला, तीसरा,ग्यारहवां,तेरहवां और पन्द्रहवां दिनोंको छोड बाकी जो दूसरा, चौथा, छठा, आठवां, दशवां, बारहवां, चौदहवां और सोलहवां अर्थात् इन समदिनोंमें और विषमदिनोंमें भी जो पांचवां सातवां और नौवां इन ४ दिनोंमें भी वधूप्रवेश होना शुभ होता है। विवाह दिनसे १६ दिन बीतजानेपर, यदि ५ वर्षके भीतरही वधूका प्रवेश होवे तो विषमवर्ष, विषममास और विषमदिनोंमें ही करना। पांचवर्षभी बीतजानेसे विषमवर्षादिका भी विचार नहीं कर केवल शुभनक्षत्रादि होनेसे दोषरहित कालमें वधूप्रवेश करना चाहिये॥ १॥ और शुभ नक्षत्रादिका विचार मूलके श्लोकार्थमें नक्षत्र, तिथि, वार वधूप्रवेशमें शुभकर ग्राह्य कहा और ४, ९, १४ ये

—तथैनात्र वधूप्रवेशपद्धत्यनुकूलानि सूत्राणि यथास्थाने विन्यस्याग्रे लिखितानि।

ऊपर कहे प्रमाणानुसार यहां वधूप्रवेश पद्धतिके अनुकूल मानवगृह्यसूत्रादिके सूत्रोंको जिस अवसरमें कर्म करना उचित है क्रमके अनुसार (पुण्याहे युङ्क्ते) इत्यादि सूत्रोंको भाषार्थसहित गणपतिपूजनादि कर्मके उपरान्त टिप्पणीमें लिखा है॥

उत्तरात्रयरोहिणीति ध्रुवसंज्ञके हस्ताश्विनीपुष्याभिजितेति क्षिप्रसंज्ञके मृगशिररेवतीचित्रानुराधेति मृदुसंज्ञके श्रवणधनिष्ठामूलमघास्वातीति नक्षत्रेषु तथा रिक्ता ४, ९, १४ तिथिभौमरविवारव्यतिरिक्तेषु वधूप्रवेशः सन् ॥ बुधेऽपि नेष्टः इत्यपरैरुक्तः । इति ॥

अथ गृह्यसूत्रोक्तविधिना---

वधूप्रवेशप्रयोगः ।

विवाहानन्तरं वधूप्रवेशो यदा मण्डपोद्वासनात्प्रागेव भवेत् तदा विवाहमण्डप एव पूर्वावाहितानां गणेशादिपूजनपूर्वकं वधूसहितो वरः कर्मारभेत् । यदि मण्डपोद्वासनान्ते भवेत् तदा त्वङ्गणादिगोमयोपलिप्तायां भूमौ पूजनादिकं कुर्य्यात् ॥ तद्यथा--वधूवरौ तैलाद्युद्वर्त्तनपूर्वकं कुलदेशाचारं यथा तथा कृतमङ्गलस्नानौ माङ्गलिकवस्त्राभरणैः स्वलंकृतौ पूजास्थानमागत्य पूर्वाभिमुखौ शुभासने स्थितौ यथाचारं लाक्षारसा-

रिक्ता तिथि, एवं मंगल, रवि और किसी किसी आचार्यके मतमें बुधवार भी वर्जित किया है, इत्यादि विचार लेना ॥ २ ॥

अब मानवगृह्यसूत्रादिमें कहे विधानोंसे वधूप्रवेशप्रयोग लिखते हैं । विवाह होनेके पीछे यदि वधूप्रवेश मंडपोद्वासनके पूर्वही होवे तो विवाहमण्डपहीमें पूर्वावाहित गणेशादिका पूजन करकेही वधूसहित वर कर्मोंका आरम्भ करे और मण्डपोद्वासन होजानेके पीछे यदि वधूप्रवेश कर्म होवे तो गोमयसे लिपीहुई अङ्गणादि किसी शुभस्थानकी भूमिमें वधूप्रवेशाङ्ग पूजनादि कर्मोंको करे ॥ सो इस प्रकार है कि- जैसा अपने कुल और देशका आचार हो उसीके अनुसार वधू तथा वर उबटन, तैल लगाय, मङ्गलस्नान कर सुन्दर वस्त्र आभूषणादिसे समलंकृत हो, पूजास्थानमें आकर पूर्वाभिमुख शुभासनपर दोनों ही

द्भिः पादरञ्जनादिकं कारयित्वा गणेशावाहनादिकं कर्म कुर्यात् । अथ गणेशादिपूजनम्—स्वस्य दक्षिणोपविष्टया ग्रन्थिबन्धनोपेतया पत्न्या युक्तोपविष्टः वरः आचम्य कुशानीतजलैः—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १ ॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु । इति पत्न्या सहितमात्मानं सर्वपूजासम्भारांश्च अभिषिच्य द्वावपि गणपतिस्मरणं कुर्यातम् । द्रव्याक्षतान् हस्तेनादाय—सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ १ ॥ धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ २ ॥ विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ३ ॥ अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः । सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ ४ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यंबिके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । गौर्यै नमः । कुलदेवताभ्यो नमः । ग्रामदेवताभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । इत्यक्षतादीन् प्रक्षिप्य ततो वरः कुशादीन्यादाय—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुरित्यादिमासादिकमुक्त्वा अमुकगोत्र अमुकशर्म्मा अनया वध्वा सह गार्हस्थ्यधर्माचरणेन धर्मार्थकाममोक्षसाधनपूर्वकश्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं अद्य पुण्याहे वधूप्रवेशाख्यकर्म तथा निर्विघ्नतापूर्वककर्म-

बैठ महावर आदि पांवोंमें लगवाय गणेशआवाहनादिकर्मोंको आरम्भ करे । अथ गणेश पूजनादि—गांठ बँधीहुई दहिने बैठी पत्नीके सहित वर आसनपर बैठा हुआ आचमन तीनवार कर कुशोंवो जलमें बोर उनसे ' ॐ अपवित्रः०' आदि पढता हुआ स्त्री सहित अपने ऊपर और संपूर्ण पूजन सामग्रियोंपर जल छिडक देवे । फिर वर वधू दोनोंही हाथोंमें द्रव्याक्षतादि ले ' ॐ सुमुखश्चै० ' आदि कह गणेश स्मरण करके अक्षतादि छोड देवें । तत्पश्चात् वर कुशजलादि हाथमें ले ' ॐ विष्णु० ' इत्यादि कहता

समाप्तिकामः आदौ गणेशगौरीकलशग्रहाणां पूजनञ्चाहं करिष्ये ॥ इति संकल्प्य गन्धादिपञ्चोपचारैः--ॐ भूम्यै नमः । इति भूमिं संपूज्य कलशस्थापनं कुर्यात् । १ भूमिस्पर्शनम्--ॐ भूरसिभूमिरस्यदितिरसिव्विश्वधायाव्विश्वस्यभुवनस्यधर्त्री । पृथिवीं यच्छपृथिवीन्दृᳪहपृथिवीम्माहिᳪसीः (य० अ० १३ मंत्र १८) ॥ २ गोमयनिर्मितां गौरीम् संस्पृश्य ॐ मानस्तोकेतनयेमानऽआयुषिमानोऽगोषुमानोऽअश्वेषुरीरिषः । मानोव्वीरान्रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वाहवामहे य० अ० १६ मंत्र १६) ॥ ३ कलशतले सप्तधान्यम् यवान् वा-ॐ धान्यमसिधिनुहिदेवान्प्राणायत्त्वोदानायत्वाव्यानायत्वा । दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान्देवोवः सविताहिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वाच्छिद्रेणपाणिनाचक्षुषेत्वामहीनाम्पयोसि (य० अ०१ मन्त्र २०) ॥ ४ धान्योपरि कलशम्--धातुजं मृण्मयं वा ॐ आजिघ्रकलशम्मह्यात्वाव्विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्ज्जानिवर्त्तस्वसानः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारापयस्वतीपुनर्म्माव्विशताद्रयिः (य० अ०८ मन्त्र ४२) ॥ ५ कलशे जलम्--ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसिव्वरुणस्यस्कम्भसर्ज्जनीस्त्थोव्वरुणस्यऽऋतसदन्यसिव्वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद (य० अ० ४

हुआ मासादिनामोंको उच्चारणकर 'करिष्ये' पर्यन्त संकल्प बोल छोडदेवे । फिर 'ॐ भूम्यै नमः' इस नाममन्त्रसे यथोपचार भूमिका पूजन करके कलशस्थापन इस प्रकार करे कि—फिर भूमिका स्पर्श किये हुये 'ॐ भूरसि०' मन्त्र पढे । और गोमयनिर्मिता गौरीका स्पर्शकर 'ॐमानस्तोके०' कहें । एवम् 'ॐ धान्यमसि०' से कलशके नीचे सप्त धान्य वा यवा धान्यपर कलश

मंत्र ३६) ॥ ६ कलशकण्ठे रक्तवस्त्रं सूत्रं वा वेष्टयेत्—ॐ युवासुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवतिजायमानः। तंधीरासः कवयउन्नयन्तिस्वाध्योमनसा देवयन्तः॥ ७ कलशे गन्धम्—चन्दनादिपरिलेपनञ्च। ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरी सर्व्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥ ८ कलशे सर्वौषधीः—ॐ याऽओषधीः पूर्व्वा जातादेवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा। मनैनुबभ्रूणामह ꣳशतन्धामानिसप्तच (य० १२ मन्त्र ७५) ॥ ९ कलशे सप्तमृदः—ॐ स्योनापृथिविनो भवानृक्षरानिवेशनी। यच्छान ꣳ शर्म्मसप्रथाः ꣳ(य० अ० ३६ मन्त्र १३)॥१० कलशे दूर्वाङ्कुरान्—ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवानोदूर्व्वेप्प्रतनुसहस्रेणशतेनच (य० अ० १३ मं० २०) ॥११ कलशे पूगीफलम्—ॐ याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पायाश्चपुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्तानोमुञ्चन्त्वꣳहस ꣳ (य०अ०१२ मं० ८९) ॥ १२ कलशे पञ्चरत्नानि ॐ परिवाजपातिःकविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानिदाशुषे ॥ (य० अ०११ मन्त्र २५) १३ कलशे हिरण्यम् ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रेभूतस्यजातः पतिरेकऽआसीत्। सदाधारपृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मैदेवायहविषाविधेम य०अ०१३ मं० ४॥१४कलशे

ओं आजिघ्र०' से। कलशमें जल 'ओं वरुणस्यो०' से। कलशके कण्ठमें रक्तवस्त्र वा सूत्र 'ॐ युवासुवासा०' मन्त्रसे। कलशमें गन्ध और कलशपर चन्दनादि लेपन 'ॐ गन्धद्वारां०' से। कलशमें सर्वौषधी 'ॐ या औषधी०' से। सप्तमृत्तिका 'ॐ स्योना०' से। दूर्वा 'ॐ काण्डात्०' से। सुपारी 'ॐ

पञ्चपल्लवान् आम्रपल्लवं वा--ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिकेनमा नयति-कश्चन। स्वसस्त्यः श्वकः सुभद्रिकांकाम्पीलवासिनीम् ॥ १५ ॥ कलशे कुशान्--ॐ पवित्रेंस्त्थोव्वैष्ण्णव्यौसवितुर्व्वःप्प्रसवऽउत्त्पुंनाम्म्यच्छिद्रेण-पवित्रेणसूर्य्यस्यरश्म्मिभिः। तस्यतेपवित्रपतेपवित्रपूतस्ययत्कामः पुनेतच्छकेयम् ॥ १६ ॥ कलशोपरि तण्डुलपूर्णपात्रम्--ॐ पूर्णादर्व्विपरापतसुपूर्ण्णापुनरापत । व्वस्नेवव्विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्जः शतक्रतो (य० अ० ३ मंत्र ४९) ॥ १७ पूर्णपात्रोपरि घृतप्रज्वलितदीपम् ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहासूर्य्यो ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चोज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्योव्वर्च्चोज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्योज्ज्योतिः स्वाहा (य०अ० ३ मं०९)॥ ततः कलशसमीपे पुटकादावक्षतपुञ्जोपरि पूगीफलं निधाय तदुपरि गणेशमावाहयेत्। अक्षतान् गृहीत्वा- हे हेरम्ब त्वमेह्येहि अंबिकात्र्य-म्बिकात्मज। सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुः पितः॥ नागास्य नागहार त्वं गणराज चतुर्भुज। भूषितः स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपर-श्वधैः। आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थञ्च मम क्रतोः। इहागत्य गृहाण त्वं पूजां रक्ष च मे क्रतुम्॥ गणपतये नमः गणपतिं आवाहयामि॥ गोमयपिण्डे गौरीं आवाहयेत्--ॐ श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रे

या फलिनी०' से। पञ्चरत्न 'ॐ परिवाजपतिः' से। हिरण्य 'ॐहिरण्यगर्भः०' से। पञ्चपल्लव या आम्रपल्लव 'ॐ अम्बेऽअम्बिके०' से। कुशा 'ओं पवित्रेस्थो०' मन्त्रसे कलशमें छोडे। कलशपर तण्डुलपूर्णपात्र रखना ओंपूर्णाद०' से। पूर्णपात्रपर घृतसे प्रज्वलित दीप रखना 'ओं अग्निर्ज्ज्यो०' से। फिर हाथमें अक्षतोंको लेकर कलशके समीप किसी दोना आदि पात्रमें अक्षत-पुञ्जपर धरीहुई, सुपारीपर गणेशका आवाहन 'ओं हे हेरम्ब० से। तथा

पार्श्वेनक्षत्राणिरूपमश्विनौव्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुम्मंऽइषाणसर्व्वं-
लोकम्मंऽइषाण ((य० अ० ३१ मं० २२)॥ गौर्यै नमः गौरीम्
आवाहयामि ॥ कलशे वरुणम् आवाहयेत् ॥ ॐ तत्त्वायामिब्रह्मणा-
व्वन्दमानस्तदाशास्तेयजमानोहविर्भिः। अहेडमानोव्वरुणेहबोध्यु-
रुशःसमानऽआयुः प्रमोषीः॥ (य० अ० १८ मन्त्र ४९) ॐ
अपांपतिं वरुणं कलशे आवाहयामि ॥ ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्य-
स्यबृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञ समिमन्दधातु। विश्वेदेवासऽ
इहमादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ (य० अ० २ मं १३)॥ ॐ गणपत्यादि-
देवेभ्यो नमः गणपत्यादिदेवान् प्रतिष्ठापयामि पूजयामि आसनार्थेऽक्ष-
तान् समर्पयामि ॥ इत्यक्षतान् प्रक्षिप्य सर्वोपचारैः संपूजयेत् ॐ गणे
शगौरीवरुणदेवेभ्यो नमः। इति मन्त्रेण ॥ ततः अनामिकाग्रेण कलशं
स्पृशन् अभिमन्त्रणं कुर्यात्—ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि
सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥ कल-
शस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो
ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥ कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा
वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥ अङ्गैश्च
सहिताः सर्वे कलशन्तु समाश्रिताः। गायत्री चैव सावित्री शान्तिः
पुष्टिकरी तथा ॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः॥
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः॥ इत्यभिमन्त्र्य कलशं
गोमय पिण्डमें गौरीका 'ओं श्रीश्चते०' से। और कलशमें वरुणका 'ओं
तत्त्वाया०' से अक्षत छोडता हुआ करदेवे। पुनः अक्षत ले 'ओं मनोजू०'
से 'समर्पयामि' पर्यन्त कह गणपत्यादिपर अक्षतोंको छोड फिर सर्व
उपचारोंसे गणेशादिकोंका पूजन 'ओं गणेशगौरी०' इत्यादि नाम मन्त्र
से करके, फिर अपने दहिने हाथकी अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे
कलशको स्पर्श कियेहुये 'ओं गङ्गे च०' से 'कारकाः' पर्यन्त कह अभिमन्त्रण

प्रार्थयेत् । ॐ देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ । उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥ त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः । त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥ त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमं कर्म कर्त्तुमीहे जलोद्भव । सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ इति संप्रार्थ्य गणपतये विशेषार्घं दद्यात् । ताम्रपात्रे गन्धाक्षतपुष्पफलद्रव्यजलान्यादाय—ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक । भक्तानामभयंकर्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥ द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो । वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ॥ अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम । ॐ सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः । विशेषार्घ्यं समर्पयामि ॥ ततः प्रार्थयेत्- विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय । नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥ १ ॥ भक्तार्त्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय । विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥ २ ॥ नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः । नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ॥ ३ ॥ विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे । भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥ ४ ॥ लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय । अविघ्नं

कर, फिर हाथ जोड कलशकी प्रार्थना करे 'ओंदेवदानव०' से 'सर्वदा' पर्यन्त कहकर फिर गणेशजीको विशेषार्घ इस प्रकार देवे कि, एक ताम्रपात्रमें गन्ध अक्षत पुष्प फल द्रव्य और जल रखकर इस पात्रको दोनों हाथोंसे लियेहुये 'ॐ रक्ष रक्ष०' से 'समर्पयामि' पर्यन्त कह गणेशके आगे अर्घ दे देवे । और

कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ ९ ॥ इति संप्रार्थ्य हस्ते जलमादाय—ॐ अनया पूजया गणपत्यादिसर्वावाहिताः देवाः प्रीयन्तां न मम ॥ इति ॥ ततः पीठे पर्णपुटकादौ वा सूर्यादिग्रहान अक्षतान् प्रक्षिपन् आवाहयेत्। ॐ सूर्याय नमः सूर्यमावाहयामि। ॐ चन्द्रमसे नमः चन्द्रमसमावाहयामि। ॐ भौमाय नमः भौममावाहयामि। ॐ बुधाय नमः बुधमावाहयामि। ॐ गुरवे नमः गुरुमावाहयामि। ॐ शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि। ॐ शनये नमः शनिमावाहयामि। ॐ राहवे नमः राहुमावाहयामि। ॐ केतवे नमः केतुमावाहयामि। ॐ अधिदेवेभ्यो नमः अधिदेवानावाहयामि ॐ प्रत्यधिदेवेभ्यो नमः प्रत्यधिदेवानावाहयामि। ॐ कुलदेवेभ्यो नमः कुलदेवानावाहयामि। ॐ ग्रामदेवेभ्यो नमः ग्रामदेवानावाहयामि। ॐ इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः इन्द्रादिदशदिक्पालानावाहयामि। ॐ गणपत्यादिपञ्चलोकपालेभ्यो नमः गणपत्यादिपञ्चलोकपालानावाहयामि। ॐ आवाहितेभ्यो नमः स्थापयामि पूजयामि। इत्यावाह्य सर्वोपचारैः ॐ सूर्याद्यावाहितेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ इति मन्त्रेण संपूज्य हस्ते जलमादाय अनया पूजया सूर्याद्यावाहिताः देवाः प्रीयन्तां न मम ॥ ततः प्रार्थयेत्—ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च। गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः

हाथ जोड 'ॐ विघ्नेश्वराय०' आदि ५ श्लोकों द्वारा गणेशकी प्रार्थना करके। फिर हाथमें जल ले 'ॐ अनया पू०' इत्यादि 'न मम' पर्यन्त कह जल छोड देवे॥ तत्पश्चात् सूर्यादि बनेहुये ग्रहोंके पीठपर या दोना आदि किसी पात्रमें अक्षतोंको छोडताहुआ सूर्यादिकोंका आवाहन करे, 'ॐ सूर्याय नमः सूर्यम्०' इत्यादि नाम मन्त्रोंसे। फिर सबोंका पूजन, सर्व उपचारों द्वारा 'ॐ सूर्याद्यावाहिते०' इस नाममन्त्रसे करके, हाथमें जल ले 'ॐ अनया०' से 'न मम' पर्यन्त कह जल छोड देवे। फिर हाथ जोड 'ॐ ब्रह्मा मु०'

सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥ एवं पूजनान्ते वधूः वरस्य वामभागे स्थिता भवति । ततः पितृगृहात् पादहस्ताङ्गुलिभूषणानि यानि प्राप्तवती तान्येव कापि सौभाग्यवती स्त्री गणेशाय समर्प्य प्रसादस्वरूपाणि वधूपादाङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिषु परिधापयेत् । तत्र वरपठनीयो मन्त्रः- ॐ अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणम्भूयात् । इति ॥ अथाञ्जलिपूरणकर्म—पुनः वधूपितृपक्षादेव आनीतम् हरिद्राफलद्रव्यसहितचणकद्विदलमिश्रित-आमतण्डुलकृसरान्नम् एकस्मिन् वंशनिर्मितनव्यपात्रे धृतं वध्वाः पुरतो निधाय तत्समीपे पत्रावलीआदि एकपात्रञ्च धृत्वा । वराञ्जल्युपरिसंलग्नवध्वाञ्जलिं तैरेव कृसरान्नादिभिः पुरोहितः कश्चिद्ब्राह्मणो वा पूरयेत् । ततो वक्ष्यमाणैकमन्त्रपाठान्ते वधूवरौ सहैव अञ्जलिभ्यां कृसरान्नादिकं विसृजेताम् । एवं पृथक् पृथक् वक्ष्यमाणमन्त्रैः

आदि कह प्रार्थना कर देवे ॥ इस प्रकार पूजन होजानेपर वरके वामभागमें वधूको बैठाना । फिर पाँव हाथकी अँगुलियोंके आभूषण अर्थात् अनवठँविछिया आदि वधूके पितागृहसे जो उपस्थित किये गये हैं उनको गणेशादिसे स्पर्शकराय और देवताओंका प्रसादस्वरूप मान कोई सौभाग्यवती स्त्री, वधूको अंगुष्ठ आदि यथास्थानोंमें पहिनावे और वर 'ॐ अलङ्करणमसि०' मन्त्रको पढे ॥ फिर चनाकी दाल और चावलोंकी मिली कच्ची खिचडी जो बाँसकी नवीन दौरीमें धरी जिसमें हलदीकी गांठे और फूल तथा द्रव्यआदि सहित, वधूके पितृपक्षसे वरवधूके अंजली भरनेके निमित्त उपस्थित की गई है उस खिचडीकी दौरीको, वर वधूके सामने रखकर इसीके समीप एक पत्रावली अथवा कोईभी पात्र रखना । इसके ऊपर वरके हाथोंकी बंधी अंजलीपर छुई हुई वधूकी अंजलीको, फलद्रव्य हरिद्रा सहित खिचडी, दौरीमेंसे लेकर पुरोहित अथवा कोईभी ब्राह्मण हो भर देवे ॥ और वधू अपनी अंजली खोल वरके अंजलीमें खिचड़ी आदिको छोडे, एवं वरभी 'ॐ प्रथमोंजलि०'

पञ्चवारं वधूप्रवेशेऽञ्जलयो भवन्ति । इति ॥ तत्र पञ्चमन्त्राः—ॐ प्रथमोऽञ्जलिरयं पूर्वं सीतारामाभिवन्दितः । सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ १ ॥ ॐ द्वितीयोऽञ्जलिरयं पूर्वं सत्याकृष्णाभिनन्दितः । सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ २ ॥ ॐ तृतीयोऽञ्जलिरयं पूर्वं गौरीशङ्करवन्दितः । सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ३ ॥ ॐ चतुर्थोऽञ्जलिरयं पूर्वं सावित्रीब्रह्मपूजितः । सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ४ ॥ ॐ पञ्चमोऽञ्जलिरयं पूर्वं कुन्तीपाण्डुप्रपूजितः । सर्वेषु मम कार्येषु शुभदः सर्वदा भवेत् ॥ ५ ॥ इति ॥ ततस्तदञ्जलिकृसरान्नादिकं वरपिता वरो वा स्वकुलदेवपूजनार्थं गृहीत्वा सुसञ्चितं कुर्यात् ॥ कुलदेशाचारतोऽत्र जनाः अञ्जलिशेषकृसरान्नात् एकैकाञ्जलिमात्रं कृसरान्नं ब्राह्मणनापितादिभ्योऽपि ददति ॥ इति ॥ पुनः वरस्य दक्षिणे वधूः स्थिता भवति । ततो वरः कुशजलसहितदक्षिणाद्रव्यमादाय ॐ अद्य कृतैतत् मम वधूप्रवेशकर्माङ्गभूतगणपत्यादिपूजनकर्मणः पूर्णतासिद्ध्यर्थं यथाशक्ति दक्षिणादिकम् अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे । पुनः कुशजलान्यादाय ॐ अद्य

यह एक श्लोक पढ, नीचे पत्रावली या जो पात्र हो उसमें गिरादेवे । फिरभी ऐसाही और चार अंजली भरी जावे और आगेके चार श्लोकोंमें क्रमसे एक एक कह हर एकके पीछे वर अपनी अंजलीकी खिचडी आदि छोडदेवे । वधूप्रवेशमें यह पांचअंजली भरीजाती हैं ॥ इस पांच अंजलीकी खिचडीको वरका पिता, वा वर स्वयं ही अपने कुलदेवादिके पूजनार्थ लेकर सुरक्षितरूपसे रखलेवे ॥ और अंजली भरनेसे वंचीहुई खिचडीमेंसे, इस समय कुल देशाचार के अनुसार ब्राह्मण नापित आदिको भी एक एक अंजलि खिचडी दे देते हैं ॥ फिर वरके दहिने वधूको बैठाकर वर अपने हाथमें कुशजल और दक्षिणा लेकर ' ॐ अद्य कृतैतत् मम वधूप्रवे०' इत्यादि संकल्पकर पुरोहित को देकर फिर हाथमें कुशजलादि ले 'ॐ अद्य अस्मिन्०' इत्यादि कह

अस्मिन् वधूप्रवेशकर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो यथाभागं विभज्य दातुम् अहमुत्सृजे । इत्यन्येभ्योऽपि दद्यात् । ततो हस्तेनाक्षतान् प्रक्षिपन् गणपत्यादिसर्वदेवान् विसृजेत् । ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ १ ॥ भो गणपत्याद्यत्रावाहिता देवाः स्वस्थानं गच्छत । ममाभ्युदयं कुरुत ॥ इति ॥ एवं गणेशादिपूजनं विधाय अस्मिन्नवसरे अन्यान्यपि यानि स्वकुलदेशाचारानुसाराणि कर्माणि भवन्ति तान्यपि कृत्वा अग्रे गृह्यसूत्रोक्तप्रयोगानुसाराणि कर्माणि वरः कुर्यात् । (तेषां प्रमाणार्थन्तु टिप्पण्यां सूत्राणि द्रष्टव्यानि) अथ पितृगृहाद्गमनसमये वधूः सौभाग्यवत्यादिभिः स्त्रीभिः सहिता वरम् अग्रे कृत्वा द्वारं गच्छति । तत्र गत्वा वरः शुभसंकल्प कर औरोंको भी भूयसी दक्षिणा बांट देवे ॥ फिर आवाहित गणपत्यादिकोंपर अक्षत छोडता हुआ 'ॐ यान्तुदेवगणा०' से 'कुरुत' पर्यन्त कह सबोंका विसर्जन कर देवे ॥ बस इस प्रकार गणेशादिका पूजन होजानेपर इस अवसरमें औरभी जो अपने कुल देशाचारके अनुसार कर्म होते हों, उन सभोंको भी पूरा करके, फिर गृह्यसूत्रोंमें कहे प्रयोगानुसार कर्मोको वर करे । (इन कर्मोंके प्रमाणार्थ सूत्रोको टिप्पणीमें देखना) ॥ जिस समय माता तथा और सौभाग्यवती आदि अनेक स्त्रियोंके सहित वरके पीछे पीछे गांठ बंधीहुई वधू पिताके गृहसे चलकर बाहर द्वारपर पहुंचती है तो द्वारेपर, वर अपनी वधूको शुभ तिथि नक्षत्र ग्रहादियुक्त पुण्य दिनमें अपने गृहमें लेजानेके

१ पुण्याहे युङ्क्ते । (मान० गृह्यसूत्रे १ पुरुषे १३ खण्डे १ सूत्रम्) सूत्रार्थः— निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपत्यादिपूजनपूर्वकज्योतिःशास्त्राऽनुकूलतिथिनक्षत्रशुभग्रहादिशुभगुणयुक्ते इति पुण्याहे, वधूं स्वगृहन्नेतुकामो वरः रथादीन युङ्क्ते ॥ १ ॥ इति ॥

प्रयोगके कर्मोंको देखनेसेही यहां लिखे सभी सूत्रोंका भाषार्थ स्पष्ट मालूम ही हो जायगा, बस इसीसे यहां इन सूत्रोंका भाषार्थ नहीं लिखा ॥

तिथिनक्षत्रग्रहाद्युक्तपुण्याहे वधूं स्वगृहन्नेतुकामो रथादीन् युङ्क्ते ॥१॥ तद्यथाद्वारे वस्त्रादिभिः समलंकृते रथादियाने आदौ दक्षिणम् पुनः उत्तरम् युज्यमानम् अश्वम् वृषं वाऽभिमन्त्रयेत् । (पुष्पाक्षतकुङ्कुमादिप्रक्षेपणं कृत्वा सर्वत्राऽभिमन्त्रणं कुर्यात्) ॐ युञ्जन्तिब्ब्रध्नमरुषश्चरन्तम्परितस्त्थुषः। रोचन्तेरोचनादिवि । १ । युञ्जन्त्यस्यकाम्म्याहरीविपक्षसारथेशोणाधृष्ष्णूनृवाहसा (य० अ० २३ मन्त्र ५,६) ॥२॥ इति द्वाभ्यां दक्षिणम् । पुनरपि द्वाभ्याम् उत्तरे युज्यमानम् अभिमन्त्रयेत्॥२॥ततो नूतनवस्त्रेण कुशैर्वा यानं संमार्ज्य॥३॥पुनःयानस्य दक्षिणचक्रम् अभिमन्त्रयेत्-ॐअङ्क्न्यङ्कावभितोरथं येध्वान्तावाताअग्निमभिये-

निमित्त यहां रथादि सवारीका पूजनादि प्रयोग इस प्रकार करता है ॥ १ ॥ रथादि सवारीमें जो घोडे या बैल आदि लगे हों उनमेंसे पहिले दाहिनेवालाको 'ॐ युञ्जन्ति०' आदि दो मन्त्रोंको कह फिर इन्हीं दोनों मन्त्रोंको कहकर बायें तरफवालोंको अभिमंत्रित कर देवे । (सर्वत्र ही जिसका अभिमन्त्रण करना हो उसपर पुष्पाक्षत कुंकुमादि छोडकर करे) ॥ २ ॥ फिर नवीन वस्त्र अथवा कुशोंकरके रथ या जो सवारी हो उसको झाड पोछ देवे ॥३॥ फिर दहिन पहिया का अभिमंत्रण 'ॐअंकून्यङ्क्षा०' मन्त्रसे करके इसी मंत्रको कह बांयें पहियाकाभी

---

१ युञ्जन्तिब्रध्नमिति द्वाभ्यां युज्यमानमनुमन्त्रयते, दक्षिणमथोत्तरम् । (पा० गृ० १ पु० १३ खं० २ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-रथादौ केनाऽपि युज्यमानम् अश्वं वृषं वा, युञ्जन्ति ब्रध्नमिति द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम् आदौ दक्षिणम् पश्चादुत्तरम्, अनुमन्त्रयते । इति ॥ २ ॥ अहतेन वाससा दर्भैर्वा रथं संमार्ष्टि । (पा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० ३ सूत्रम्) ॥ अस्यार्थः स्पष्टः ॥३॥ अंकून्यङ्कावभितो रथं येध्वान्ता वाता अग्निमभियेसञ्चरन्ति । दूरेहेतिः पतत्री वाजिनी वास्ते नोऽग्नयः पप्रयः पालयन्तु ॥ इति चक्रे अभिमन्त्रयते । (पा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० ४ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-अंकून्यङ्केति सूत्रोक्तमन्त्रेण रथादियानस्य दक्षिणवामचक्रे क्रमेणाऽभिमन्त्रयते । इति ॥ ४ ॥

सञ्चरन्ति । दूरे हेतिः पतत्रीवाजिनीवांस्तेनोऽग्नयः पप्रयः पालयन्तु ॥ इति मन्त्रेण । अनेनैव मन्त्रेण वामचक्रमपि ॥ ४ ॥ ततो यानस्याधिष्ठानस्थानाभिमन्त्रम्--ॐ व्वनस्पतेव्वीड्वङ्गोहिभूयाऽअस्मत्सखाप्प्रतरणःसुवीरः । गोभिःसन्नद्धोऽअसिव्वीडयस्वास्थातातेजयतुजेत्वानि॥ (य० अ० २९ मं० ५२) इति मन्त्रेण ॥ ५ ॥ ततः सौभाग्यवत्यः स्त्रिय यथास्वकुलदेशाचारं कर्म कृत्वा याने वधूम् आरोहयन्ति । तत्र वरपठनीयो मन्त्रः--ॐ सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्य्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व । इति ॥ ६ ॥ ततो वरः स्वयमपि यानमारुह्य--ॐ अनुमायन्तु देवता अनुब्रह्म सुवीर्य्यम् । अनुक्षत्रन्तु यद्बलम् अनुमामैतु यद्यशः ॥ इति मन्त्रं पठित्वा यानं पूर्वाभिमुखं संचाल्य किञ्चित् प्रदक्षिणमावर्त्तयन्

अभिमंत्रण कर देवे ॥ ४ ॥ और यानमें बैठनेके स्थानको 'ॐ वनस्पते० मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर देवे ॥ ५ ॥ फिर सौभाग्यवती स्त्रियां अपने देश-कुलाचारोंको करती हुई यानपर वधूको सवार करावे और वर 'ॐ सुकिंशुकं०, मन्त्र पढे और स्वयंभी उसी यानपर बैठे ॥ ६ ॥ फिर 'अनुमायन्तु०' मन्त्रको

१ वनस्पते वीड्वङ्ग इत्यधिष्ठानम् । (मा० गृ० सू० १३ खं० ५ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-वनस्पते वीड्वङ्गेति मन्त्रेण, रथादियानस्याऽधिष्ठानस्थानमभिमन्त्रयते इति । ५ सूत्रम् ॥ सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोहसूर्य्ये अमृतस्य लोकं स्यानंपत्येवहतुं कृणुष्व । इत्यारोहति ॥ (मानवगृह्यसूत्रे १ पुरुषस्य १३ खण्डे ६ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-सुकिंशुकमिति सूत्रोक्तमन्त्रेण पत्नीम्, अध्वर्य्वादिद्वारा, रथे आरोहयति । इति ॥ ६ ॥ अनुमायन्तु देवता अनुब्रह्म सुवीर्य्यम् । अनुक्षत्रन्तु यद्बलम् अनुमामैतु यद्यशः । इति प्राङ्भिप्राय प्रदक्षिणमावर्त्तयति ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० ७ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-अनुमायन्त्विति सूत्रोक्तमन्त्रेणादि पूर्वाऽभिमुखं किञ्चिद्रथादियानं सञ्चाल्य प्रदक्षिणक्रमेणावर्त्य स्वगमनमार्गाभिमुखमानयति । इति ॥ ७ ॥

स्वगृहगमननिश्चितमार्गमागत्य गमनं कुर्यात् ॥७॥ तत्र यानगमनसमये यानमवलोकयन् वक्ष्यमाणमन्त्रं पठेत्--ॐ प्रतिमायन्तु देवताः प्रतिब्रह्म-सुवीर्य्यम् । इति क्षत्रन्तु यद्बलम् प्रतिमामेतु यद्यशः । इति ॥८॥ तथा वरस हागताश्चापि तेनैव मार्गेण गमनं कुर्युः । इति ॥ अथाऽग्रे गच्छतस्तस्य मार्गे यद्यदमङ्गलाद्यवलोकनं भवेत तत्तच्छान्त्यर्थमप्यस्मिन् पुस्तके टिप्पण्यां लिखितेषु ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ सूत्रेषु पृथक्पृथक् मन्त्रपाठाद्यनेकप्रकार कर्माणि कथितानि तान्यपि तथैव वरेण कर्त्तव्यानि । इति ॥

पढ़ताहुआ यानको पूर्वाभिमुख कुछ चलाय दहिने तरफ फेरता हुआ अपने घर जानेके सीधे रास्तेपर यानको लाकर आगेको बढावे ॥ ७ ॥ और बढते समय यानके तरफ देखताहुआ 'ॐ प्रतिमाय०' इस मन्त्रको पढे ॥ ८ ॥ तथा वरके साथ जानेवाले बराती आदिभी वरके लौटचलनेके मार्गसेही लौट चलें ॥ आगे जातेहुये मार्गमें वरके संमुख यदि अमङ्गल आदि दिखाई पडें तो उनके शान्त्यर्थभी टिप्पणीमें लिखे ९ से १७ तकके सूत्रोंमें अनेक प्रकार के मन्त्रपाठादि पृथक् पृथक् कर्म कहे गये हैं । उनमेंसे जिनकी आवश्यकता हो उन कर्मोंको धर्मज्ञवर अवश्य ही करता हुआ चला जावे ॥ इति ॥

---

१ प्रतिमायन्तु देवताः प्रतिब्रह्म सुवीर्य्यम् । प्रतिक्षत्रन्तु यद्बलु प्रतिमामेस्तु यद्यशः । इति यथास्तंयन्तमनुमन्त्रयते ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० ८ सूत्रम्) सूत्रार्थः--प्रतिमायन्त्विति सत्रोक्तमन्त्रेण स्वगृहगमननिश्चितमार्गगमनं कुर्वन् यानमवलोकयंश्च यानमनुमन्त्रयते । इति ॥ ८ ॥ अमङ्गल्यं चेदतिक्रामति अनुमायन्त्विति जपति । (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० ९ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः--यदि मार्गं गच्छन्नमङ्गलवस्तुसमीपेन गमनं भवेत् तदा अनुमायन्त्विति सप्तम-मंत्रोक्तं मन्त्रं जपति । इति ॥ ९ ॥ नमो रुद्राय ग्रामसद इति ग्रामे । इमारुद्रा-येति च ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं १० सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः--कश्चिद्ग्राम-मध्यमार्गेण गमनं भवेच्चेत् तदा नमोरुद्रायग्रामसद तथा इमारुद्राय इति च द्वौ मन्त्रौ जपति इति ॥ १० ॥ नमोरुद्रायैकवृक्षसद इत्येकवृक्षे । ये वृक्षेषु

एवं वरवधूसमेताः सर्वे स्वग्रामसमीपमागताः गोधूलिसमये अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे मार्गमें चलतेहुये वधूसहित वर तथा और सभी वरके साथी,

–शष्पिञ्जरा इति च (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० ११ सूत्रम्) सूत्रार्थः– मार्गे यद्येकाकिनं वृक्षं प्राप्नोति तदा नमोरुद्रायैकवृक्षसद तथा ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा इमौ द्वौ मन्त्रौ जपति। इति॥ ११॥ नमोरुद्राय श्मशानसद इति श्मशाने। येभूतान माधिपतय इति च॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ ख १२ सू०)॥ सूत्रार्थः–यदि मार्गे श्मशानभूमिं प्राप्नोति तदा नमोरुद्रायश्मशानसद तथा येभूतानामधिपतय इमौ द्वौ मन्त्रौ जपति। इति॥ १२॥ नमो रुद्राय चतुष्पथसद इति चतुष्पथे। येपथांपथिरक्षय इति च॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० १३ सूत्रम्)॥ सूत्रार्थः–मार्गमध्ये चतुष्पथे प्राप्ते सति सूत्रसूचितौ द्वौं मन्त्रौ जपति। इति॥१३॥ नमोरुद्राय तीर्थसद इति तीर्थे। येतीर्थानि प्रचरन्तीति च॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० १४ सूत्रम्) सूत्रार्थः–पथि तीर्थे प्राप्ते सति सूत्रसूचितौ द्वौ मन्त्रौ जपति। इति॥ १४॥ यत्रापस्तरितव्या आसीदति। समुद्राय वैणवेसिन्धूनां पतये नमः। नमो नदीनां सर्वासां पतये। विश्वा हा जुषतां विश्वकर्मणामिदं हविः स्वःस्वाहेत्यप्सूदकाञ्जलीन्निनयति। अमृतं वा आस्ये जुहोम्यायुःप्राणेऽव्यमृतं ब्रह्मणा सह मृत्युन्तरात। प्रासहादिति रिष्टिरिति सुकृसिरिति सुक्षीयमाणः सर्व भयंनुदस्वस्वाहेति त्रिः परिमृज्याचामति॥ (मा० गृ० १ पु० १३ खं० १५ सूत्रम)॥ सूत्रार्थः–यदि मार्गे तरितव्य-नद्यादिजलाशयं प्राप्नोति तदाऽञ्जल्या जलं गृहीत्वा समुद्रायेत्यारभ्य स्वाहान्तं सूत्रोक्तमन्त्रं पठित्वा, तदञ्जलिजलं जलाशये क्षिपेत्। ततः अमृतंवेति सूत्रोक्तमन्त्रं पठित्वा मस्तकादारभ्य स्वकीयसर्वाङ्गानि जलेन त्रिवारं संमृज्य-त्रिराचमेत्। इति॥१५॥ यदि नत्वा तरेत् सुत्रामणमिति जपेत्। (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० १६ सूत्रम्)॥ सूत्रार्थः–यदि मार्गे नौभिस्तरणं भवेत् तदा नौकायां स्थित्वा ओं सुत्रामाणंपृथिवीन्द्यामनेहसꣳसुशर्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम्। दैवीन्नावꣳस्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहे मास्वस्तये। इति मन्त्रं जपेत्॥ १६॥ यदि रथाक्षः शम्याणी वा रिष्येतान्यद्वा रथाङ्ग तत्रैवाऽग्निमुपसमाधाय जयाप्रभृतिभिर्हुत्वा सुमङ्गलीरियंवधूरिमांसमेतपश्यत सौभाग्यमस्मै-दत्त्वा याथास्तं विपरेतनेतिजपेन। वध्वासह वधूं समेत पश्यत। इति (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० १७ सूत्रम्)॥ सूत्रार्थः–यदि मार्गसञ्चलने कुत्रापि रथस्य अक्षः (१) सम्पाणी (२) तथा अन्याङ्गं वा त्रुटितं भवेन, तदा तं

१ धुरीसैला। २ आरा आदि इति लोके प्रसिद्धः।

वनाचरणं कृत्वा ग्रामम् आगच्छन्तीभिः गोभिः सहैव ग्रामप्रवेशं कुर्युः केनापि कारणेन यदि दिन एव यद्वा अधिकरात्र्यां गतायां ग्रामप्रवेशस्य अवसरो भवेत् तदा ब्राह्मणाज्ञां गृहीत्वा ग्रामप्रवेशं कुर्युः । इति ॥१९॥ गृहाभ्यन्तरे वधूं सन्ध्यासमये विधिना प्रवेशयेत् । केनापि कारणेन यदि अन्यसमये प्रवेशस्यावसरो भवेत् तदा ब्राह्मणाज्ञां गृहीत्वैव प्रवेशो विधेयः ॥ १ ॥ इति ॥ एवं ग्रामं प्रविश्य वरगृहद्वारसमीपस्थले समा-
जब वरके ग्रामसमीपमें पहुंच जावें तो चाहिये कि, गोधूलिवेला अर्थात् जिस समय गौयें वन आदिमें चारा चरनेके पश्चात् लौटतीहुई ग्राममें प्रवेश करती हैं, उसीसमय गौवोंके साथही साथ वधू सहित वर तथा सभीको ग्राममें प्रवेश करना चाहिये । यदि किसी विशेष कारणोंसे गोधूलिका समय नहीं मिल सके और दिनहीमें अथवा रात्रिमेंही ग्रामप्रवेश करनेका अवसर हो तो किसी सद्ब्राह्मणसे आज्ञा लेकर ग्राममें प्रवेश करना इति ॥ १९ ॥ द्वारसे गृहके भीतर वधूको प्रवेश सन्ध्यासमयमें कराना । यदि किसी कारण सन्ध्या समयसे भिन्न समय होजावै तो ब्राह्मणकी आज्ञा लेकरही गृहके भीतर वधूको प्रवेश कराना चाहिये ॥ १ ॥ वरके गृहद्वारसे अति समीप-

---

शिल्पिद्वारा यथोचितं निर्माय ततः साग्निको विवाहवेदिकाग्निं सहैवानीतश्चेत् तदा तमेवाग्निं तत्रैवोपसमाधाय, प्रज्वलितं कृत्वा तत्र आघारवाज्यभागौ हुत्वा जयादिहोमं कुर्यात् । अनग्निकश्चेत् तदा होमं विनैव ओं सुमङ्गलीरियंवधूरिमांवधूंसमेत पश्यत् सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तंविपरेतन इति मंत्रं पत्नीसहित वरः पठेत् । (मन्त्रे इमां समेतस्थाने वधूंसमेत इति पाठः प्रकर्त्तव्यः) इति ॥ ॥ १७ ॥ गोभिः सहास्तमिते ग्रामं प्रविशन्ति, ब्राह्मणवचनाद्वा ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खं० १९ सूत्रम्) सूत्रार्थः—सूर्येऽस्तमिते वनाचरणं कृत्वा गृहमागच्छन्तीभिः गोभिः सहैव वरवधूसमेताः सर्वे सहाऽऽगताः स्वग्रामप्रवेशं कुर्युः । यदि दिन एव यद्वा, अधिकरात्रौ गतायामपि ग्रामप्रवेशस्यावसरो भवेत्, तदा ब्राह्मणाज्ञां गृहीत्वा ग्रामप्रवेशं कुर्युः । इति ॥ १९ ॥ अपरस्मिन्नहः सन्धौ गृहान् प्रपादयीत ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खं० १ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः—सन्ध्यासमये विधिना वधूं गृहान् प्रपादयीत ॥ १ ॥

गत्य याने स्थिते सति यानस्थानादारभ्य वद्र्ध्वर्थनिर्दिष्टनिवासगृहाभ्यन्तरस्थानपर्यन्तं पूर्वपूर्वाग्रान् अन्तररहितान् भूमौ कुशानास्तृणुयात् ॥ ४ ॥ ततः पतिपुत्रशीलसम्पन्ना ब्राह्मण्यो यानसमीपमागतास्तत्र स्वकुलदेशाचारं कर्म कृत्वा 'ॐ प्रतिब्रह्मन्०' इति ब्राह्मणपठितमन्त्रान्ते यानाद्वधूम् अवतारयेयुः । वरोऽपि वध्ववतरणसमये ॐ व्युत्काम पन्थांजरितांजवन । शिवेनवैश्वानरइडयास्याग्रतः । आचार्यो येनयेनप्रयातितेनतेनसह ॥ इति मन्त्रं पठित्वा स्वयमपि वध्वा सहैव आस्तृतकुशानामुपर्य्येव भूमौ अवतरेत् ॥ २ ॥ १८ ॥ एवं वधूसहितो वरः यानाद् स्थानमें जहां वधूसहित वरकी सवारी आकर ठहरी हो उसी स्थानसे आरम्भ कर अन्तर रहित अर्थात् एक दूसरेसे छुये हों ऐसे सघन कुशोंको पूर्वाग्र पूर्वाग्र करके गृहके भीतर जहां वधूके रहनेका स्थान पूर्वहीसे निश्चित कर लियाहो वहांतक बराबर पृथ्वीपर बिछा देवे ॥ ४ ॥ फिर पतिपुत्र और शील से संपन्ना ऐसी ब्राह्मणोंकी स्त्रियां सवारीके समीपमें आकर अपने देश और कुलानुसार कर्मोंको करनेके पश्चात् 'ॐ प्रतिब्रह्मन्०' मन्त्रको ब्राह्मण पढे और वधूको सवारीसे ब्राह्मणी लोग उतारें ॥ वधूके उतरते समय वरभी 'ॐ व्युत्काम०' मन्त्रको पढताहुआ वधूके साथही सवारीसे कुशोंके बिछी हुई भूमिपर उतरे ॥ २ ॥ १८ ॥ इस प्रकार वधूसहित सवारीसे उतरकर

१ गोष्ठात् सन्ततामुपलराजिं स्तृणाति (मा० गृ० सू० पु० १५ खण्डे ५ सूत्रम्) सूत्रार्थः-रथादूगृहाभ्यन्तरपर्यन्तं पूर्वपूर्वाग्रान् निरन्तरान् कुशान् आस्तृणुयात् । इति ॥ ४ ॥ प्रतिब्रह्मन्निति प्रत्यवरोहति ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खं० २ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-प्रतिब्रह्मन् इति मन्त्रं पठन् वधूं यानादवतारयेत् । इति ॥ २ ॥ ततोऽन्याः पतिपुत्रशीलसंपन्ना ब्राह्मण्यो यानाद्वधूमवतार्य गृहे वृषभचर्मण्युपवेशयेयुः ॥ इति गोभिलगृह्यसूत्रे । सूत्रार्थः स्पष्ट ॥ व्युत्कामपन्थां जरितां जवेन । शिवेन वैश्वानर इडयास्याग्रतः । आचार्यो येन येनयाति तेन तेन सह । इत्युभावेव व्युत्क्रामतः ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १३ खण्डे १८ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-व्युत्क्रामपन्थामिति वरपठितमन्त्राते वधूवरौ व्युत्क्रामतः इति ॥ १८ ॥

वतीर्य आस्तृतकुशानामुपरि स्थितः ॐ गृहानहंसुमनसः प्रपद्येवीरंहि-
वीरवतः सुशेवा । इरांवहन्तीघृतमुक्षमाणास्तेष्वंहसुमनाः संवसाम ॥६॥
इति मन्त्रं पठित्वा ततो पश्चाद्ग्रन्थिबन्धनयुतां वधूं तथा चाग्रे जलपूरि-
तैककलशं लाजादिमाङ्गलिकद्रव्याणि च कृत्वा यदि वैवाहिकाग्निरानीत-
स्तदा तदग्निमप्यग्रे कृत्वा यानस्थानादास्तृतानां कुशानामुपर्य्युपर्य्येव
पादन्यासं कुर्वन् ॐ येष्वध्येतिप्रसवसन्येषुसौमनसंमहत् । तेनोप
ह्वयामहेतेनोजानन्त्वागतम् ॥ ५ ॥ इति मन्त्रं वरः स्वयम् अध्वर्यु-
द्वारा वा पठन् गृहद्वारं प्रविशेताम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ द्वारप्रवेशसमये

पृथ्वीमें बिछेहुये कुशोंपर पतिके साथ गांठ बांधीहुई स्त्री पीछे खडी हो और उसके आगे खडाहुआ वर 'ओं गृहानहं०' इस मन्त्रको पढकर, अपने आगे जलसे भरा एक कलश और धानोंका लावा आदि मांगलिक वस्तुओंको किये हुये, यदि वैवाहिकाग्नि साथमें लाये हों तो उस अग्निको भी आगे किये हुये और सवारीके समीपसे पृथ्वीमें पहिलेहीसे बिछेहुये कुशोंहीपर पांव रखतेहुये वर वधू चलें और आगे चलताहुआ वर स्वयं अथवा अध्वर्युद्वारा 'ओं येष्व-

---

१ गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरं हि वीरवतः सुशेवा। इरां वहन्ती घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संवसाम । इत्याभ्याहिताग्निं सोदकं सौषधमावसथं प्रपद्येरोहिण्या मूलेन वा यद्वापुण्योक्तम् ॥ (मानवगृह्यसूत्रे १ पुरुषस्य १४ खण्डे ६ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः-गृहानहमिति सूत्रोक्तमन्त्रं पठित्वा जलपूरितैकपात्रं लाजादिमाङ्गलिकं च (तथा वैवाहिकोऽग्निरानीश्चेत् तदा तमग्निमपि) सहैव नीयमानो वधूसहितो वरः गृहं प्रविशेत् । प्रवेशसमये रोहिणी वा मूलो यद्वा ज्योतिःशास्त्रानुकूलपुण्यमुहूर्तो भवेत् । इति ॥ ६ ॥ रथादध्योपासनात् । येष्वध्येति प्रसवसन्येषु सौमनसंमहत् । तेनोपह्वयामहे तेनो जानन्त्वागतम् । इति तया-भ्युपैति ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खं० ५ सूत्रम्) सूत्रार्थः-अध्वर्युर्वरो येष्वध्येति सूत्रोक्तमन्त्रं पठित्वा, वधूं पूर्वास्तृतान पूर्वाग्राणां कुशानामुपर्युपर्य्येवं यानान्निवासगृहाभ्यन्तरपर्य्यन्तमानयति । इति ॥ ५ ॥

तत्र गृहाभ्यन्तरतः दधिदूर्वाचन्दनादिमङ्गलवस्तूनां तयोः संमुखे निस्सारणं भवेत् । तथा गृहाभ्यन्तरेऽपि मङ्गलसूचकानि मन्त्रपाठगीतगानादिकानि च भवेयुः ॥ ३ ॥ गृहं प्रविशत्या वध्वा देहल्युपरि पादन्यासो न कर्त्तव्यः । इति ॥ ९ ॥ एवं वधूनिवासगृहाभ्यन्तरे प्राप्ते तत्र (यदि वैवाहिकाग्निरानीतस्तदा तमग्निं प्रथमत एव निर्मितकुण्डे संस्थापयेत् । ततोऽग्नेः पश्चिमदिशि) प्राग्ग्रीवे ऊर्ध्वलोमास्तृतलोहितानडुच्चर्मणि पूर्वाग्येति०' मन्त्रको पढताहुआ गृहद्वारमें प्रवेश करे ॥५॥६॥ जिस समय वधू और वर गृहद्वारमें प्रवेश करते हों उसी अवसरमें घरके भीतरसे दधि, दूर्वा और चन्दनादि मांगलिक वस्तुओंको लिये हुये लोगोंको वधूवरके संमुख द्वारसे बाहर निकलते हुये मिलें और घरके भीतरभी माङ्गलिक गीत तथा मंगलसूचक वेदादि मन्त्रोंका पाठ होते रहना परम मङ्गलकारी होता है ॥३॥ घरमें चलती हुई वधूको द्वारके देहलियोंपर पांव नहीं रखना चाहिये ॥ ९ ॥ इस प्रकार चलते हुये जब वधूके निवासगृहके भीतर पहुंच जावें तो वहां (यदि वैवाहकाग्नि साथमें लाये हों तो उस अग्निको कुण्डमें, जो कि अग्निस्थापनके लिये पहिलेहीसे बनवाय रक्खे हों, उसीमें स्थापन करदेवें और उस अग्निसे पश्चिमदिशामें (लालरङ्गके बैलका चमडा जिसके गलाका भाग पूर्वदिशाके तरफ, तथा लोमका भाग ऊपरके तरफ हो और उस लोमभागके

१ मङ्गलानि प्रादुर्भवन्ति ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खंडे ३ सूत्रम्) सूत्रार्थ –वधूवरयोगृहद्वारप्रवेशावसरे गृहाभ्यन्तरतो दधिदूर्वाचन्दनादिमङ्गलवस्तूनां तयोः संमुखे निस्सारणम्. तथा गृहाभ्यन्तेऽपि मङ्गलसूत्रको मन्त्रपाठो गीतगानादिकञ्च भवेत् ॥ ३ ॥ न च देहलीमभितिष्ठति ॥ (इत्यापस्तम्बीय २ पटले ५ खंडे वधूप्रवेशे ९ सूत्रम्) सूत्रार्थः–गृहं प्रविशत्या वध्वा देहल्युपरि पादन्यासो न कर्त्तव्यः । इति ॥ ९ ॥ पश्चादग्ने रोहिते चर्मण्यानडुहे प्राग्ग्रीवे लोमतो दर्भानातीर्य, तेषु वधूमुपवेशयत्यपि वा दर्भेष्वेव ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खण्डे ७ सूत्रम्) ॥ सूत्रार्थः–(वैवाहिकाऽग्निरप्यानीतश्चेत् तदा प्रथमत एव निर्मितकुण्डे तमग्निं संस्थाप्य तस्य पश्चिमदिशि) प्राग्ग्रीवे ऊर्ध्वलोमास्तृतलोहिताऽनडुच्चर्मणि पूर्वाग्रान् दर्भानास्तीर्य तेषु वधूमुपवेशयति चर्माभावे दर्भेष्वेवोपवेशयति । इति ॥ ७ ॥

आस्तृतेषु दर्भेषु वधूमुपवेशयेत्। चर्माभावे दर्भेष्वेव ॥ इति ॥ ७ ॥ अथ वरः संस्थिताया वध्वा अङ्के जीवत्पुत्रायाः पुत्रं चूडाकर्मरहितम् ॐ सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही। अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥ इति मन्त्रं पठित्वा उपवेशयेत्। (यस्यां स्त्रियां पुत्रस्यैव जन्म जातस्तथा जीवितोऽपि पुत्रो भवेत्, सा "जीवत्पुत्रा" इति संज्ञिका भवति इति)। केषाञ्चिन्मते तु जीवत्पुत्रायाः पुत्रस्थाने मृगचर्मादिधारिणं ब्रह्मचारिणं वध्वा अङ्के आरोपयेदिति लिखितमस्ति ॥८॥ ततो वध्वङ्कस्थितस्य कुमारस्याञ्जलिं वरः कमलबीजाद्यनेकफल-

ऊपरभी पूर्वाग्रपूर्वाग्र कुशोंको बिछाया हो, यदि बैलका चमड़ा नहीं हो तो केवल पूर्वाग्र बिछाये हुए कुशोंपरही वधूको वर बैठादेवे ॥७॥ फिर जिसका मुंडन नहीं हुआ हो, ऐसे जीवत्पुत्राके पुत्रको वर 'ॐ सोमेनादित्या०' इस इस मन्त्रको पढ, बैठी हुई वधूके गोदमें बैठा देवे। (जिस स्त्रीके पुत्रही पुत्र पैदा हुयेहों और वे जीवितभी हों उस स्त्रीका नाम जीवत्पुत्रा कहाजाताहै)किसीके मतमें जीवत्पुत्राके पुत्रस्थानमें मृगचर्मादि धारणकिये ब्राह्मण ब्रह्मचारीको वधूके गोदमें बैठाना लिखाहै ॥८॥ फिर तिलमिलेहुये चावलोंके साथ कमलबीज तथा औरभी छोहारा, सुपारी आदि अनेक फलोंको एकत्रितकर, सब मिलीहुई

१ अथास्याः पुंस्वोजीवत्पुत्राया. पुत्रमङ्क उत्तरयोपवेश्य। अस्यार्थः-यस्यां स्त्रियां पुत्रस्यैव जन्म जातं, तथा स पुत्रो जीवितोऽपि भवेत सा "जीवत्पुत्रा" तस्याः पुत्रम् वध्वा अङ्के उपवेश्य। इति आपस्तंबीये लिखितम्॥ चूडाकर्मरहितं पुत्रम् उपवेश्य। इति गोभिलः। अथास्यै ब्रह्मचारिणमुपस्थ आवेशयति। सोमेनादित्या बलिनः सोमेनपृथिवी मही। अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम अहितः। इति मा० गृ० सू० १ पु० १४ खंडे ८ सूत्रम्॥ सूत्रार्थः सोमेनादित्येतिसूत्रोक्तमन्त्रं पठित्वा मृगचर्मादिधारिणं कञ्चिद् ब्रह्मचारिणं वध्वा अङ्के उपवेशयेत्॥ ८॥ अथास्य तिलतण्डुलानां फलमिश्राणाञ्जलिं पूरयित्वोत्थाप्य। अथास्यै ध्रुवमरुन्धतीं जीवन्तीं सप्तऋषीनिति दर्शयेत्। मा० गृ० सू० १ पु० १४ खं० ९ सूत्रम्॥ सूत्रार्थः–वध्वङ्कस्थितस्य कुमारस्याञ्जलिं कमलबीजाद्यनेकफलमिश्रिततिलतण्डुलैः पूरयित्वा वध्वा अङ्कात् कुमारमुत्थापयेत्॥

मिश्रिततिलतण्डुलैः पूरयेत् । अथ कुमारं किञ्चिद्विश्राम्य ततः—ॐ इहप्रियंप्रजयातेसमृध्यतामस्मिन्गृहेगार्हपत्यायजागृहि । एनापत्यातन्वा७संसृजस्वाथाजिव्रींविदथमावदाथः ॥१॥ ॐ सुमङ्गलीरियंवधूरिमांसमेतपश्यत सौभाग्यमस्यैदत्त्वायाथास्तं विपरेतन २ ॥ इमौ मन्त्रौ पठित्वा वरः वध्वङ्कात् कुमारमुत्थापयेत् ॥ एवंकृत्वा वरोऽपि तत्रैव नक्षत्रोदयकालपर्यन्तं वध्वासने स्थितो भवेत् । इति ॥ अथोदितेषु वध्वा सहितो वरः प्राचीम् उदीचीं वा दिशम् उपनिष्क्रम्य वध्वै ध्रुवम् अरुन्धतीम् जीवन्तीम् (सप्तऋषीणां मध्यवर्त्तिनी तारा जीवन्तीति प्रसिद्धा) सप्तऋर्षींश्च आकाशस्थितान् दर्शयेत् ॥ ९ ॥ आकाशस्थितान् ध्रुवादिकान् पश्य इति वरेण प्रैषानन्तरं सा पश्येत् । तस्यां समीक्ष्यमाणायां इन्हीं वस्तुओंसे, वधूके गोदमें बैठेहुये कुमारके अञ्जलीको वर भरदेवे । और कुछ थोडेही समय कुमारको विश्राम करनेके पश्चात् 'ॐ इह प्रियं०' और 'ॐ सुमङ्गली०' इन दोनों मन्त्रोंको "वर" पढकर वधूके गोदसे कुमारको उतार देवे । इतना कर्म हो जानेके पश्चात् वरभी वधूके आसनपर बैठे । एवं वर वधू दोनोंही नक्षत्रोंके उदय होने पर्यन्त मौन होकर बैठे रहें ॥ फिर आकाशमें ताराओंके उदय हो जानेपर, वधूको साथमें लिये हुये वर निवासगृहसे बाहर पूर्व या उत्तर दिशामें जाकर, वहां वधूको ध्रुव, अरुन्धती, जीवन्ती (सप्तऋषियोंके बीचमें निकलनेवाली तारा जीवन्ती कहाती है) और सप्तऋषियोंको आकाशमें निकलेहुये दिखावे ॥ ८ ॥ "आकाशस्थितान् ध्रुवादिकान् पश्य । आकाशमें स्थित ध्रुवादिको देखो" ऐसावरके कहनेपर

---

१ अथ अरुन्धतीम्, ध्रुवम्, जीवन्तीम्, सप्तऋर्षींश्च आकाशस्थितान् वध्वै वरः दर्शयेत् । (सप्तऋषीणां मध्यवर्त्तिनी तारा " जीवन्ती " इति प्रसिद्धा।९। अच्युता ध्रुवा ध्रुवपत्नी ध्रुवं पश्येम् सर्वतः । ध्रुवासः पार्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुलेयम् । इति तस्यां समीक्ष्यमाणायां जयति ।। (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खण्डे १० सूत्रम्) सूत्रार्थः—तस्यां समीक्षमाणायां वरः अच्युतेति सूत्रोक्तं मत्रं पठेत् । इति ॥ १० ॥

वरः-ॐ अच्युताध्रुवा ध्रुवपत्नी ध्रुवं पश्येम सर्वतः। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुलेयम्। इति मन्त्रं पठेत् ॥ १० ॥ इति। ततो वरेण वधूः ग्रन्थिनिर्मुक्ता भवेत्। इति। (यदि कुण्डे वैवाहिकाग्निस्थापनमपि जातं तदातत्राग्नौ आहुत्यादिप्रकारन्तु गृह्यसूत्रादौ द्रष्टव्यम्) इति ॥ ततो वधूवरौ ब्रह्मचर्यं चरतो यावत्संवत्सरम्। उत्तमम्। द्वादशदिनं यावन्मध्यमम्। यावत्रिदिनं साधारणम्। वा एकदिनमात्रन्त्वावश्यकमेव व्यतेयाताम् अर्थात् अक्षारलवणाशिनौ हविष्यान्नभोजिनौ पृथक् पृथक् अधः शायिनौ निवृत्तमैथुनौ भवेताम् ॥ इति ॥ १४ ॥

वधू आकाशमें वादिको देखे और वधूके देखते समयमें वर 'ॐ अच्युता ध्रुवा०' इस मन्त्रको पढे ॥ १० ॥ जब इतना कर्म समाप्त होजाय, तो वर के साथ जो वधूकी गांठ बंधीहै सो खोलदेना (और कुण्डमें यदि वैवाहिकाग्निस्थापन हुआ हो तो उस अग्निमें आहुत्यादिका प्रकार गृह्यसूत्रादिग्रन्थोंमें देख तदनुसार कर्म करना) और विवाहदिनसे सोलह दिनके भीतर ही यदि वधूप्रवेश भी हो जावे तोभी वर और वधू इन दोनोंहीको ब्रह्मचर्य रहना एक वर्षपर्यन्त उत्तम, बारह दिन पर्यन्त मध्यम और तीन दिन पर्यन्त साधारण होताहै। यदि इतना भी नहीं हो सके तो एकदिन पर्यन्त तो ब्रह्मचर्यके नियमसे रहना परमावश्यक ही होगा! अर्थात् खारीनमकके विना हविष्यान्नका भोजनकरना, चारपाई आदि ऊंचेपर नहीं रहकर नीचे जमीनमें बिछे बिछोनेपर वरवधूको अलग अलग शयन करना, और निवृत्त मैथुन रहना इत्यादि दोनोंही

१ संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतो द्वादशरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं वा। (मा० गृ० सू० १ पुरुषस्य १४ खण्डे १९ सूत्रम) ॥ सूत्रार्थः-विवाहविधौ समाप्ते वधूवरौ ब्रह्मचर्यं चरतः यावत्संवत्सरम्-उत्तमम्। द्वादशदिनपर्यन्तं मध्यमम्। त्रिदिनं साधारणम। वा एकदिनमात्रन्त्वावश्यकमेव व्यतेयाताम्। अर्थात् अक्षारलवणाशिनौ, हविष्यान्नभोजिनौ, निवृत्तमैथुनौ, पृथक् पृथक् अधःशायिनौ भवेताम्। इति ॥ १४॥ अथास्यै गृहान् विसृजेत् ॥ (मा० गृ० सू० १ पु० १४ खण्डे १५ सूत्रम्) सूत्रार्थः-एतस्मिन्नेवावसरे वध्वै गृहकार्याणि धनादिकस्यायव्ययसंरक्षणाद्यखिलगार्हस्थ्यानि समर्पयेत्। १५ ॥ इति वधूप्रवेशकर्मप्रबोधकानि स्पष्टार्थसहितानि मानवादिगृह्यसूत्राणि समाप्तानि ॥

वधूप्रवेशे सञ्जाते वध्वै गृहकार्याणि धनादिकस्य आयव्ययसंचयाद्यखिलगार्हस्थ्यानि समर्पयेत् । इति ॥ १५ ॥ यदि मण्डपोद्वासनं चतुर्थीकर्मान्ते न कृतश्चेत् तदा वधूप्रवेशकर्मान्ते पूर्वोक्तप्रयोगानुसारेणैव कर्त्तव्यम् ॥ इति श्रीचिकित्स० पं० ठाकुरप्रसादकृतविवाहसोपाङ्गविधौ वधूप्रवेशप्रयोगः ॥

अथ द्विरागमनम् । (थौना इति लोके)

तत्रादौ द्विरागमनशब्दाऽर्थः मुहूर्तविचारश्च ॥ यथा—वधूप्रवेशानन्तरं परावृत्य पितृगृहं प्राप्ताया वध्वाः पुनर्भर्तृगृह आगमनम् इति द्विरागमनम् ॥ वधूप्रवेशमुहूर्तात् तस्य मुहूर्त्तं भिन्नमेव ॥ यथाह मुहूर्त्तचिन्तामणौ—चेरदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे ॥ नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके द्विरागमं लघुध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुभिः ॥ १ ॥

श्लोकार्थः—ओजहायने कोऽर्थः विषमवर्षे घटालिमेषगे रवौ कोऽर्थः कुम्भे वृश्चिके मेषे च स्थिते रवौ शुभग्रहस्य वासरे रवीज्यशुद्धियोगतः को चाहिये ॥ इति ॥ १४ ॥ एवं वधूका प्रवेश गृहमें हो जानेके पश्चात् गृहस्थीके सभी कार्य अर्थात् आमदनी, खर्च और सभीका संरक्षण आदि संपूर्ण कार्य वधूको समझाकर उसीको सौंपदेना चाहिये ॥१५॥ और चतुर्थी कर्मके अन्तमें यदि मण्डपोद्वासनकर्म नहीं किया गया हो तो वधूप्रवेशकर्म समाप्तहोनेपर पूर्वोक्त प्रयोगके अनुसार मण्डपोद्वासन करदेना चाहिये ॥ यह चिकित्सकचूडामणि० वधूप्रवेश पूराहुआ ॥

अब द्विरागमन—जिसे लोकमें "थवना" ऐसा कहते हैं। पहिले यहां "द्विरागमन" शब्दका अर्थ और इसके मुहूर्तका विचार लिखते हैं। पतिके गृहमें नवोडा वधूका प्रथमवार प्रवेश होजानेके पश्चात् पतिके गृहसे अपने पिताके गृहमें लौट आनेपर पुनः दूसरी बार पिताके गृहसे पतिगृहमें वधूका आगमन होना. यही "द्विरागमन" कहा जाता है ॥ द्विरागमनका मुहूर्त्त भी वधूप्रवेशके मुहूर्त्तसे भिन्न है । जैसा मुहूर्त्तचिन्तामणिमें कहा है कि—विषम

तथा मिथुनमीनकन्यातुलावृषाणाम् अन्यतमे लग्ने शुभयुते वा दृष्टे सति हस्ताऽश्विनीपुष्याभिजितेति लघुसंज्ञके उत्तरात्रयरोहिणीति ध्रुवसंज्ञके स्वातीऽपुनर्वसुश्रवणधनिष्ठाशतभिषेति चरसंज्ञके मृगशिरारेवतीचित्राऽनुराधेति मृदुसंज्ञके मूल च । एतेषु नक्षत्रेषु द्विरागमं चरेत् ॥ इति मुहूर्त विचारः ॥

अथ द्विरागमनप्रयोगः—तत्र गुरुशुक्रास्तादिदोषरहिते पूर्वोक्तशुभे मुहूर्ते वधूः गणेशस्मरणपूर्वकं वस्त्राभरणैः स्वलंकृता यथाकुलदेशाचारैः पितृगृहात् पतिगृहे द्वितीयवारम् आगमनं कुर्यात् ॥ इति द्विरागमनं भवति ॥ इति श्रीचिकित्सकचूडामणि पं० ठाकुरप्रासादमणित्रिपाठिविरचितविवाहसोपाङ्गविधौ द्विरागमनप्रयोगः ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

वर्षोंमें, जब कुम्भ, वृश्चिक और मेष इन राशियोंके सूर्य हों, तथा सूर्य बृहस्पतिके शुद्ध योग रहनेपर शुभग्रहोंसे युक्तदिनोंमें और मिथुन, मीन, कन्या, तुला इन लग्नोंको छोडकर और दूसरी कोईभी लग्न जो शुभग्रहोंसे युक्त, वा दृष्ट हों ऐसी शुभलग्नोंमें, हस्त अश्विनी, पुष्य अभिजित्. तीनों उत्तरा, रोहिणी, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा. अनुराधा और मूल इन नक्षत्रोमें वधूका द्विरागमन करना उत्तम होता है। इति मुहूर्त विचारः ॥

अब द्विरागमनप्रयोग—इस प्रकार है कि, पूर्वमें कहे मुहूर्त जिनमें, गुरु और शुक्रके अस्तादिदोष नहीं हों ऐसे किसी शुभ मुहूर्तको विचार इसमें वधू सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो कुल देशाचारके अनुसार अपने पिताके गृह से गणेशजीका स्मरण कर पतिके गृहमें दूसरी बार आगमन करे, यही द्विरागमन प्रयोग पूरा होता है ॥ इस चिकित्सक चूडामणि पं० ठाकुरप्रसादमणित्रिपाठीकी विरचित विवाहसोपाङ्गविधिमें दिरागमनप्रयोग पूराहुआ ॥

विवाहसोपाङ्गविधिः समाप्तः ॥

अथाभिषेकः ।

गणाधिपो भानुशशी धरासुतो
बुधो गुरुर्भार्गवसूर्यनन्दनौ ॥
राहुश्च केतुप्रभृतिर्नवग्रहाः
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ १ ॥

उपेन्द्र इन्द्रो वरुणो हुताशनो
धर्मो यमो वायुहरिश्चतुर्भुजः ॥
गन्धर्वयक्षोरगसिद्धचारणाः
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ २ ॥

नलो दधीचिः सगरः पुरूरवाः
सकौन्तलेयो भरतो धनञ्जयः ॥
रामत्रयं वेणुबलिर्युधिष्ठिरः
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ३ ॥

मनुर्मरीचिर्भृगुदक्षनारदाः
पराशरो व्यासवशिष्ठभार्गवाः ॥
वाल्मीकिकुम्भोद्भवगर्गगौतमाः
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ४ ॥

रम्भा शची सत्यवती च देवकी
गौरी च लक्ष्मीश्च दितिश्च रुक्मिणी ॥
कूर्मो गजेन्द्रोऽपि चराचराधराः
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ५ ॥

गंगा च क्षिप्रा यमुना सरस्वती
गोदावरी वेत्रवती च नर्मदा ॥
सा चन्द्रभागा वरुणा असी नदी
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ६ ॥

तुंगश्रवातद्गुरुचक्रपुष्करम्
गयाभिमुक्तो बदरीवटेश्वरः ॥
केदारपम्पासुरनैमिषारकम्
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ७ ॥

शंखश्च दूर्वासितपत्रचामरम्
मणिप्रदीपो वररत्नकाञ्चनम् ॥
सम्पूर्णकुम्भः सहितो हुताशनः
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ८ ॥

प्रयाणकाले यदि वा सुमङ्गले
प्रभातकाले च नृपाभिषेचने ॥
व्यासेन सम्पूर्णमनोरथाष्टकम्
कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ९ ॥

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः ॥ १ ॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥ २ ॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥
ब्रह्मणा सहिताःसर्वेदिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥ ३ ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः कान्तिस्तुष्टिश्च मातरः ॥ ४ ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ॥
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ॥ ५ ॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ६ ॥

ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ७ ॥

अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥ ८ ॥

सरितःसागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ९ ॥

भगन्ते वरुणो राजा भगंसूर्यो बृहस्पतिः ॥
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो विदुः ॥ १० ॥

इत्यभिषेकः ॥



हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
११/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१
दूरभाष - ०५४२-२४२००३८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

